1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-5, अंक-2-3, अक्टूबर-नवम्बर 2021-दिसम्बर-जनवरी 2022 (संयुक्तांक), ₹50/-

सांस्कृतिक यात्रा के 25 वर्ष...

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

आज़ादी का अमृत महोत्सव

संस्कृति और प्रकृति

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

आज़ादी का अमृत महोत्सव

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम
HP

चौथी बार प्रथम पायदान राजभाषा कीर्ति पुरस्कार...

स्वदेशी, स्वराज और स्वभाषा राष्ट्र निर्माण के आधार स्तंभ हैं। एचपीसीएल इन सभी कसौटियों पर सदैव खरा उतरा है। राष्ट्रनिर्माण के साथ राजभाषा का प्रचार प्रसार भी सदैव हमारा ध्येय रहा है। हमने हिंदी भाषा को कामकाज की भाषा बनाया और हमारे इस निश्चय को पुनः स्वर्णिम प्रशस्ति मिली है।

वर्ष 2016-17, वर्ष 2017-18, वर्ष 2018-19 और अब वर्ष 2020-21 में 'ख' क्षेत्र के सार्वजनिक क्षेत्रों के सभी उपक्रमों में श्रेष्ठतम राजभाषा निष्पादन के लिए राजभाषा कीर्ति पुरस्कार का विजेता रहा, एचपीसीएल। हिंदी दिवस के अवसर पर 14 सितंबर 2021 को एचपीसीएल को यह प्रतिष्ठित पुरस्कार प्रदान किया गया।

हिन्दी हमारी सभ्यता, संस्कृति और राष्ट्र को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। हिंदी हम सबकी भाषा है, वह भाषा जो हम सबको आपस में जोड़ती है; हमें एक करती है।

हिंदी के विकास में सदैव संलग्न, एचपीसीएल।

एचपीसीएल... एक महारत्न

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 20+05=25) पूर्णांक-113-114

वर्ष-5, अंक-2-3, अक्टूबर-नवम्बर 2021-दिसम्बर-जनवरी-2022, मूल्य : ₹50/-

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरू सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत
इन्टरनेशनल ध्रुवपद-धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
डॉ. नारायण व्यास
ललित शर्मा
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

रेखांकन : संदीप राशिनकर

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

सलाहकार संपादक
डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
डॉ. बिनय षड़गी राजाराम
साहित्य
अरुण तिवारी
समसामयिक
हरीश श्रीवास
कला, संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-2562294, मो.- 94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
bhanwarlalshrivas@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास

इस अंक के प्रमुख हस्ताक्षर...

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

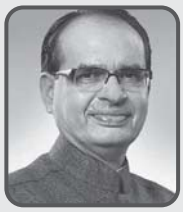
शिवराज सिंह चौहान

राधावल्लभ त्रिपाठी

धनंजय वर्मा

डॉ. सुमन चौरे

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

पंडित विजय शंकर मिश्र

लक्ष्मीनारायण पयोधि

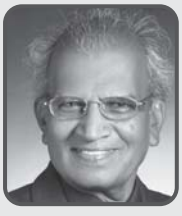
डॉ. महेन्द्र भानावत

गोविन्द गुंजन

शशिकान्त लिमये

डॉ. मुकेश गर्ग

सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'

घनश्याम सक्सेना

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 |
आवरण चित्र - भारत भवन, भोपाल के सौजन्य से | **छायाचित्र** -मनीष सराठे, सुनील सेन, गूगल से साभार | **रेखांकन** - संदीप राशिनकर |
सहयोग - धन सिंह, लता श्रीवास | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

इस बार

- संपादकीय 5
- **आलेख**
  कलाऋषि आनंद कुमारस्वामी / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय 7
- **अद्वैत-विमर्श**
  शंकरपूर्व अद्वैत की परम्परा ... / राधावल्लभ त्रिपाठी 10
- **आलेख**
  गोंड रानी कमलापति: भोपाल की... / शिवराज सिंह चौहान 14
  लेखक की आज़ादी / धनंजय वर्मा 16
  भारत की आज़ादी का अमृत वर्ष ... / प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग 19
  आज़ादी के बाद हिन्दुस्तानी संगीत / डॉ. मुकेश गर्ग 28
  रामनारायण उपाध्याय : आत्मनिर्भर गाँव ... / डॉ. सुमन चौरे 32
  आलेख-दिल्ली में कथक क्रान्ति / पंडित विजय शंकर मिश्र 37
  आजादी की अमृत जयंती पर .... / डॉ. महेन्द्र भानावत 47
  स्वाधीनता संग्राम में अल्पज्ञात हिन्दी ..../ गोविन्द गुंजन 51
  भारत का स्वतंत्रता संग्राम और बस्तर ... / लक्ष्मीनारायण पयोधि 55
  सौन्दर्य दृष्टि के प्रतिमान: शालभंजिका ... / घनश्याम सक्सेना 59
  अमृत महोत्सव वर्ष-2021 / सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' 64
- **संस्मरण**
  निमाड़ में स्वतंत्रता संग्राम के ध्वजवाहक / कुमार कार्तिकेय 66
- **आलेख**
  स्वाधीनता, राष्ट्र धर्म और भारत / शशिकान्त लिमये 70
  संस्कृति स्वाधीनता संग्राम की महानायिका / विजय जोशी 72
- **पुस्तक समीक्षा**
  मालवा के भित्तिचित्रों पर एक सर्वांगीण कार्य 74
  बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र 78
  भारतीय कला के अंतर्संबंध पर वैचारिक विमर्श 90
- **कविता**
  इतनी सस्ती नहीं है प्यारो / डॉ. पुष्पारानी गर्ग 93
- **प्रतिक्रिया**
  कला समय के ग्यारह अंक : एक अवलोकन/ धनंजय वर्मा 94
- **आयोजन**
  भूमि,भाषा और जीवन ये तीनों साहित्य की भूमि है-डॉ.महेन्द्र मिश्र 98
  आदिवासियों ने हमेशा अपनी जमीन के लिए संघर्ष किया है 98
  भारत का स्वाधीनता आंदोलन स्वत्व का संघर्ष था : जे. नन्दकुमार 100
  भारत भवन में 'संस्कृति और प्रकृति' 101
  राजाराम की जय हो -डॉ. धनंजय वर्मा 103
  भारत की आज़ादी का अमृत महोत्सव... 105
- **महोत्सव की झलकियाँ** 106
- **समवेत** 107
  भाव, स्वर और लय की त्रिवेणी-पंडित विजय शंकर मिश्र / आगर मालवा इतिहास पुस्तक का विमोचन सम्पन्न / राशिनकर स्मृति अ. भा. समारोह में हुआ रचनात्मकता का सम्मान आपले वाचनालय का रचनात्मक अवदान अतुलनीय - डॉ. रारावीकर / पयोधि 'कमलेश्वर स्मृति सम्मान' से अलंकृत / राष्ट्रीय सम्मेलन में अटल जी की प्रतिकृति भेंट / वरिष्ठ छायाकार श्री कौशल का सम्मान / स्पंदन सम्मान समारोह का आयोजन
- **समय की धरोहर**
  सुविख्यात फिल्म अभिनेता पृथ्वीराज कपूर / जगदीश कौशल 111
- **पत्रिका के बहाने** 113
- **पत्रिकाओं का संसार** 69
- **सम्मान...** 58

संपादकीय

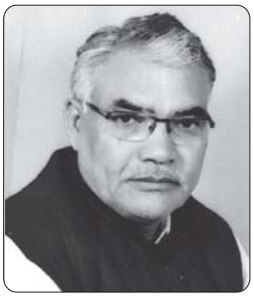

राष्ट्रीय जनजातीय गौरव दिवस का भोपाल से शुभारंभ और विश्वस्तरीय रानी कमलापति रेल्वे स्टेशन का लोकार्पण

भारत की आजादी का 75वां वर्ष अमर शहीदों के प्रति कृतज्ञता का वर्ष है। मध्यप्रदेश में असंख्य जनजातीय वीरों ने स्वाधीनता के संग्राम में अपना योगदान दिया है। मध्यप्रदेश की माटी के ऐसे शहीदों के जन्म स्थल, कर्म स्थल एवं बलिदान स्थलों पर आजादी का अमृत महोत्सव श्रद्धांजलि के साथ देश भर में मनाया जा रहा है।

भारत के हृदय प्रदेश में 15 नवम्बर 2021 भोपाल और मध्यप्रदेश के लिए गौरवशाली दिवस के रूप में यादगार रहा। अवसर था जब देश के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने भोपाल में ''जनजातीय गौरव दिवस महासम्मेलन में स्वाधीनता संग्राम के महान पुरोधा भगवान बिरसा मुंडा की जन्म-जयंती पर कहा भारत आज अपना पहला जनजातीय गौरव दिवस मना रहा है। उन्होंने कहा आजादी के बाद आजादी के आंदोलन में जनजातीय समाज के बलिदान, सामर्थ्य और शौर्य के योगदान को बताया ही नहीं गया। और जो बताया गया वह भी बहुत सीमित जानकारी दी गई। अब हर वर्ष 15 नवंबर को देश भर में भगवान बिरसा मुंडा की जयंती को जनजातीय गौरव दिवस के रूप में मनाया जाएगा। भोपाल के जंबूरी मैदान में आयोजित जनजातीय गौरव दिवस महासम्मेलन को संबोधित करते हुए कही है। इसी महासम्मेलन में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान जी ने कहा यह महासम्मेलन जनजातियों की जिंदगी बदलने का अभियान है गौरव दिवस। उन्होंने यह भी कहा कि हबीबगंज रेल्वे स्टेशन का नाम ''रानी कमलापति'' के नाम पर करके माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने मध्यप्रदेश और भोपाल का सम्मान बढ़ाया है। इस अवसर पर मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान और भाजपा प्रदेशाध्यक्ष बी.डी. शर्मा ने प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी को ''अमृत माटी कलश'' भेंट किया। इस कलश में प्रदेश के 75 चयनित स्थानों जहां पर आजादी के लिए अपना बलिदान देने वाले महापुरुषों की जन्म भूमि, बलिदान भूमि एवं उनके जीवन से जुड़े स्थानों की माटी शामिल की गई है। वहीं पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित झाबुआ के कलाकार भूरीबाई और भज्जू श्याम सिंह ने भी अपनी-अपनी कलाकृति प्रधानमंत्री जी को भेंट की है।

भारत के गौरव भगवान बिरसा मुंडा : 15 नवम्बर 1875 को झारखंड के छोटा नागपुर स्थित उलिहातू ग्राम में जन्म हुआ था। वे जनजातीय जीवन मूल्य की सनातन परंपरा के अग्रदूत हैं। वे क्रांतिकारी, अपराजेय योद्धा और लोकनायक के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिन्हें समाज ने धरती के भगवान का दर्जा दिया है। ''अंग्रेजों के खिलाफ मध्यप्रदेश के जनजातीयों ने ही उठाए सबसे पहले शस्त्र'' इसलिए जनजातियां हमारा गौरव हैं और राष्ट्रीय गौरव दिवस प्रतिवर्ष मनाने की शुरुआत प्रधानमंत्री जी ने मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल से की है। भगवान बिरसा मुंडा ने वनवासी समुदाय को बेगारी से बचाने उनके आर्थिक शोषण पर रोक लगाने, परिश्रम के अनुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था करने, जल-जंगल एवं जमीन पर वनवासियों का समान अधिकार स्थापित करने, भूमि को लगान मुक्त घोषित करने, बच्चों को शिक्षा का अधिकार देने महिलाओं के सम्मान और सुरक्षा के लिए कानून बनाने जैसे विषयों को लेकर अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध आंदोलन कर निरंतर संघर्ष किया। भगवान बिरसा मुंडा धरती आवा अर्थात पृथ्वी के पिता के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने जन-जन को अंधविश्वास से दूर रहने मदिरापान न करने, सभी जीवों पर दया करने, सादा जीवन उच्च विचार रखने तथा संगठित रहने और संघर्ष करने का बल दिया। ऐसे स्वाधीनता संग्राम के महान पुरोधा भगवान बिरसा मुंडा की जन्म-जयंती पर कृतज्ञ राष्ट्र का

शत–शत नमन है।

गोंड रानी कमलापति :

मध्यप्रदेश की यशस्वी रानी कमलापति ने जल प्रबंधन के क्षेत्र में बहुत उत्कृष्ट कार्य किया था। उद्यानों और मंदिरों की स्थापना कराई थी। रानी कमलापति भोपाल की वो अंतिम हिंदू रानी थीं। उनके नाम पर हबीबगंज रेल्वे स्टेशन का नाम अब रानी कमलापति के नाम से नया नामकरण देश के प्रधानमंत्री जी द्वारा किया गया। वे कुशल योद्धा थी। अनेक कलाओं से पारंगत होकर राजकुमारी से सेनापति बनी रानी कमलापति का विवाह गिन्नौरगढ़ के राजा सूरजसिंह शाह के पुत्र निजाम शाह के साथ हुआ था। कमलापति परियों की तरह खूबसूरत थीं तभी उनके नाम से एक कहावत प्रचलित है–

''ताल है भोपाल ताल और बाकी सब तलैया,
रानी थीं कमला पति और सब रनैया।।

के नाम से जाना जाता था। परन्तु अब ''स्टेशन में स्टेशन रानी कमलापति स्टेशन'' के नाम से भोपाल को एक नई विश्वस्तरीय पहचान मिली। इसके लिए प्रधानमंत्री जी को प्रदेशवासियों का हृदय से आभार। क्योंकि भोपाल के इस ऐतिहासिक रेल्वे स्टेशन का सिर्फ कायाकल्प ही नहीं हुआ है, बल्कि गिन्नौरगढ़ की रानी कमलापति जी का इससे नाम जुड़ने से इसका महत्व भी बढ़ गया है। यह देश का पहला आईएसओ सर्टिफाइड एवं पीपीपी मॉडल पर विकसित रेल्वे स्टेशन है। जो सुविधाएं यात्रियों को कभी एयरपोर्ट पर मिलती थीं, वह सुविधाएं अब इस रेल्वे स्टेशन पर आमजन को सुलभ होगी। रानी कमलापति जी को विस्तार से जानने के लिए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान जी का आलेख पत्रिका में अवश्य पढ़ें।

राष्ट्रीय जनजातीय गौरव दिवस का मध्यप्रदेश से पहली बार पहल और हबीबगंज रेल्वे स्टेशन का रानी कमलापति के नाम से नामकरण करके जनजातीय समाज को गौरव प्रदान किया गया।

हमने अक्टूबर–नवम्बर 2021–दिसम्बर–जनवरी 2022 का अंक स्वाधीनता का अमृत महोत्सव विशेषांक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा के अतिथि संपादन में निकालने की जानकारी प्रकाशित की थी परन्तु हमें विषय केन्द्रित सामग्री समय सीमा में प्राप्त नहीं होने से यह विशेषांक कला समय का आगामी विशेषांक अंक होगा। प्रस्तुत अंक में भी हमने आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष केन्द्रित आलेखों को प्राथमिकता से प्रकाशित किया गया है।

आशा है कि यह अंक आपको पसंद आयेगा। आपकी प्रतिक्रिया तथा आगामी अंक के लिए मध्यप्रदेश के 52 जिलों पर केन्द्रित स्वाधीनता आन्दोलनों से जुड़ी गुमनाम नायकों, वीरांगनाओं की भूमिका और महत्व से जुड़ी कोई अनसुनी कहानी, आलेख, कविता इत्यादि हो तो प्रेषित करें...।

नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ

– **भँवरलाल श्रीवास**

इन्टरनेशनल ध्रुवपद–धाम ट्रस्ट, जयपुर (राज.) द्वारा
'लाइफ टाइम अचीवमेंट' सम्मान

कलाऋषि आनंद कुमारस्वामी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

कलात्मक वैभव की अपार संपदा से भरपूर हमारे देश की यह भी नियति रही है कि उसके इस वैभव का आख्यान करने वाले अधिकतर महापुरुष वे रहे, जो यहां की धरती पर जन्में नहीं, लेकिन जिन्होंने अपना पूरा जीवन इसी आख्यान के लिए समर्पित कर दिया। डॉ. आनंद कुमारस्वामी भी एक ऐसे ही महापुरुष थे। इनके पिता भारतीय मूल के श्रीलंका निवासी श्री मुत्तुकुमार स्वामी थे। वे अपने समय के प्रतिष्ठित न्यायविद् थे। वे ऐसे पहले भारतीय थे जिन्होंने सन् 1863 से 1879 तक विलायत के न्यायालयों में वकालत की थी। उन्होंने वहीं के एक प्रतिष्ठित परिवार की कन्या एलिजाबेथ क्ले से विवाह किया। दिनांक 22 अगस्त सन् 1877 को कोलम्बो में आनंद कुमारस्वामी का जन्म हुआ। लेकिन दो वर्ष बाद कोलम्बो में ही 4 मई 1879 को उनके पिता की मृत्यु हो गयी। आनंद की मां अपने पुत्र को लेकर विलायत लौट आयीं तथा उन्होंने वहीं अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा अपने निर्देशन में संपन्न करायी। आनंद की शिक्षा प्रारंभ में घर पर ही हुई। बारह वर्ष की अवस्था में उन्हें वाइक्लिफ कॉलेज स्प्रिंग फील्ड में भेजा गया, जहां उन्होंने 8 वर्ष तक अध्ययन किया। 1894 में उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा पास की। इस दौरान वे कॉलेज की पत्रिका 'स्टार' में लेख लिखा करते थे। एक निबंध पर उन्हें प्रथम पुरस्कार भी मिला था।

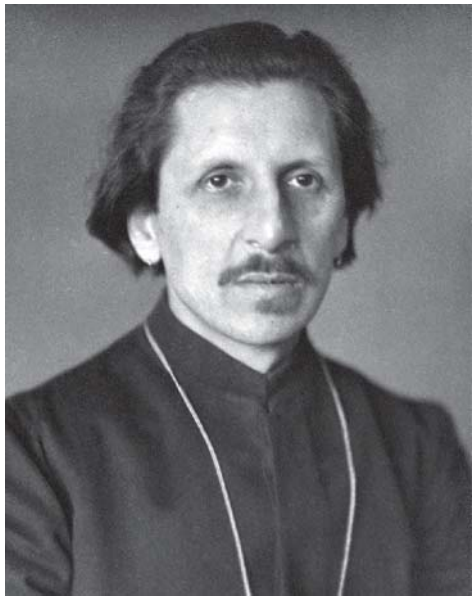

कॉलेज से उत्तीर्ण होने के उपरांत कुमारस्वामी एक वर्ष के लिए श्रीलंका गये और वहां की खनिज संपत्ति का निरीक्षण किया। लंदन लौटकर उन्होंने विश्वविद्यालय कॉलेज में सन् 1897 में प्रवेश लिया। भूगर्भ शास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र में उन्होंने स्नातक की उपाधियां प्राप्त कीं। बाद के तीन वर्ष तक उन्होंने तीन वैज्ञानिक विषयों में अनुसंधान किया, जिसके कारण वे विश्वविद्यालय के फैलो चुने गये। उन्हें दो स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुए। वर्ष 1900 में भी उन्हें श्रीलंका सरकार ने भूगर्भ सर्वेक्षण का निर्देशक बनाया। कोलम्बो में वे सामाजिक गतिविधियों में भी संलग्न रहे। वर्ष 1906 में वे श्रीलंका से कलकत्ता आये तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर, उनके बड़े भाई गगनेन्द्रनाथ ठाकुर तथा छोटे भाई समरेन्द्रनाथ ठाकुर से मिले। वे बंगाल की चित्रकला के महान चित्रकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से भी मिले। इसके बाद भारतीय कला के प्रति उनकी अभिरुचि तीव्र होती गयी। वर्ष 1908 से 1913 तक उन्होंने भारतवर्ष के कला केंद्रों का भ्रमण किया तथा राजपूत और पहाड़ी शैली के चित्रों का संग्रह किया। वर्ष 1911 के आरंभ में उन्होंने कश्मीर याात्रा की तथा 'राजपूत पेटिंग' नामक पुस्तक की वे तैयारी करते रहे। उन्होंने मॉडर्न रिव्यू नामक पत्रिका में अनेक लेख लिखे तथा अनेक व्याख्यान दिये। उनके भाषणों से यह पहली बार ज्ञात हुआ कि भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक जिस मूर्तिकला और चित्रकला का सृजन हमारे कलाकारों ने किया है, वह संसार में सबसे ऊँची श्रेणी का है।

डॉ. आनन्द कुमारस्वामी का सबसे अधिक ज़ोर भारतीय कलाओं को उनकी प्रतिष्ठा दिलाने पर था और वे आजीवन इस कार्य में लगे रहे। डॉ. आनन्द कुमारस्वामी 1917 से मृत्युपर्यंत सन् 1947 तक बोस्टन म्यूजियम अमेरिका में पूर्वी देशों की कलाओं के विभागों के अधिष्ठाता रहे। पूर्वी देशों की उन्होंने यात्रा की तथा वहाँ के चित्रांकन व मूर्तिकला पर उन्होंने पुस्तकें लिखीं।

डॉ. आनन्द कुमारस्वामी विलक्षण प्रतिभाशाली पुरुष थे।

उन्होंने दर्शन के गूढ़ तत्वों का अन्वेषण किया और भारतीय दर्शन पर विचार करते हुए अनेक पुस्तकें लिखीं। अपनी पुस्तक 'डांस ऑफ शिवा' में उन्होंने नटराज की भाव-भंगिमाओं में निहित दर्शन को व्यक्त करते हुए कला की सूक्ष्म मीमांसा की। आनन्द कुमारस्वामी ऐसे पहले कला समीक्षक थे, जिन्होंने मुग़ल क़लम से राजपूत क़लम को पृथक किया तथा उसकी मौलिकता को स्पष्ट किया। उन्होंने मुग़ल शैली, राजपूत शैली तथा पहाड़ी शैली की पृथक-पृथक पहचान को स्पष्ट किया। उन्होंने लगभग 15 महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे।

कुमारस्वामी के अवदान का मूल्यांकन किया जाना सहज नहीं है। उन्होंने जो लिखा वह इतना प्रामाणिक और अद्‌भुत है, जिसकी कोई मिसाल नहीं। भारतीय कला का इतिहास लिखकर वे कालजयी बन गये। अपनी ऋषि तुल्य साधना के बलबूते पर उन्होंने भारतीय कला की आत्मा से साक्षात् किया और फिर अपने ज्ञान का ऐसा अमूल्य वरदान इतिहास को दिया, जिसकी कोई तुलना नहीं। उनकी भाषा, उसकी मौलिकता, शैली प्रवाह और शिल्प सभी अप्रतिम हैं।

उन्होंने दक्षिणपूर्व एशिया की यात्रा की और 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट' नाम की सुंदर पुस्तक लिखी। बौद्धदर्शन, बुद्ध के जीवन और बुद्ध शिल्प पर विशेष चिंतन उन्होंने किया था। वेदों का अध्ययन कर उन्होंने यज्ञ पर सबसे पहली पुस्तक लिखी। यक्ष के प्रतीक की उन्होंने बड़ी गंभीर मीमांसा की जिससे प्रेरणा लेकर बॉश ने 'गोल्डन जर्म' लिखा और पालमूश ने बोरोबुदुर की रचना की। वेदों से वे बहुत प्रभावित थे और उनकी अंतिम इच्छा यह थी कि वे हिमालय की तलहटी में बसकर वेदों का अध्ययन करें और उस आश्रम में प्रवेश करें जहां असीम शांति है। झूठ और अहंकार से उन्हें नफरत थी और उन्होंने इस अहंकार पर जीवन भर चोट की।

कुमारस्वामी लैटिन और ग्रीक के बड़े पंडित थे। उन्होंने ईसाई संतों की साधना के मर्म तक पहुंचने की चेष्टा की थी और उनका मानना था कि ईसाई संतों की साधना में भारतीय चिंतन की प्रतिच्छवि है। भारतीय संस्कृति को वे सनातन प्रवाह के रूप में देखते थे और यह पाते थे कि यह कभी पुरानी नहीं होती, बल्कि पुन: पुन: उषा की तरह छविमान होती रहती है। उस पुराने काल में उन्होंने वैज्ञानिक बुद्धि के परिप्रेक्ष्य में मानवीय संस्कारों का आकलन भी किया। उन्होंने जीवन दर्शन से कला दर्शन को जोड़ा। वे सत्य दृष्टा थे। इसलिये उन्होंने भारतीय अज्ञानता का भी विश्लेषण किया।

भारतीय चिंतन और पाश्चात्य चिंतन की उन्होंने बड़ी सधी हुई समीक्षा की। परंपरा और इतिहास के बीच रेखा खींची और कहा कि जो पारंपरिक दृष्टि है, वह प्रामाणिक दृष्टि है। ऐतिहासिक दृष्टि प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि उसको जांचने वाला खोट से जांचता है। उनकी दृष्टि बड़ी विलक्षण दृष्टि थी। वे जीवन को पूर्णत: पुरुषार्थ में देखते थे।

उन्होंने दर्शन का एक ऐसा स्तर स्थापित किया जहां सूफी साधक, ईसाई साधक, बौद्ध साधक, जैन साधक तथा वैदिक ऋषि सभी एक बिंदु पर मिलते थे। इस एकत्व का अनुसंधान उनकी मौलिक उपलब्धि था। धर्म की उन्होंने अपने ढंग से व्याख्या की और कर्म की भी। कला और साहित्य को उन्होंने धर्म से अलग नहीं माना। धर्म उनकी दृष्टि में एक विशेष प्रकार की अवस्था थी। शक्ति, ऊर्जा दिलाने वाले माध्यम को वे धर्म मानते थे। उनका मानना था कि कर्म में जो एकाग्र भाव की कुशलता छिपी है वही उसके प्राण हैं।

कला के संबंध में उनकी अवधारणा अपनी थी। कला को उन्होंने मनुष्य की यात्रा के लिए आवश्यक माना। उनका मानना था कि कला की सृष्टि पहले हो जाती है। पहले उसका रूप रंग आता है, चित्त में उसकी पहचान, उसका रूप आ जाता है, वस्तु बाद में होती है। उन्होंने कला को ध्यान से, समाधि से जोड़ा। कला के बारे में उनका चिंतन बहुआयामी था। उन्होंने कहा कि भारतीय कला का उद्‌देश्य नवीन बनाना नहीं बल्कि चिरनवीन बने रहना है। डॉ. आनंद कुमारस्वामी ने नाटक, संगीत, शिल्प, हस्तशिल्प, कविता और वस्त्रों पर भी लिखा। उन्होंने भारतीय मेधा को अपनी सही पहचान दी।

सौंदर्य के बारे में उन्होंने कहा कि वह अनवरत और अविराम है। यह उत्कृष्टता की ऐसी अवस्था है, जिसे प्रयास कर प्राप्त नहीं किया जा सकता। कला के प्रति भारतीय दृष्टिकोण को उन्होंने बड़े सुंदर और स्पष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया।

कुमारस्वामी ऐसे पहले कला मर्मज्ञ थे, जिन्होंने मध्यकालीन भारतीय चित्रकला का गहरा अध्ययन किया और चित्रकला की विभिन्न शैलियों के संबंध में नये तथ्य भी उद्‌घाटित किये। राजपूत क़लम और पहाड़ी क़लम की उन शाखाओं के संबंध में उन्होंने रंगों तथा रेखाओं के आधार पर और उनमें छिपे अंतर निहित भावों के आधार पर बड़ा सटीक विश्लेषण किया। कुमारस्वामी के पहले प्राय: यह माना जाता था कि ये दोनों शैलियां मुग़ल क़लम से पूर्णत: उद्‌भूत हुई हैं, लेकिन उन्होंने यह स्थापित

किया कि ये शैलियां मुग़ल क़लम से प्रभावित जरूर हैं, लेकिन इनकी अपनी निजी मौलिकता है और यह मौलिकता भारतीय परिवेश से ही जन्मी है। उन्होंने विभिन्न शैलियों के चित्र स्वयं संग्रह किये और उनका अध्ययन कर अपने निष्कर्ष प्रतिपादित किये। कुमारस्वामी की यह दृष्टि आगे चलकर भारत के कला विचारकों का पथ-प्रदर्शन करती रही। उनके तर्क इतने सटीक और अकाट्य रहे कि भारतीय कला के पाश्चात्य विचारक भी उनसे सहमत हुए बिना न रह सके। विशेषकर राजपूत क़लम के बारे में उन्होंने अपने सटीक निष्कर्ष दिये। रेखाओं की बारीकियों के आधार पर उन्होंने शैलीगत विशेषताएं खोजीं और भारत की समृद्ध चित्रांकन परंपरा को उन्होंने प्रतिष्ठित किया। वर्ष 1916 में उनकी कृति राजपूत शैली के प्रकाशन के साथ ही विश्व में भारतीय लघुचित्र शैली के अध्ययन के अनुशासन ने जन्म लिया।

शिल्प के संबंध में भी उनकी मौलिक और अनूठी अवधारणा रही। शिव उपासना पर उन्होंने दृष्टि डाली और शिव के नृत्य पर एक पूरा निबंध ही लिखा, जिसमें भरतीय कला दर्शन की पूरी व्याख्या निहित है। बुद्ध के शिल्प, उनके अध्ययन के विशेष केंद्र थे तथा बड़ी बारीकी के साथ उन्होंने बुद्ध शिल्प का अध्ययन किया। सांची और अमरावती के बौद्ध भग्नावशेषों पर उन्होंने लिखा और बुद्ध की मूर्ति के स्थान पर उन्हें प्रतीकात्मक रूप से क्यों दर्शाया गया है- इसकी भी विवेचना की।

कुमारस्वामी ने भारतीय संगीत के बारे में भी अपनी दृष्टि दी तथा प्राचीन भारत की अन्य विविध कलाओं के बारे में भी उन्होंने काफी कुछ लिखा। यह भी एक रोचक तथ्य है कि कुमारस्वामी ने एक मर्मज्ञ कलाचिंतक और दार्शनिक होने के साथ ही उन्होंने तत्कालीन भारतीय नारी के संबंध में भी अपने विचार प्रगट किये।

डॉ. आनंद कुमारस्वामी कला, दर्शन और व्यावहारिक चिंतन के त्रिवेणी पुरुष थे। भारतीय कला का इतिहास बिना डॉ. कुमारस्वामी के अधूरा है। इस ऋषि-तुल्य व्यक्तित्व ने अपनी साधना से हमें जो कुछ दिया, वह अप्रतिम है। वे प्रेरणा पुरुष हैं हमारे। वे विदेशी माता की कोख से जन्मे, इस देश में उन्होंने शिक्षा भी नहीं ली, लेकिन पूरे जीवन भर वे इसी देश की मिट्टी से प्राणरस लेते रहे और जीते रहे।

वे अपनी निजी अस्मिता के लिए कभी नहीं जूझे, जूझे तो भारत की अस्मिता के लिए, उसकी पहचान के लिए, उसके गौरव के लिए।

ऐसे प्राण पुरुष को प्रणाम करने से प्रणाम ही सार्थक होते हैं और आज इसी सार्थकता के संचय की बेहद ज़रूरत है। यह महान कलापुरुष काल को जीतकर कालजयी बन गया। ऐसे अपराजेय मनीषी व्यक्तित्व को असंख्य प्रणाम अर्पित करें, उस अद्‌भुत मनीषा के विचार पथ का अनुसरण करें, उससे प्रेरणा लें तो शायद भारतीय कला इतिहास अपनी इस महान धरोहर को सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकेगा।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद् है।
85, इन्दिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केशरबाग रोड,
इंदौर (म.प्र.) 452001, मो.: 9485992593

बनीठनी

प्रेमकथा से चित्रकला तक

लेखक : **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय**

प्रकाशन वर्ष : 2021
मूल्य : 190/-
प्रकाशक : बृज संस्कृति शोध संस्थान
मंदिर श्रीधाम गोदा विहार परिसर,
गोपेश्वर मार्ग, वृन्दावन-281121 (मथुरा) उ.प्र.
संपर्क : 9219858901, 8266828277

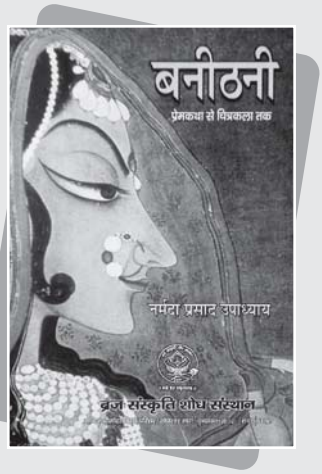

शंकरपूर्व अद्वैत की परम्परा : प्रथम चरण - वैदिक संहिताएँ

राधावल्लभ त्रिपाठी

भारतीय विश्वदृष्टि अपने अद्वैतपरक चिन्तन के लिये जानी जाती है। इस दृष्टि का प्रथम दिग्दर्शन हमें वेदों में प्राप्त होता है। चार वेद-संहिताओं में प्रथम ऋग्वेद है। यह विश्वसाहित्य का पहला ग्रन्थ है। अद्वैततत्व का प्रथम निरूपण भी ऋग्वेद में ही मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में नासदीय सूक्त है, जिसमें सृष्टि के रहस्य पर ऋषि ने विचार किया है। नासदीय सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों का अनुवाद इस प्रकार है -

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।।1।।

(उस समय न सत् था, न असत् था
न यह संसार था, न इसके ऊपर आकाश था
फिर वह था कौन
जिसने इस सब को ढक रखा था ?
(यदि उसने ढक भी रखा था, तो) कहाँ और किसकी सुरक्षा में ?
क्या (तब सब ओर) पानी ही पानी था - गहन और गंभीर ?)

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।2।।

मृत्यु नहीं थी तब
अमृतत्व भी नहीं था तब
तब फिर वह चिह्न भी तो नहीं था
जो दिन और रात की अलग अलग पहचान कराये,
कोई एक था--, जो बिना हवा के अपनी ही स्वधा से ले रहा था साँस
उससे अलग कुछ भी नहीं था।

तम आसीत्तमसा गूळमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिम्नाऽजायतैकम्।।3।।

(सृष्टि जब नहीं थी तब
अँधेरे की अभेद्य परतों में ढका अँधेरा भर था,
सब कुछ सब कुछ केवल जल भर था,
एक सर्वव्यापी अज्ञान जिसमें बंद सब कुछ,
इसके भीतर से अपने तप की महिमा से वह एक जन्मा।)

यहाँ ऋषि ने किसी एक सर्वव्यापी अनादि और अनन्त तत्व की चर्चा की है, जो स्वयं की महिमा से स्वयं जन्म लेता है, अतः उसका कोई कारण नहीं है। अद्वैत तत्व का प्रतिपादन तो ऋषि कर ही रहे हैं, वे इस सृष्टि को एक स्वचालित व्यवस्था के रूप में भी देख रहे हैं। वस्तुतः यह व्यवस्था ही सनातन अद्वैत तत्व है। सातवें मन्त्र में कहा गया है -

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद

(यह सृष्टि कैसे जन्मी
किस पर यह टिकी है या नहीं टिकी है
परम व्योम में जो इसका अध्यक्ष है,
अरे वह वह भी जानता है नहीं जानता है)

यहाँ ऋग्वेद के ऋषि ने सृष्टि के उस अध्यक्ष की बात की है, जो परम व्योम में स्थित है। यह अध्यक्ष ही परम तत्व है और जिस परम व्योम में वह स्थित है वह भी परम तत्व ही है, क्यों कि वह सृष्टि का महाध्यक्ष अपने आप से अपने में अवस्थित है।

अथर्ववेद में अद्वैतविमर्श :

ज्ञान तथा चिंतन की दृष्टि से अथर्ववेद को सर्वाधिक प्रामाणिक कहा जा सकता है। इसीलिये प्राचीन काल से ही इसकी एक संज्ञा ब्रह्मवेद भी रही है। गोपथ में कहा गया है- ''चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।'' इसका मूल नाम ''अथर्वांगिरस'' था। ब्रह्मज्ञान की चर्चा होने से इसे ब्रह्मवेद, क्षत्रियों के कर्तव्यों का उपदेश होने से क्षत्रवेद, आयुर्वेद और चिकित्सा का ज्ञान प्रदान करने के कारण भैषज्यवेद, पृथ्वीसूक्त जैसा महनीय सूक्त इसमें है, इस आधार पर महीवेद, छन्दोवेद आदि भी इसके नाम प्रचलित हैं। ब्रह्मज्ञान की इसमें चर्चा है इतः इसे ब्रह्मवेद यह नाम तो इसका प्रसिद्ध है ही।

अथर्ववेद के दार्शनिक सूक्तों में परमसत्ता को ले कर जो

चिंतन प्रस्तुत किया गया है, वह ऋग्वेद के पश्चात् वेदान्तदर्शन का आद्य निदर्शन है। अन्य अनेक सूक्तों में भी निगूढ दार्शनिक चिन्तन अपने परिपूर्ण गाम्भीर्य के साथ उपस्थित है। वेदों में ऋत्विक् (यज्ञ का सम्पादन करने वाले पोहित) के चार प्रकार बताये गये हैं – होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। इन चारों का सम्बन्ध क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, तथा अथर्ववेद से है। अथर्ववेद का ऋत्विक् ब्रह्मा ब्रह्मज्ञान में पारंगत होता है। वस्तुतः ब्रह्मा एक अध्वर्यु के रूप में सारे याज्ञिक अनुष्ठानों का साक्षी बन कर कर उपस्थित रहता है। ब्रह्म को भी वेदान्त साक्षी मानता है। अतः अथर्ववेद का प्रतिनिधि ब्रह्मा स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप कहा गया। वैतानसूत्र अथर्ववेद का सूत्र है। इसके अनुसार अथर्ववेद से सम्बद्ध ऋत्विक् ब्रह्मा ब्रह्म या परमतत्व का प्रतीक है। गोपथब्राह्मण में इसी ब्रह्मा को विद्वान् और सर्ववित् कहा गया है। मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद का ही एक हिस्सा है। यह उपनिषद् वेदान्त की परम्परा का आकर ग्रन्थ है। ब्रह्मज्ञान की परम्परा का प्रतिपादन करते हुए इसमें कहा गया है कि अथर्वा ऋषि ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र हैं। उन्होंने अपने पिता से प्राप्त ब्रह्मविद्या अङ्गिरा ऋषि को प्रदान की। अंगिरा से भरद्वाज, भरद्वाज से अङ्गिरस ने इस विद्या को ग्रहण किया –

ओम् ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽ-
थर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्।।(मुण्डकोप. 1.1-2)

अथर्ववेद का एक नाम ही अथर्वाङ्गिरसवेद है, अथर्वा ऋषि तथा अंगिरस् दोनों ऋषि इस वेद के प्रवर्तक कहे गये हैं। इस दृष्टि से भी ब्रह्मविद्या या वेदान्त का अथर्ववेद से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अंगिरा ऋषि ने ही देवकीपुत्र कृष्ण को ब्रह्मविद्या का ज्ञान दिया – यह छान्दोग्योपनिषद् में बताया गया है। अथर्ववेद में अनेकत्र दार्शनिक चिन्तन और वेदान्त के विचार पिरोये हुए हैं। इन विचारों का कहीं सुस्पष्ट रूप में अभिधान किया गया है, कहीं गूढ प्रतीकों के द्वारा उनका संकेत किया गया है। पण्डित दामोदर सातवलेकर ने अथर्ववेद के लगभग 75 सूक्तों की ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक के रूप में पहचान की है। इनमें से निम्नलिखित सूक्तो विशेष उल्लेखनीय हैं – परमं धाम (2.1), भुवनस्पति (2.2.1), ब्रह्मविद्या (4.1, 5.6) आत्मविद्या (4.2) ब्रह्मौदन (4.34), भुवनेषु ज्येष्ठः (5.2) आत्मा (5.9, 7.1, 9.1, 9.9, 19.51) तथा विराट् (8.1, 8.9)।

इनमें से पाँच सूक्त आत्मा का प्रतिपादन करते हैं। अथर्ववेद के तेरहवें काण्ड में नौ और पन्द्रहवें काण्ड में अठारह सूक्त ब्रह्मविद्यापरक हैं। इनके अतिरिक्त ओदनसूक्त (11.3), प्राणसूक्त (11.4), ब्रह्मचर्य (11.5), तथा पृथ्वीसूक्त (12.1) में भी जीवन के भौतिक जगत् में निगूढ़ आध्यात्मिक तत्व का निरूपण है।

उपनिषदों में व्यक्त ब्रह्मविद्याविषयक तथा अद्वैत परक विमर्श से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ब्रह्मविद्यापरक इन सभी सूक्तों में ब्रह्म एक, अनादि तथा सर्वव्यापक तत्व के रूप में निरूपित है। चौथे काण्ड का पहला सूक्त इस दृष्टि से विशेष उदाहरणीय है। इसके अतिरिक्त सर्वाधारवर्णन (1.7) ज्येष्ठ ब्रह्म (1.8) उच्छिष्टब्रह्म (11.7) इत्यादि सूक्तों में सृष्टि के आधारभूत परमतत्व का प्रतिपादन है। सर्वाधारवर्णन (1.7) में स्कम्भ को समस्त सृष्टि का एक आधार बताया है। यही स्कम्भ परब्रह्म है। स्कम्भ ही परमात्मा है। इस सूक्त में स्कम्भ के रूप में ब्रह्मतत्व का निरूपण किया गया है। तदनुसार एक ही स्कम्भतत्व से सारे वेदों की उत्पत्ति हुई है। सायण के अनुसार स्कम्भ सनातन देव है, जो ब्रह्म से भी पहले हुआ। इसी लिये उसी को ज्येष्ठ ब्रह्म कहा है।

इस ब्रह्म के दो रूप हैं – ज्येष्ठ ब्रह्म तथा उच्छिष्ट ब्रह्म। ज्येष्ठ ब्रह्म निर्गुण, निराकार परम तत्व है। उच्छिष्ट का अर्थ है जो छोड़ दिये जाने पर शेष बचा। यह ज्येष्ठ ब्रह्म का साकार रूप है। अत एव अथर्ववेद कहता है कि उच्छिष्ट ब्रह्म में नाम और रूप झलकते हैं, और नामरूपात्मक सारा संसार इसमें समाहित है।

उच्छिष्टे नामरूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।(11.7)

सातवलेकर उच्छिष्ट का अर्थ करते हैं – जो ऊपर या ऊर्ध्वभाग में अवशिष्ट रहता है। वे पुरुषसूक्त के ''त्रिपादूर्ध्वमुदेत् पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत् पुनः'' – इस मन्त्र से इसका विचारसाम्य भी प्रतिपादित करते हैं। अथर्ववेद में सृष्टि के रहस्यपर विचार करते हुए इसके चार स्तरों की बात की गई, इनमें से तीन तो गुहा में या अदृश्य लोक में समाये हुए हैं, उन्हें सामान्य जन नहीं जान पाते। चतुर्थ स्तर अनुभवगम्य होता है। पर एक सर्ववित् ब्रह्म इन सभी को जानता है –

त्रीणि पदानि निहिता गुहाऽस्य यस्तानि वेद स पितुष्पिता सन्।। (2.1.2)

ज्येष्ठब्रहम (1.8), उच्छिष्टब्रह्म (11.7) इन दो सूक्तों में ज्येष्ठब्रह्म, उच्छिष्टब्रह्म, महत् ब्रह्म, परमेष्ठी प्रजापति, स्कम्भ, हंसः

आदि दार्शनिक कोटियों की विवृति है। विराट् (8.1, 8.9) हिरण्यगर्भ (4.2) आदि सूक्तों में उसका विस्तार है।

अथर्ववेद में ''**दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विश्वीड्यः।**'' आदि मन्त्रों में समस्त भुवन के एक अधिपति की बात अनेकत्र कही गई है। यह सर्वात्मा और सर्वतनु है। सबकी काया में उसकी काया है। पृथिवी, आकाश, अन्तरिक्ष सभी उसीके रूप हैं। विराट्, परमेष्ठी, प्रजापति ये सब उसी में समाये हुए हैं।

सर्वात्मा सर्वतनुः सह यन्मेऽस्ति तेन (५.६.१३)

स वेद पुत्रः पितरं स मातरं स पुनर्भवत् स भुवन् पुनर्भवः।
स द्यामौर्णमन्तरिक्षं स्वकं स इदं विश्वमभवत् स आभवत्।।
(५.१.२)

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा।।
(२.१.३)

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिर्वैश्वानरः सह पङ्भ्या श्रितः।
(१३.३.५)

यह परम तत्व सब में ओतप्रोत है.उससे सब उपजता है और सब में वह उपजता है। वह काल को जन्म देता है और काल से जन्म भी लेता है। उसीसे दिन और राते हैं और दिन और रातों से वह है।

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत।
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत।।(१३.७.३)

वही होता है वही यज्ञ है, वही अध्वर्यु है और वही हवि है।

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः।।(१९.४२.१)

अथर्ववेद के इस मन्त्र के अभिप्राय गीता में भी ''ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्मौ ब्रह्मणा हुतम्। । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मयज्ञः सनातनः'' के द्वारा व्यक्त किया गया है।

निर्गुण निराकार का सगुण साकार में रूपान्तरण :

ऊपर ऋग्वेद के नासदीय सूक्त की चर्चा की गई है। सृष्टि के आरम्भ में कोई एक स्वतः उत्पन्न हुआ यह कह कर नासदीय सूक्त के चौथे मन्त्र में ऋषि कहते हैं – कामस्तदग्रे समवर्ताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् – फिर उससे सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ वही मन का प्रथम विकार था।

कोई एक जो सृष्टि के आरम्भ में विद्यमान था, या जिसने अपने को अपने से रच लिया था, वह निर्गुण और निराकार था। उसमें सगुण और साकार होने का भाव भी स्वतः जागता है। यह भाव ही काम है।

अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के इक्कीसवें सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के कण कण में जो अग्नि व्याप्त है, वही काम है। अथर्ववेद का 19वें काण्ड का 52वां सूक्त कामसूक्त है। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं और देवता काम हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में काम को सृष्टि का मूल तत्व बताया है, नासदीय सूक्त के उस मन्त्र की पहली पंक्ति अथर्ववेद में कामसूक्त में दो शब्दों केपरिवर्तन के साथ यथावत् दोहराई गई है। पहला मन्त्र यह है –

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि।

काम का एक सर्वव्यापी तत्व के रूप में वर्णन इस सूक्त में भी किया गया है।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि।।२।।
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये।
आस्मा आशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन् त्स्वः।।३।।
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्हृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्तदैतूपमामिह।।
यत् काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृद्ध्यतामथैतस्य हविषो ब्रीहि स्वाहा।।५।।

अथर्ववेद का ९.२ भी कामसूक्त है। इसके ऋषि अथर्वा हैं, देवता काम हैं। काम का देवताओं के देव के रूप स्तवन इस सूक्त में किया गया है। नासदीय सूक्त तथा ऊपर उल्लिखित कामसूक्त में सृष्टि के आरम्भ में काम के सर्वप्रथम उत्पन्न होने की बात कही गई है (९.२.१९)। जितना द्यावापृथिवी का प्रसार है, जितना पानी सब ओर है, जितनी अग्नि सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उससे भी अधिक बृहत् काम है। वह दिशाओं और प्रदिशाओं से अधिक विस्तृत प्रसार वाला है।

बहुदेववाद, एकेश्वरवाद तथा अद्वैत

देवतत्व का आशय विविधता में एकता ही नहीं, एकता में विविधता भी है। सब कुछ एक मूल से निकला है। ऋग्वेद (1.164.46) में कहा गया है–

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः सुपर्णो गरुत्मान्
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(इंद्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण गरुत्मान्, अग्नि, यम तथा मातरिश्वा – इन सब के रूप में एक ही परम तत्व को विप्र या ज्ञानी जन नाना प्रकार से बताते हैं।)

ऋग्वेद के आठवे मंडल में कहा गया है–

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध
एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति
एकं वा इदं विबभूव सर्वम्।।

(एक अग्नि ही बहुधा समिद्ध होता है नाना रूपों में प्रज्ज्वलित होता है। एक ही सूर्य ही जो सारे संसार में व्याप्त है। एक ही उषा है जो इस सबको को प्रकाशित करती है। एक ही परम तत्व है, जो नाना रूपों में प्रकट होता है।) यहाँ अद्वैत के प्रतिपादन के लिये अग्नि, सूर्य और उषस् के दृष्टान्त दिये गये हैं। अग्नि मूलतः एक ही तत्व है। उसी को बार बार प्रज्ज्वलित किया जाता है। चूल्हे की आग हो या दावानल की अग्नि हो या जठराग्नि सब में वही एक अग्नि है। इसी तरह परम तत्व एक हो कर नाना रूपों में व्यक्त होता है।

ऋग्वेद में एक एक देवता को ब्रह्म या परमतत्व बता कर शेष सब को उस एक के ही रूप बता कर भी अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है। ऋषि कहते हैं-- अग्नि ही इंद्र, वृषभ, उरुगाय विष्णु, ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति भी है–

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि, त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते (ऋग्वेद, ८.५९.२)

अथर्ववेद में तो सारे देवों की मूल भूत एकता का विचार और भी सुस्पष्ट तथा सुदृढ रूप में अनेकत्र अभिव्यक्त किया गया है। एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्य

एक एव नमस्यः सुशेवाः।(अथर्ववेद, २.२.१-२)
योऽयमर्यमा स वरुणः स रुद्रः महादेवः।
सोऽग्निः स उ सूर्यः स उएव महायमः।।(अथर्ववेद,१३.४.४-५
एको ह देवो मनसि प्रविष्टो प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः। (अथर्ववेद १.८.२८)
यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवान् एके ब्रह्मविदो विदुः।।(१.७.२७)

कठोपनिषत् (5.9) इसी परंपरा में अग्नि को समस्त ब्रह्मांड में अनुप्रविष्ट और प्रत्येक रूप के समतुल्य प्रतिरूप की सृष्टि करने वाला बताता है– अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

वस्तुतः वैदिक देववाद में देवता मनुष्य की आंतरिक ऊर्जा के प्रतीक हैं। शतपथ ब्राह्मण में देव का अर्थ प्राण ही किया गया है। इसी का व्यत्क्रम कर के वेद के ऋषि प्राण के लिये कहते हैं – प्राणा वै देवाः। समस्त देवता ऊर्जा के ही रूप हैं, पर यह ऊर्जा विज्ञान की इनर्जी न हो कर चेतनामय ऊर्जा है। इसलिये अग्नि के विषय में ऋषियों ने कहा कि अग्नि ही सब देवता है – अग्निः सर्वाः देवताः (ऐतरेयब्रा. 2.3)। तब अग्नि, वरुण, इंद्र आदि भिन्न भिन्न नाम इस चेतन्यमय ऊर्जा के नाना रूपों को दिये गये इसका कारण यह है कि यह ऊर्जा अलग अलग रूपों में अलग अलग काम करती है। ये रूप घनता, विरलता तथा तरलता के कारण बनते हैं। घनता, विरलता तथा तरलता के कारण बनने वाले रूपों को यजुर्वेद में ध्रु, धरुण और धर्म कहा गया है। यास्क ने इन्ही को पृथिवीस्थानीय, अंतरिक्षस्थानीय और द्युस्थानीय देवता बताया है।

यास्क ने वैदिक कवियों की देवदृष्टि के विवेचन में उचित ही कहा है कि महैश्वर्य से संपन्न होने के कारण एक ही देव की आत्मा विविध रूपों में शंसित होती है। सारे देवता एक ही आत्मा के अंश हैं। प्रकृति के सार्वात्म्य के कारण ये सारे देवता एक दूसरे से जन्म लेते हैं, और एक दूसरे को उत्पन्न भी करते रहते हैं। आत्मा ही इनका रथ है, आत्मा ही इनका आयुध है और वही इनका सब कुछ है –

''महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनो अन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।
प्रकृतिसार्वात्म्याच्च। इतरेतरजन्मानो भवन्ति इतरेतरकृतयः।
आत्मा वैषां रथो भवति। आत्मायुधम्। आत्मा सर्वस्य देवस्य।''
(निरुक्त, ७.२)

उपसंहारः

वेद में परम तत्व या अद्वैत एक स्वयम्भू, स्वात्मपर्यवसित स्वानुशासित व्यवस्था का नाम है। पुराणों में ब्रह्मा या प्रजापति को स्वम्भू सी दृष्टि से कहा गया है। वेद के ऋषियों ने एक अद्वैत तत्व का अपनी तत्वोन्मेषिणी दृष्टि से विवेचन किया है। अद्वैत की यह अवधारणा द्वैत में और फिर नानात्व और आनन्त्य में पल्लवित होती हुई पुनः अद्वैत में पर्यवसित होती है। अतः अद्वैत, द्वात और नानात्व या आनन्त्य एक ही स्थिति के पर्याय हो जाते हैं।

ऋषियों का चिन्तन परम तत्व का उसके आनन्त्य और बहुत्व में आख्यान करता है। शंकर, रामानुज, माध्व आदि दार्शनिक अनन्तोन्मुखी दृष्टि का अपने अपने वैचारिक साँचों में परिसीमन करते हैं। बीसवीं शताब्दी के विचारकों में रामावतार शर्मा और रामविलास शर्मा वेदों के अद्वैतपरक विमर्श की ओर मुड़ते हैं। रामावतार शर्मा अपने सर्वात्मकतावाद के सिद्धान्त के द्वारा तथा रामविलास शर्मा सर्वास्तित्ववाद के प्रतिपादन के द्वारा वैदिक अद्वैततत्व का उसकी समग्रता में पुनःसन्धान करते हैं, जिसकी चर्चा आगे कभी की जायेगी।

– लेखक, संस्कृत और हिन्दी के समादृत कवि-रचनाकार, आलोचक और अनुवादक, साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित।
21 लेन्डमार्क-3, भेल संगम सोसायटी, होशंगाबाद रोड, भोपाल- 462026
सम्पर्क : 9999836088

■

आलेख

गोंड रानी कमलापतिः भोपाल की अन्तिम हिन्दू रानी

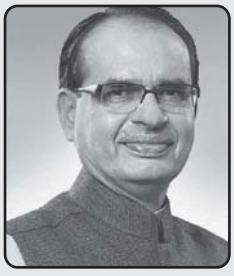

शिवराज सिंह चौहान

इतिहास के पन्नों को पलटने से ज्ञात होता है कि 1600 से सन् 1715 तक गिन्नौरगढ़ किले पर गोंड राजाओं का आधिपत्य् रहा तथा भोपाल पर भी उन्हीं का शासन था। गोंड राजा निज़ाम शाह की सात पत्नियाँ थीं, जिनमें कमलापति सबसे सुंदर थीं। उनकी इच्छा से तालाब के तट पर एक महल का निर्माण किया गया, जो सन् 1702 में पूर्ण हुआ, जिसे आज रानी कमलापति महल के नाम से जाना जाता है। आज इसके अवशेष छोटे और बड़े तालाब के पार्क में देखे जाते हैं। ईसवी सन् 1989 से भारतीय पुरातत्व विभाग ने इस महल को अपने संरक्षण में ले लिया। इसमें एक छोटी चित्र प्रदर्शनी भी है। गोंड समुदाय का राजवंश गिन्नौरगढ़ से बाड़ी तक फैला हुआ था। उनका साम्राज्य गढ़ा कटंगा (मंडला) 52 गढ़ के आधिपत्य में था। रायसेन किला ईस्वी सन् 1362 से 1419 तक 57 वर्ष राजा रायसिंह के आधिपत्य में था। यह किला इनके द्वारा बनवाया गया था। ईस्वी 14वीं में जगदीशपुर (इस्लाम नगर) में गोंड राजाओं का आधिपत्य रहा। इस महल को भी गोंड राजाओं के द्वारा बनवाया गया था। सन् 1715 में अंतिम गौंड राजा नरसिंह देवड़ा रहे। भोपाल शाही ईस्वी 476 से 533 लगभग 60 वर्षों तक इनका शासन रहा। गोंड समाज के प्रथम धर्मगुरू पारी कुपार लिंगो बाबा ने पाँच देव सगा समाज वाले के लिये बैरागढ़ का स्थान निश्चित किया था। तभी से गोंडवाना समाज के लोग बैरागढ़ से हजारों किलोमीटर की दूरी पर निवास करने के बावजूद भी बैरागढ़ में बड़ा देव की पूजा-अर्चना करने आते हैं। यह गोंडों का सबसे बड़ा देव-स्थल है।

बाड़ी जिला रायसेन का अंतिम शासक चैन सिंह 16वी ईस्वीं में रहा। ईसवी 16वी सदी में सलकनपुर जिला सीहोर रियासत के राजा कृपाल सिंह सरौतिया थे। उनके शासन काल में वहाँ की प्रजा बहुत खुश और सम्पन्न थी। उनके यहाँ एक खूबसूरत कन्या का जन्म हुआ। वह बचपन से ही कमल की तरह बहुत सुंदर थी। उसकी सुंदरता को देखते हुए उसका नाम कमलापति रखा गया। वह बचपन से ही बहुत बुद्धिमान और साहसी थी और शिक्षा, घुड़सवारी, मल्लयुद्ध, तीर-कमान चलाने में उसे महारत हासिल थी। वह अनेक कलाओं में पारंगत होकर कुशल प्रशिक्षण प्राप्त कर सेनापति बनी। वह अपने पिता के सैन्य बल के साथ और अपने महिला साथी दल के साथ युद्धों में शत्रुओं से लोहा लेती थी। पड़ोसी राज्य अकसर खेत, खलिहान, धन-सम्पत्ति लूटने के लिए आक्रमण किया करते थे और सलकनपुर राज्य की देख-रेख करने की पूरी जिम्मेदारी राजा कृपाल सिंह सरौतिया और उनकी प्रिय राजकुमारी कमलापति की थी, जो आक्रमणकारियों से लोहा लेकर अपने राज्य की रक्षा करती रही।

राजकुमारी धीरे-धीरे बड़ी होने लगी और उसकी खूबसूरती की चर्चा चारों दिशाओं में होने लगी। इसी सलकनपुर राज्य में बाड़ी किले के जमींदार का लड़का चैन सिंह जो राजा कृपाल सिंह सरौतिया का भांजा लगता था, वह राजकुमारी कमलापति से विवाह करने की इच्छा रखता था। लेकिन उस छोटे से गाँव के जमीदार से राजकुमारी कमलापति ने शादी करने से मना कर दिया।

16 वीं सदी में भोपाल से 55 किलो मी. दूर 750 गाँवों को मिलाकर गिन्नौरगढ़ राज्य बनाया गया, जो देहलावाड़ी के पास आता है। इसके राजा सुराज सिंह शाह (सलाम) थे। इनके पुत्र निजामशाह थे, जो बहुत बहादुर, निडर तथा हर कार्य-क्षेत्र में निपुण थे। उन्हीं से रानी कमलापति का विवाह हुआ।

राजा निजाम शाह ने रानी कमलापति के प्रेम स्वरूप ईस्वी

1700 में भोपाल में सात मंजिला महल का निर्माण करवाया, जो लखौरी ईंट और मिट्टी से बनवाया गया था। यह सात मंजिला महल अपनी भव्यता, सुंदरता और खूबसूरती से लिए प्रसिद्ध था।रानी कमलापति का वैवाहिक जीवन काफी खुशहाल व्यतीत हो रहा था। वह अपना वैवाहिक जीवन हँसी-खुशी के साथ राजा निजामशाह के साथ व्यतीत कर रही थी। उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम नवल शाह था।

बाड़ी किले के जमींदार का लड़का चैन सिंह राजा निजामशाह का भतीजा था। वह राजकुमारी कमलापति की शादी होने के बावजूद भी अभी उससे विवाह करने की इच्छा रखता था। उसने अनेक बार राजा निजामशाह को मारने की कोशिश की, जिसमें वह असफल रहा। एक दिन प्रेम पूर्वक उसने राजा निजामशाह को भोजन पर आमंत्रित किया और भोजन में जहर देकर उनकी धोखे से हत्या कर दी। राजा निजामशाह की मौत की खबर से पूरे गिन्नौरगढ़ में खलबली हो गई। चैनसिंह ने रानी कमलापति को अकेले जानकर उन्हें पाने की नीयत से गिन्नौरगढ़ के किले पर हमला कर दिया। रानी कमलापति ने उस समय अपने कुछ वफादारों और 12 वर्षीय बेटे नवलशाह के साथ भोपाल में बने इस महल में छुप जाने का निर्णय लिया, जो उस समय सुरक्षा की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण था। कुछ दिन भोपाल में समय बिताने के बाद रानी कमलापति को पता चला कि भोपाल की सीमा के पास कुछ अफगानी आकर रूके हुए हैं, जिन्होंने जगदीशपुर (इस्लाम नगर) पर आक्रमण कर उसे अपने कब्जे में ले लिया था। इन अफगानों का सरदार दोस्त मोहम्मद खान था, जो पैसा लेकर किसी की तरफ से भी युद्ध लड़ता था। लोक मान्यता है कि रानी कमलापति ने दोस्त मोहम्मद को एक लाख मुहरें देकर चैनसिंह पर हमला करने को कहा।

दोस्त मोहम्मद ने गिन्नौरगढ़ के किले पर हमला कर दिया जिसमें चैनसिंह मारा गया और किले को हड़प लिया गया। रानी कमलापति को अपने छोटे बेटे की परवरिश की चिंता थी इसीलिए उन्होंने दोस्त मोहम्मद के इस कदम पर कोई आपत्ति नहीं जताई। दोस्त मोहम्मद अब सम्पूर्ण भोपाल की रियासत पर कब्जा करना चाहता था। उसने रानी कमलापति को अपने हरम (धर्म) में शामिल होने और शादी करने का प्रस्ताव रखा। वह वास्तव में रानी को अपने हरम में रखना चाहता था।

दोस्त मोहम्मद खान के इस नापाक इरादे को देखते हुए रानी कमलापति का 14 वर्षीय बेटा नवल शाह अपने 100 लड़ाकों के साथ लाल घाटी में युद्ध करने चला गया। इस घमासान युद्ध में दोस्त मोहम्मद खान ने नवल शाह को मार दिया। इस स्थान पर इतना खून बहा कि यहाँ की जमीन लाल हो गई और इसी कारण इसे लाल घाटी कहा जाने लगा। इस युद्ध में रानी कमलापति के 2 लड़के बच गये थे, जो किसी तरह अपनी जान बचाते हुए मनुआभान की पहाड़ी पर पहुँच गये। उन्होंने वहाँ से रानी कमलापति को काला धुंआ कर संकेत किया कि 'हम युद्ध हार गये हैं और आपकी जान को खतरा है।'

रानी कमलापति ने विषम परिस्थिति को देखते हुए अपनी इज्जत को बचाने के लिए बड़े तालाब बाँध का सँकरा रास्ता खुलवाया जिससे बड़े तालाब का पानी रिसकर दूसरी तरफ आने लगा। इसे आज छोटा तालाब के रूप में जाना जाता हैं। इसमें रानी कमलापति ने महल की समस्त धन-दौलत, जेवरात, आभूषण डालकर स्वयं जल-समाधि ले ली।

दोस्त मोहम्मद खान जब तक अपनी सेना को साथ लेकर लाल घाटी से इस किले तक पहुँचा उतनी देर में सब कुछ खत्म हो गया था। दोस्त मोहम्मद खान को न रानी कमलापति मिली और न ही धन-दौलत। जीते जी उन्होंने भोपाल पर परधर्मी को नहीं बैठने दिया। स्रोतों के अनुसार रानी कमलापति ने सन् 1723 में अपनी जीवन-लीला खत्म की थी। उनकी मृत्यु के बाद दोस्त मोहम्मद खान के साथ ही नवाबों का दौर शुरू हुआ और भोपाल में नवाबों का राज्य हुआ।

नारी अस्मिता और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए रानी कमलापति ने जल-समाधि लेकर इतिहास में अमिट स्थान बनाया है। उनका यह कदम उसी जौहर परंपरा का पालन था, जिसमें हमारी नारी शक्ति ने अदम्य साहस के साथ अपनी अस्मिता, धर्म और संस्कृति को बचाया है। उसी परंपरा का निर्वाह करते हुए रानी कमलापति ने भी जीवित रहते अपनी नारी गरिमा को विधर्मियों से बचा लिया और पीढ़ियों के लिए यह प्रेरणा प्रदान की कि अपने धर्म की रक्षा के लिए किसी को भी बलिदान देने से पीछे नहीं हटना चाहिए।

गोंड रानी कमलापति आज तीन सौ वर्ष बाद भी प्रासंगिक हैं और उनके बलिदान का सम्मान करके हम कृतज्ञ हैं। भोपाल का हर हिस्सा उनकी कहानी सुनाता है। यहाँ के तालाबों के पानी में उनके बलिदान की गूंज आज भी सुनी जा सकती है। ऐसा लगता है मानो वे स्वयं यहाँ की कल-कल धारा हैं। गोंड रानी अब पानी बनकर भोपाल की रवानी में अविरल बहती हैं।

- लेखक-मध्यप्रदेश शासन के मुख्यमंत्री है।

आलेख

लेखक की आज़ादी

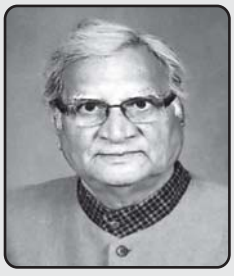

धनंजय वर्मा

लेखक की आज़ादी के प्रसंग में एक आदर्श स्थिति की उम्मीद और कल्पना शायद हर लेखक में होती है। यह सपना होता है कि उसे अपने विचार, अनुभूति और दर्शन और उसे रचने की आज़ादी हो, उसे किसी विचारधारा, दार्शनिक मतवाद या राजनीतिक दल से न बाँधा जाय। कहा यह भी जाता है कि लेखक-कलाकार या विचारक के लिए कोई एक दल ही गल़त नहीं होता, बल्कि हर दल ग़लत हो जाता है और उसे इतनी छूट तो मिलनी ही चाहिए कि वह सच को सच और झूठ को झूठ कह सके।

अब सोचना यह है कि क्या ऐसी कोई स्थिति मुमकिन है ? इतिहास के किसी काल खण्ड में रही है ? और क्या हमारे ज़माने में लेखक को इतनी छूट है कि वह अपने अनुभव, अपनी दृष्टि और लेखन में स्वतंत्र रह सके ? बिना किसी बाहरी या भीतरी संकट के क्या वह अपनी समग्र और स्वायत्त रचना कर पाता है ? क्या पूर्ण और निरपेक्ष स्वतंत्रता नाम की कोई चीज कहीं होती है ?

क्या यह भी एक ज़रूरी सवाल नहीं है कि जब लेखन की आज़ादी होती है, तब ही हमारे लेखक उसका क्या, कैसा और किसके हक़ में इस्तेमाल करते हैं ? उससे कितनी रचनात्मक समृद्धि हासिल होती है ? और फिर क्या इसकी भी पड़ताल नहीं की जानी चाहिए कि किशोर और रूमानी भावुकता से भरे गीतों और इश्किया शायरी में कब, कहाँ, किसकी आज़ादी सीमित होती है ? ऋतुगीतों और त्योहारों पर मौसमी साहित्य रचने में किसकी, क़लम, कब, किसने रोकी है ? आज़ादी तो छोड़िए, पूरी स्वच्छन्दता बल्कि उच्छृंखलता रही है। एक ऐसा दौर भी गुज़रा है जब कमर के नीचे और घुटनों के ऊपर ही सारी कविता क़ैद रही है। जब विद्रोही और क्रान्तिकारी अवाँगाई के सारे हरावल दस्ते जांघों के जंगल में ही गुरिल्ला युद्ध करते रहे हैं और आम आदमी और जिंदगी के संघर्षों में शामिल होने के बजाय 'समांतर' चलते रहें हैं, ताकि जब, जहाँ मौका लगे और सींग समाये, घुस आ मुड़ लें। या तो जीवन-यथार्थ से कटकर अस्तित्ववादी भूल-भुलैयों में सारी 'एंग्विश' भोगी जाती रही है या फिर यथार्थवाद के नाम पर नंगे और मानव विरोधी लेखन का सैलाब आया है। तब लेखक की स्वतंत्रता पर कौन से बंधन थे ? या होते हैं ? बल्कि सत्ता और प्रतिष्ठान का तो कुल मंशा ही होता है, रहा है, कि इनके चलते बुनियादी सवालों, मुद्दों, मसलों और सच्चाईयों से लोगों का ध्यान बँटा रहे। सत्ता और प्रतिष्ठान के कान तो तब खड़े होते हैं, जब शब्द की अपनी ताकत रंग लाती है, विचार जब विस्फोटक हो जाते हैं, जब सामाजिक, राजनीतिक रूप से साहित्य की भूमिका कारगर साबित होने लगती है। जब लेखन, शासक-शोषक और प्रभुत्व-सम्पन्न वर्ग के लिए चुनौती और ललकार बन जाता है, याने लेखक की आज़ादी पर खतरा तब आता है जब वह सीधे-सीधे शासक और शोषक वर्ग के लिए खतरा पैदा करता है और उसके तेवर साफ़ तौर पर राजनीतिक और पक्षधर होते हैं... और इस मामले में सारा इतिहास इस बात का गवाह है कि कोई भी सत्ता और कोई भी प्रतिष्ठान, लेखक और उसकी आज़ादी के पक्ष में कभी नहीं रहता। सत्ता अपना असली चेहरा साहित्य के आइने में प्रतिबिम्बित होते नहीं देख सकती क्योंकि वह उसके लिए चुनौती होता है और प्रतिष्ठान अपने अन्तर्विरोधों को अपनी छत्र-छाया और चाकरी के लेखन में नुमायाँ होते क्या कभी सहन कर सकता है ?

इसलिए जहाँ तक राजनीति के प्रसंग में लेखक की आज़ादी का सवाल है, उसका हर दावा झूठा है और हर आश्वासन, छलावा। सत्ता और प्रतिष्ठान-दोनों के संदर्भ में राजनीतिक मत और विचारधारा की स्वतंत्रता और उसकी रचना का रास्ता हमेशा जोखिमों से भरा रहा है। इस दिशा में लेखक को कहीं-कोई सुरक्षा नहीं मिली है और जिस भी लेखक या विचारक ने राजनीतिक और सत्ता के सवालों पर कभी स्वतंत्र होकर कुछ लिखा है, उसने उसका भरपूर खामियाजा भी भुगता है। जब तक एक राजनीतिक दल, सत्ता या प्रभुत्व में होता है, तब तक उससे जुड़े और उसके हिमायती, उसकी सरपरस्ती में जीने वाले लेखक ज़रूर अपनी स्वतंत्रता का अबाध उपभोग करते हैं कि, बकौल ग़ालिब, 'हुआ है शह का मुसाहिब, फिरे है इतराता', लेकिन जैसे ही सत्ता बदलती है, उन्हें भी उसकी पूरी-पूरी कीमत चुकानी पड़ती हैं, क्योंकि इतिहास गवाह है, कि सत्ताएँ तो बदलती हैं, सत्ता का चरित्र नहीं बदलता- वो चाहे दक्षिण पंथी हो फिर वामपंथी, कोई फ़र्क नहीं पड़ता। और कौन

जाने, शायद इसीलिए आज का लेखक इतना चतुर-सुजान हो गया है कि तटस्थता और निष्पक्षता का पूरा कायिक और वाचिक अभिनय करते हुए, उसने हर तब्दीली के मौके पर सत्ता-सापेक्ष जोड़-तोड़ में खासी महारत हासिल कर ली है। ऐसे लोग अक्सर ही थोड़ा लहक कर, ज़रा गला खोलकर आज़ादी की गुहार लगाते हैं और लगभग हर नारे के साथ परचम लहराते हुए पेश-पेश होते हैं।

लेखक की स्वतंत्रता के इस राजनीतिक संदर्भ में, जिन बंदिशों की आमतौर पर, बात की जाती है, उसके सर्व-सत्ता-वादी और तानाशाही आयाम ही हमारे सामने अब तक पेश किये जाते रहे हैं। मसलन अब तक यूरी ओलेशा, पास्तरनाक, कुजनेत्सेव, सोल्झेनित्सिन वगैरह की मिसालें देकर उस व्यवस्था और तंत्र को ही कठघरे में खड़ा किया जाता रहा है और लेखकों के प्रति बरती जाने वाली क्रूर असहिष्णुता, ईर्ष्या-द्वेष और हिंसा, दमन या निष्कासन की घटनायें ही पेश की जाती रही हैं। यह सब कितना दुर्भाग्यपूर्ण है, कहने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन सत्ता और व्यवस्था के उस बंधन को, लेखकीय स्वतंत्रता के उस दमन को, हम नज़रअन्दाज और शायद जानबूझकर उसकी अनदेखी करते रहे हैं जो पूंजीवादी और तथाकथित 'स्तंत्रत दुनिया में बड़े पैमाने पर होता रहा है। इस प्रसंग में मुझे बिन्ड्हैम लीविस का एक वाक्य याद आता है- ''जब हम रूस में इस तरह की वारदातों के बारे में बात करते हैं तब हर रिवाज़तन इस हक़ीक़त को भूल जाते हैं कि बड़ी होशियारी और आमतौर पर नामालूम तरीके से हम सब भी इंग्लैंड और अमरीका में, अपने बीच, अपने तरीके से, वही सब करते हैं।''

ऐसा क्यों होता है कि एक बंधन को तो हम, 'रेजीमेन्टेशन' करार देते हैं और दूसरे को 'खम-ए-दस्त-ए-नवाजिश' समझ लिया जाता है। तथाकथित स्वतंत्र दुनिया में विचारों, प्रतिक्रियाओं, रुचियों, व्यवहारों, संवेदनाओं और चेतना की जो एक व्यावसायिक 'कण्डीशनिंग' होती है, उससे लेखकीय, आज़ादी कितनी बची रहती है? क्या आपको नहीं लगता कि समकालीन दुनिया और माहौल में विचारों की स्वतंत्रता, दरअसल, हर सिम्त एक गुनाह और जुर्म है और उसकी सजायें भी उतनी ही अदृश्य, और मद्धम ज़हर की मानिन्द मारक हैं। लेखन और आलोचना में विचारों की स्वतंत्रता, निजता और असहमति कमबख्त कितनी यातना भरी और अकेला कर जाने वाली हैं? मैं नहीं समझता कि अब इस बात पर भी जोर देने की ज़रूरत है कि जिस किसी लेखक ने किसी पंथ या दल, किसी संघ या गुट, किसी खेमे या गिरोह की हिमायत या सरपरस्ती पर भरोसा नहीं किया है और पूरी निष्ठा से स्वतंत्र रहने की कोशिश की है, उसकी स्थिति, दशा और नियति कितनी दुर्भाग्यपूर्ण और संकटग्रस्त रही है! इसलिए अब तो लगता है कि लेखक की आज़ादी, महज़ एक मिथ है। क्या इस संघटना को अब आँख में उंगली डालकर दिखाने की ज़रूरत है कि हमारे ज़माने में लेखक की आज़ादी कितने प्रच्छन्न तरीकों और अदृश्य तकनीकों से सीमित और प्रतिबंधित की जाती है? मसलन सामाजिक पद, प्रतिष्ठा और 'ग्लैमर' के आकर्षण और प्रचार-प्रलोभन की गिरफ्त में लेखक कैसे आ जाते हैं? और आकर कितने आज़ाद बचे रहते हैं? अपने समकालीन और प्रचलित विश्वासों और मतों से एक लेखक किस हद तक आज़ाद रह पाता है? उनसे उसकी ज़ेहनी आज़ादी कितनी बरकरार रह पाती है? फिर व्यक्ति के रूप में लेखक की स्थिति, परिस्थिति, वर्ग-सम्बद्धता, वर्ग मानसिकता, वर्ग चरित्र और वर्ग हित भी क्या उसे चीजों, घटनाओं और मतों के प्रति तटस्थ और स्वतंत्र रहने देते हैं? समकालीन मुद्दों और मसलों पर उसे उन मतों और विचारों की हिमायत करनी पड़ती है, जहाँ उसे समर्थन और सुरक्षा मिलती है और फिर उन मतों और विचारों को वह अपने लिये क़िलों और विरोधियों के खिलाफ औज़ारों की तरह इस्तेमाल करने लगता है। मौजूदा दौर में क्या नितान्त निजी, स्वायत्त और स्वयं सम्पूर्ण जीवन और अनुभव मुमकिन रह गया है? जीने के लिए आर्थिक और भौतिक गुलामी तो है ही, जिससे और-और गुलामियाँ जनम लेती हैं, अलावा इसके जातीय और वर्गीय, साम्प्रदायिक और धार्मिक आस्था और विश्वासों के अपने बंधन हैं, सामन्तवादी अवशिष्ट संस्कारों की जकड़ने हैं... कोई इनसे स्वतंत्रता की बात क्यों नहीं करता? क्या यह मुमकिन है (रघुवीर सहाय की एक कविता पंक्ति को थोड़ा बदलकर) कि बनिया, बनिया, रहे / बाम्हन, बाम्हन, और कायथ, कायथ, रहे / पर जब कविता लिखें तो 'स्वतंत्र' हो जाय?

गौर कीजिए तो क्या खुद लेखक ही लेखकों की आज़ादी को सीमित नहीं करते? किसी वर्ग, गुट या शिविर में शामिल होकर क्या लेखक अपने विचार और दृष्टि की स्वतंत्रता कायम रख सकता है? और इनसे अलग लेखकों की नियति क्या किसी से छिपी है? लेखकों के अपने पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, एक-दूसरे के प्रति और एक-दूसरे के लेखन के और विचारों के प्रति एक असंवेदनशील और असहिष्णु ही नहीं, बल्कि शिकार सूंधने वाले रुख और रवैये क्या रचना की स्वतंत्रता को बाधित और प्रतिबंधित नहीं करते? क्या आपको बताने की ज़रूरत है कि लेखक ही लेखक का किस तरह 'हाका' करते हैं और फिर घेर कर उसे सिर्फ इसलिए पीटा जाता है कि वह उनका समर्थन नहीं करता? और लेखकों के एक ही गुट, दल या शिविर में भी लेखक कितना आज़ाद होता है? यदि होता तो मुक्तिबोध सरीखे पक्षधर और प्रतिबद्ध लेखक को यह न कहना पड़ता- ''हाँ, यह सही है कि मेरी जैसी अन्तरात्मा वाले लोग भी

मुझे धिक्कार सकते हैं, मेरे ही शिविर में मेरी हत्या हो सकती है, वास्तविक तिरस्कार हो सकता है, हुआ है, होता है, होता रहेगा सम्भवत:'' याने कई बार तो अपने ही शिविर में भी लेखक को अपने अनुभव और अभिव्यक्ति, विचार और चिन्तन की स्वतंत्रता की कीमत चुकानी पड़ती है...।

इसके अलावा समकालीन फैशन हैं, क्लीशेज है, मुद्रायें हैं, भंगिमाएँ हैं। हर दस-पाँच सालाना आन्दोलन हैं, नेतृत्व की आकांक्षा और मानसिकता है, तत्काल स्वीकृति और प्रतिष्ठा की फिक्र है, अकादेमियों और परिषदों की नौकरी है, सृजनपीठों की अध्यक्षता है, पुरस्कारों और सम्मानों की उत्कंठा है और इन सबके लिए किये जाने वाले जोड़-तोड़ हैं, समझौते और सम्बद्धताएँ हैं, जो लेखक की आज़ादी पर लगातार मँडराती होती हैं और फिर धीरे-धीरे उसे ढाँप लेती हैं, जकड़ लेती हैं। बड़ी और व्यावसायिक पत्रिकायें जिन सरकारी प्रतिष्ठानों और व्यावसायिक घरानों या राजनीतिक दलों के मुख्यालयों से निकलती हैं क्या उनके निहित स्वार्थों पर चोट करने या मुखौटे उघाड़ने के लिए लेखक स्वतंत्र है ? बावजूद इसके कि वे और उनके सम्पादक, आज़ादी के अलमबरदार हैं। उनकी सम्पादकीय नीतियाँ और दयानतदारी क्या ऐसी हैं कि लेखक और उसके लेखन की आज़ादी बरकरार रह सके ? और क्या अव्यावसायिक और साहित्यिक कही जाने वाली मंझोली और छोटी पत्रिकाओं की भी अपनी गुलामियाँ और शर्तें नहीं होतीं जो लेखकों पर बड़े नामालूम और मासूम तरीकों से लादी जाती हैं ? निष्पक्ष और निर्भीक चिन्तन के बड़बोले दावों के बावजूद उनमें अपने से अलहदा दृष्टि और विरोधी विचारों के प्रति कितनी संवेदनशीलता और सहिष्णुता रही है ? लेखन की व्यावसायिक शर्तें, कैरियर के रूप में लेखन की अनिवार्य सीमायें, प्रचार माध्यमों का अपना तंत्र और पद्धति, साहित्य में अपनी साहित्येतर महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति की गला-काट प्रतियोगिता, एक खास पाठक वर्ग को लगातार सम्बोधित करते रहने की अपनी 'कण्डीशनिंग' गर्ज ये कि हज़ार बंदिशें ऐसी कि हर बंधिश पे दम निकले...

तो दोस्तों, लेखन के प्रसंग में निरपेक्ष स्वतंत्रता नाम की कोई चीज़ मुझे तो कहीं दिखाई नहीं दी। अव्यावसायिकता का नारा भी उतना ही व्यावसायिक होकर रह गया है। राजनीति-हीनता की राजनीति भी उतनी ही चालाक और धूर्त साबित हुई है और निष्पक्षता और तटस्थता का हर दावा एक गर्वोक्ति और खालिस मक्र लगा है। चुनाँचे मेरा तो कुल एहसास यह है कि लेखक की आज़ादी कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो किसी को तश्तरी में सजा कर सादर समर्पित कर दी जाये। इसके लिए खतरे झेले गये हैं और जोखिम उठाये गये हैं। आज़ादी का मतलब अपने लिए कुछ विशेषाधिकार और अतिरिक्त छूट पा लेना नहीं है। यदि तमन्ना है कि 'राम झरोखा बैठकर सबका मुजरा' लिया जाय तो 'लुकाठी हाथ में लेकर, कबीर की तरह सरे बाज़ार होकर, 'सरकाटे भुंई धरै, तब चले हमारे साथ' का दमखम भी होना चाहिए स्वतंत्रता के साथ दायित्व की बात मुमकिन है आपको मेरा आदर्शवाद लगे, इसलिए मैं तो लेखन की आज़ादी के लिए चुनौतियाँ झेलने के दिल-गुर्दे की बात करना चाहता हूं। वो कहाँ, किसमें, कितना है ?

- लेखक-वरिष्ठ साहित्यकार, आलोचक है
द्वारा डॉ. निवेदिता वर्मा, एफ-2/31, आवासीय परिसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन- 456010, मो. 9425019863

शाश्वत संवाद

ग़ज़ल संग्रह

लेखक : **नासिर अली नदीम**

संस्करण : प्रथम, 2021
मूल्य : 300/-
प्रकाशक : साहित्य निलय, 40/49, बौद्ध नगर, प्रथम खण्ड नौबस्ता, कानपुर (उ.प्र.) 208021

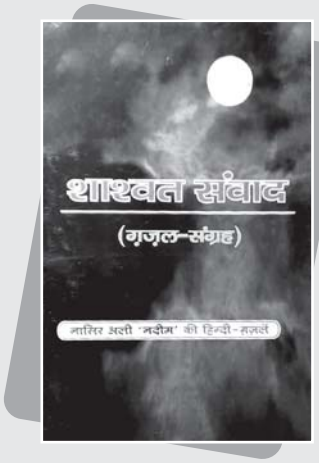

आलेख

भारत की आज़ादी का अमृत वर्ष एवं ध्रुवपद की अमृतवाणी का दिग्घोष

प्रो. डॉ. मधु भट्ट तैलंग

भारतीय शास्त्रीय संगीत, जिसका आवश्यक अंग है उसकी भारतीयता और इस भारतीयता के महत्वपूर्ण घटक हैं हमारी सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, आस्थाएं, धर्म, मान्यताएं, योग, साधनाओं का वैविध्य एवं विस्तार, भक्ति धाराएं एवं सम्प्रदायवाद, हमारा ज्ञान-विज्ञान, चिन्तन, भाषाएं, रूढ़ि, परम्पराएं एवं घराने आदि-आदि, जिसमें भारतीय जीवन एवं शैली का सम्पूर्ण दिग्दर्शन होता है। इन सभी को सत्यं, शिवं (कल्याणमय) एवं सुन्दर की भारतीय पुरातन अवधारणा के साथ अभिव्यक्ति का सफलतम रूप देने के लिए उन कलाओं की खोज, सर्जना एवं जन्म मनीषियों व रचनाधर्मी सर्जकों अथवा कलाकारों द्वारा की गयी, जिसमें हम भारतीय स्वरूप का सम्पूर्ण दर्शन मात्र ही नहीं करें अपितु उसे जीवन का अंग बनाकर जी भी पायें और वह इस रूप में स्थायित्व के साथ जनमानस में ध्रुवीयता पा सके, साथ ही आधार स्तम्भ या रीढ़ स्वरूप आधार शिला के रूप में हमारी उत्तरोत्तर साधनाओं का मार्ग प्रशस्त कर सके, उसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय संगीत विशेषकर शास्त्रीय रूप की बात करें तो इतिहास में एक मात्र ध्रुवपद शैली ही समक्ष होती है, जिसे हम विशुद्ध भारतीय शैली कह सकते हैं। विदेशियों का व्यावसायिक दृष्टि से आकर्षण का केन्द्र बने सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत में आने वाले विविध विदेशियों का भी प्रभाव इस पर नहीं पड़ सका एवं इसके साधकों ने इसी भारतीयता को प्रतिबद्धता के साथ साधते हुए उसमें गहनता के साथ विस्तार एवं विकास के नये-नये मार्ग खोजे। इस शैली को गायन-वादन के अनेक दिग्गज साधकों ने अपनी साधना का आधार अथवा बुनियाद भी बताया है। उदाहरणार्थ भारतरत्न ख्याल-सम्राट पं. भीमसेन जोशी जी के अनुसार "I belong to the kirana gharana of khyal singing, I have received extensive training in Dhruvpad from the renowned Bhakt Mangeet Singh, who belonged to Punjab. Infect, I think I can recall two and three hundred dhruvpad which I learnt. I think that having a base in Dhruvpads is very important as it help you to better Master the Notes and have a thought command over them ... I have, however specialised in khyal because I find greater freedom in this style. Dhruvpad has strong parameters and rules out of which you cannot venture it is a very disciplined style."

पद्मविभूषण बांसुरी के जादूगर पं. हरिप्रसाद चौरसिया जी के अनुसार - "Dhruvpad is undoubtedly the only para traditional in Indian Music. I belong to Senia Gharana and my initial training of music was started in the Dhruvpad style. It is essential for any student to have a base of Dhruvpad to because a good musician of Indian classical Music. Sure it is difficult music but my request to coming generation of musicians is that if they are interested in learning true and pure Indian classical Music, they must start with Dhruvpad. It is essential. I personally owe my popularity and success to Dhruvpad. As you know, my Alap is very long perheps the longest any flutist plays and this is valuable treasure, which I received from my guruma Smt. Anapurna Shankar.

''दि टाइम्स ऑफ इंडिया'' के ध्रुवपद विशेषांक, फरवरी 1986 में प्रकाशित उपरोक्त दोनों उद्धरण स्वत: प्रमाण हैं कि ध्रुवपद भारतीय शास्त्रीय संगीत की साधना का प्रमुख आधार है अथवा उसे भाषाओं के विकास में निहित व्याकरण के रूप में भी देखा जा सकता है। ग्वालियर घराने के सूर्यमान गायक पं. राजा भैया 'पूछवाले' ने भी ध्रुवपद को भारतीय संगीत का व्याकरण माना। उन्होंने कहा कि ''जिस प्रकार व्याकरण से भाषा सार्थकता प्राप्त कर लेती है उसी प्रकार ध्रुवपद ने जो राग, ताल एवं साहित्य का व्याकरण उत्तरोत्तर शैलियों को सौंपा, वही उनकी साधना का आधार बनी।'' (मेरे गुरु पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग से प्राप्त जानकारी) ध्रुवपद के विशेषण के लिए कहा जा सकता है नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सच्चिदानन्द रूप, जाकी न कछु उपाधि, पार ब्रह्म अति अनूप। सकल जगत उपादान मूल प्रकृति है निदान, जाके संयोग जनित,

व्यक्त होत नाम रूप।'' अर्थात् ध्रुवपद स्वयं नाद ब्रह्म स्वरूप है।

ठाकुर जयदेव सिंह जी ने भी ध्रुवपद को बाल्यकालीन शिक्षा का प्रमुख आधार बताते हुए उसे विश्लेषित किया कि जिस प्रकार घुटने चल रहा बच्चा एकदम भाग नहीं सकता उसी तरह ध्रुवपद द्वारा निर्देशित सीधी-सच्ची स्वरों में निहित ताल एवं भाषा अथवा साहित्य आदि की आरोहण-अवरोहण की नाव पर सवार साधना ही नाद के महासागर में अवगाहन कराती हुई तट पर पहुंचाती है।''

मेरे गुरुवर्य ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग का कथन है कि ध्रुवपद लम्बी यौगिक साधना से संबद्ध है। सीधा-सच्चा आंसपूर्ण स्वरलगाव, जिसे सिर्फ़ एक तानपुरे पर संधान किया जाता है, जिसमें षड़ज आधार स्वर पर सप्तकीय स्वरों, जो अप्रत्यक्ष हैं व निराकार हैं, उन्हें साकार करना पड़ता है। तानपुरे के इस पैमाने पर आवाज़ की कमियों को किन्हीं खटके एवं मुर्की आदि अलंकरणों का सहारा लेकर छिपाने की इसमें गुंजाइश नगण्य होती है यही कारण है कि आज जब ध्रुवपद की शिक्षा घरानों से इतर शिक्षण-संस्थानों में आ गई, वहां पाठ्यक्रमों में ध्रुवपद का अनुपात लगभग नगण्य है, अथवा वैकल्पिक है अतएव शिक्षण-संस्थानों में स्नातकोत्तर तक अधिकांश विद्यार्थियों का स्वर-ताल आदि पर अधिकार नहीं बन पाता।

ध्रुवपद गायकी इसीलिए अमरत्व लिये है क्योंकि वह अपने आप में सम्पूर्ण गायकी हैं ''**ऊँ पूर्णमदः पूर्णमदिम् पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।** उसकी पूर्णता ही एक मात्र कारण है, जिसे आज 600-700 वर्षों के उपरान्त भी आदर्श शैली के रूप में और भी सुन्दरतम स्वरूप के साथ साधकों द्वारा अंगीकार कर साधा जा रहा है। जयपुर में इन्टरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट द्वारा 2005 में आयोजित अखिल भारतीय ध्रुवपद एवं हवेली संगीत समारोह में वरिष्ठ ध्रुवपद एवं हवेली संगीत-गायक आगरा के प्रोफेसर, जो कि ख्याल गायकी में भी दक्ष हैं उन्होंने वक्तव्य में कहा था कि ध्रुवपद गायकी पर पुनर्विचार करने की आवश्कयता है क्योंकि ध्रुवपद में खटके, मुर्की एवं तान जैसे अलंकरणों को वर्जित माना जाता रहा है एवं जिन्हें उसके उपरांत जन्मीं शैलियों का अलंकरण माना जाता रहा है, जबकि सच यह है कि इन सभी को साधने का मार्ग ध्रुवपद में प्रयुक्त गमक के 15 प्रकारों तिरिप, स्फुरित, कम्पित, लोच आन्दोलित, वलि, त्रिभिन्न, कुरूला, आहत, उल्लासित, प्लावित, गुम्फित, मुद्रित, नामित एवं मिश्रित से ही निकलता है। मेरे गुरु पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग के अनुसार तानसेन ध्रुवपदिया थे और उनकी तान के चमत्कार के लिए लोकप्रचलित भी रहा कि 'तानसेन की तान पर धरा मेरू सब डोलते', किंवदन्ती भी है कि तानसेन के जन्मस्थान बेहट के कमरे की दीवार तानसेन की तान के घर्षण से आज भी टेढ़ी दिखाई देती है अर्थात् तानसेन का नाम भी तान से ही बना, जिनका मूल नाम 'तन्ना मिश्र' था।''

भारत की आज़ादी के इन 75 वर्षों में सबसे पुरानी ध्रुवपद गायकी ने भी अपने सीमित दायरे से बाहर निकल कर आज़ादी के पंख लगाकर अपनी ऐतिहासिक विकास-यात्रा में प्रगति के नये सोपान तय किये।

ध्रुवपद के विकास-क्रम को हम मोटे तौर पर तीन भागों में समय-सीमाबद्ध कर सकते हैं - 1. प्रारम्भ काल, 2. मध्य काल, 3. आधुनिक काल।

ध्रुवपद के प्रारम्भकाल को उसकी बुनियाद के निर्माण-काल के रूप में देख सकते हैं। भारतीय अवधारणा में इस सृष्टि की रचना ब्रह्मा द्वारा मानी गई। यह सृष्टि 'ऊँ' यानि ओंकार से निःसृत मानी गई है। भारतीय धर्मों में ऊँ की महत्ता सर्वमान्य है। ऊँ में निहित अकार, उकार, मकार को 'त्रिदेव' यानि ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का परिचायक माना गया है। मेरे गुरु की रचना ''प्रथम ओंकार तुमको मैं ध्याऊँ सीस नवाऊं। तू ही ब्रह्मा, तू ही विष्णु, तू ही परम निरंकार, जन-जन हेतु लियो जग में अवतार। एक और घरानेदार चीज़ में भी वर्णित है'' ''नाभि के कमल ते, तीन मूरत भई, भिन्न जाने सो ही नरक भोगी।'' भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधार हमारे वेद हैं, ''**सप्त स्वरास्तु गायन्ते सामगैः बुधैः।**''

''**उदात्ते निषाद गान्धारौ, अनुदात्ते रिषभ धैवतो।**
स्वरित प्रभवाह्येते, षडज मध्यम पंचमो।''

त्रि स्वर से सप्त स्वरों का अनुक्रम एवं स्वरों का उतार-चढ़ाव या आरोहण-अवरोहण का बीजमंत्र हमें उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित और स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत आदि प्रकारों प्राप्त हुए। ध्रुवपद को आकार देने से पूर्व हमारे यहां मंत्र, वृत्त, गीत, छन्द, ध्रुवा, जाति, प्रबन्ध जैसे अनेक गेय रूप परिलक्षित हुए, जिस पर ध्रुवपद की बुनियाद खड़ी हुई। 'ध्रुवपद', जिसे बहुतायक रूप से 'ध्रुपद' नाम से भी उच्चारित किया जा रहा है, जो उसका अपभ्रंश, तद्भव या हिन्दी नामान्तर रूप है एवं जिसे ज़ुबान की आसानी के कारण प्रयोक्ताओं ने ग्रहण कर लिया। ध्रुपद मुख्यतः दो शब्दों का समन्वय है 1. ध्रुव 2. पद। 'ध्रुव' का अर्थ ''नियत'' एवं दृढ़ तथा 'पद' का अर्थ है 'गेय शब्द समूह' अर्थात् ध्रुवपद वह गान है, जिसका प्रत्येक

शब्द निश्चित स्वर और ताल में निबद्ध हो। भरत के अनुसार ''ध्रुवा'' शब्द की व्याख्या है – ''वर्ण, अलंकार, लय, यति एवं उपपाणि'' का नियत प्रयोग एवं 'पद' की व्याख्या 'पद' अक्षर संबद्ध प्रत्येक वस्तु'' (नाट्यशास्त्र 32, 13 एवं 24) मेरा इसके सुधि पाठकों एवं साधकों से निवेदन है कि 'ध्रुवपद' जिसे कालान्तर में 'ध्रुपद' कहा जा रहा है वह निरर्थक है यानि उससे कोई भी अर्थ की प्राप्ति नहीं होती अतएव उसके शुद्ध रूप को ही अपनाया जाये। भारतीय संस्कृति की स्थापना के लिए ये मेरा 'शुद्ध के लिए युद्ध' के रूप में पाठकों के लिए आग्रह होगा। एक और बात विचारणीय है कि 'पद' का अर्थ प्रत्येक अक्षर संबद्ध गीतनुमा छन्दोबद्ध कविता नहीं माना जा सकता, जिसमें भक्ति का समावेश, होगा वही 'पद' की श्रेणी में होगा। उदाहरणार्थ हम कवि अज्ञेय की कविता को पद नहीं बोलते किन्तु सूर का पद बोला जाता हैं उसी प्रकार सूर के पद को कविता नहीं बोलते अपितु पद बोला जाता हैं। यानि भारतीय संगीत, जिसे 'हिन्दुस्तानी संगीत' भी बोला जाता है उसमें हिन्दूवादी संस्कृति में पूजे जा रहे कृष्ण, शंकर, दुर्गा एवं सरस्वती आदि देवी–देवताओं की भक्तिपरक रचनाएं ही गाई जाती थीं किन्तु धर्मनिरपेक्ष भारत में कालान्तर में मुगल राजाओं के संरक्षण में रचनाकारों ने उसमें पीर–पैगम्बरों एवं बादशाहों की प्रशंसा एवं स्तुतियों को भी जोड़कर, उसे और व्यापक बनाया।

ध्रुवपद की पूर्ण स्वतंत्र गेय रचना वेदों से क्रमशः विविध विशेषणों को लेते हुए ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर काल के मध्य प्राप्त होती है, इसके पुरोधा भक्तिकालीन वाग्गेयकारों स्वामी हरिदास जी एवं गोस्वामी वल्लभाचार्य जी जैसे संत आचार्यों की शिष्य–परम्परा ने उसे संजीवनी प्रदान कर विकास के उच्चतर सोपान तक पहुंचा दिया। ध्रुवपद के उस समय तक प्राप्त कलेवर को अनेक व्याख्याकारों ने परिभाषित करने का प्रयास किया, जिसमें अपूर्णता के रहते उचित विश्लेषण प्राप्त नहीं हो सका। 18वीं शताब्दी में भाव भट्ट द्वारा परिभाषित निम्न संस्कृतनिष्ठ व्याख्या ने कुछ हद तक उसे संतुष्ट किया, जो निम्नोल्लिखित है:–

गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्यराजितम्,
द्विचतुर्वाक्य सम्पन्नं, नरनारी कथाश्रयम्,
श्रृंगाररस भावाद्यं रागालाप पदात्मकम्,
पादान्तानुप्रास युक्तं पादान्तयमकम् च वा,
प्रतिपादं यत्र बद्धमेव पाद चतुष्टयम्,
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगोत्तमं ध्रुवपदं स्मृतम्।।

भारतीय सांगीतिक साधनाएं योग पर आधारित रहीं हैं। ध्रुवपद गायकी उसका सर्वोत्कृष्ट सांगीतिक माध्यम है क्योंकि स्वरोत्पत्ति, जो संगीतोपयोगी बन जाती, वह योग के बिना संभव नहीं, जो उसे विशुद्ध पुरातन भारतीय साधना से जोड़ती है, जिसमें सही प्रकार से उच्चारण द्वारा स्वरोत्पत्ति एवं उसकी साधना कर उसे ओंकार साधना से प्रारम्भ कर मुक्ति मार्ग तक पहुंचाया जाता रहा है –

वीणावादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदा।
तालज्ञश्चप्रयासेन, मोक्षमार्गं निगच्छति।।

नायक बैजू की रचना भी इसे संपुष्ट करती है –

स्वरतत्वज्ञान जीवन, मुक्ति को रूप साधे
तब पावे ज्ञान को मरम सुनो है गुणीजन,
ये विचित्र फिरे तब चित्त पावक में प्रवेश करे,
देह वायु को ले जाये ब्रह्म ग्रंथि करे संधान
ताके उरज होवे नाभि निकट सूक्ष्म ध्वनि,
तब आवे हृदय स्थान, तब कंठ मध्य पूरण होवे,
सुर पान, अपान, वियान उदान समान
या विध नाद प्रकट होवे, नायक बैजू ज्ञान।।

वर्तमान ध्रुवपद के स्वरूप पर मेरी स्वरचित राग तोड़ी एवं ताल तीव्रा में निबद्ध एक ध्रुवपद की रचना उसके चारों चरणों सहित दृष्टव्य है –

स्थाई – नाद भेद अपार गुणीजन, कबहूं न पायो पार,
गाय–गाय थके सब, रचपच हार डार।

अन्तरा – ईड़ा पिंगला सुषुम्ना नाड़ी,
कमल दल ते होय सृष्टि
सुरन शुद्ध कोमल तीवर
मन्द्र मध्य झंकृत तार।।

संचारी – स्वस्थान चार, आलाप विस्तार
श्रुति मूर्च्छना लय–प्रस्तार
गमक कण मींड़ शब्दाकार,
याही कीजै राग ब्यौहार।

आभोग – ध्रुवपद है ओंकार,
साधत मधु बार–बार,
गुरु कीजै मोहि पार,
नाद–विद्या अपरम्पार।।

उक्त रचना में योगपरक ध्रुवपद का पूरा स्वरूप देखा जा सकता है।

ध्रुवपद के क्रमिक विकास पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालें तो ध्रुवपद, जिसमें क्रमशः संस्कृत, ब्रज एवं अवधि आदि भाषाओं का

प्रयोग प्रारम्भ में प्रयुक्त होता था, जिसमें स्वर, पद व ताल तीनों मंजुल सामंजस्य के साथ प्रयुक्त होने के कारण इसकी व्युत्पत्ति का बीज भरतकालीन नाटकों में प्रयुक्त ध्रुवागीतों से माना है, जिसमें ये मंजुल सामंजस्य प्राप्त होता है। (नाट्यशास्त्र ३२-४८३) ध्रुवागीतों में वर्ण, अलंकार, शब्द, छन्द व ताल के सार्थक प्रयोग की प्रतिबद्धता मानी गई। इन गीतों के अनुक्रम में आलाप-गायन, उसके बाद ''भाण्ड समाश्रय ग्रह'' के अनुसार मृदंग व पुष्कर जैसे वाद्यों की संगत व इसके बाद छन्द गान, जिसे वर्तमान लय-बांट का रूप हम मान सकते हैं। भरतपूर्व वेद काल में अच्, पाणिका गाथा, मुद्रक एवं अपरांतक इत्यादि गीतों का प्रयोग होना प्राप्त होता है, जिसमें वर्ण व ताल का विशिष्ट प्रयोग होता था। गीत से पूर्व रागालप्ति, जिसका आधार प्राचीन स्वस्थान नियम था, उसे 'उपोहन' संज्ञा दी गई।

ध्रुवपद गायकी के व्यावहारिक पक्ष को मुख्यत: हम तीन भागों में बांट सकते हैं। प्रथम - प्राचीन ईश्वरसंबोधक शब्दों हरि:, ऊँ, अनन्त, नारायण, तरण तारण (त्वम्) से री, न ना, त, र, तोम् आदि शब्दों में रूपांतरित होकर ध्रुवपद में प्रयुक्त हुई नोमतोम् आलापचारी। पार्श्वदेव ने भी तन आदि निरर्थक वर्णों को लेकर प्रयोग करने को कहा है। 2. पद अथवा बंदिश गायन 3. लयकारी (लय-बोल बांट), इसे प्राचीन अनिबद्ध व निबद्ध गान के अन्तर्गत सम्मिलित माना जा सकता है। भरत से लेकर मतंग, नारद, जयदेव, शारंगदेव, रामामात्य, लोचन, मानसिंह, सोमनाथ, दामोदर, अहोबल, व्यंकटमखी एवं भाव भट्ट जैसे विविध आचार्यों ने अपने ग्रंथों में राग-रागनियां एवं उसके जनक मेल, राग-जाति, राग-नियम, स्वरलंकरणों, श्रुति, स्वर-भेद, एवं ताल-जाति, तान एवं गमक-प्रकारों, काकू-भेद, पद-विभाग गीतियां एवं वाणियां आदि-आदि घटकों को अपने शोध एवं सृजन द्वारा समक्ष कर ध्रुवपद का सम्पूर्ण कलेवर गढ़ा। वेदों की जैमिनीय-कौथुमीय आदि शाखाओं से लेकर 5वीं शताब्दी की नालन्दा की 'गुरुकुल पद्धति', आदि के आदर्श रूप का अनुकरण करते हुए स्वामी हरिदास जी समय (1480-1575 ई.) की सम्प्रदाय-परम्परा में उनके शिष्य तानसेन की वंश-परम्परा के रूप में सेनिया परम्परा की शाखाएं प्रस्फुटित हुईं एवं अकबर काल में सेनिया घराने की पुत्र-पुत्री वंश ने ध्रुवपद की विविध उत्कृष्ट घरानेगत साधना की विरासत भारत को सौंपी।

ध्रुवपद के महत्वपूर्ण कलेवर पर पुन: लौटते हुए उसके महत्वपूर्ण द्वितीय अग्र भाग 'पदगायन', जो शास्त्रीय के साथ उपशास्त्रीय व सुगम संगीत आदि सभी का आधार बना। शारंगदेव के ''संगीत रत्नाकर'' में वर्णित वैदिक साम के पांच अंगों प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन की संज्ञा लौकिक साम में क्रमश: उदग्राह, अनुद्ग्राह, संबंध, ध्रुवक एवं आभोग हुई। उसके विकसित रूप में सालग सूढ़ प्रबंध की पांच धातुएं उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अन्तर और आभोग द्वारा ध्रुवपद के चारों चरणों स्थाई अन्तरा संचारी एवं आभोग प्राप्त हुए, आज सभी शास्त्रीय-सुगम रचनाओं में स्थाई-अन्तरे जैसे भाग अवश्य रूप में मिलते हैं। एक बात और उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन विविध संप्रदायों वल्लभ, निम्बार्क एवं हरिदास आदि की संकीर्तन शैली का सम्पूर्ण आधार ध्रुवपद शैली ही था, जिनमें प्रयुक्त पदों को घरानों ने भी अंगीकार कर अपने को समृद्ध किया।

ध्रुवपद का तीसरा भाग 'लयकारी', जिसमें लय व बोलबांट की स्थल सृजन में ही उपज द्वारा गायक अपने गायन को संगत वाद्य पखावज के साथ विविध खेलों, लपट-झपट एवं स्वर-वैचित्र्य द्वारा विविध बोलों को लय में बांटकर एवं विविध छन्दों के 2-3-4 आदि विभाजनों द्वारा तिहाई, चक्करदार एवं नवहक्का (नौ बार तिहाईयों) द्वारा अपनी सृजन के सबसे कठिन पक्ष द्वारा अपने कौशल को स्थापित करते हैं। यह प्राचीन स्थाय व रूपकभंजनी आलप्ति का रूप माना गया। ध्रुवपद में देखा जाए तो धनाक्षरी छंद का प्रयोग 3-3 बोलों के विभाजन को आत्मसात् किये रहता है। जैसे- आज तो सखी री देखे रामचंद्र छत्रधारी, खमाज के इस ध्रुवपद में आ-ज, तो-स, खी-री, दे-खे ये खण्ड स्वत: ही देखे जा सकते हैं। ऐसा अमूमन अन्य ध्रुवपदों में भी प्राप्त होता है। ध्रुपद में ताल, चौताल, झपताल, तीव्रा, सूलताल आदि कुछ प्रचलित तालों के अतिरिक्त गणेश, लक्ष्मी, रूद्र, ब्रह्मा, बसंत एवं गजझंपा आदि अप्रचलित तालों का भी प्रयोग परिलक्षित होता है, जो कि उसके आध्यात्मिक एवं गरिमामय पक्ष को परिपुष्ट करता है।

ध्रुवपद का महत्वपूर्ण काल मध्यकाल रहा जब सालगसूढ़ प्रबंध की चार धातुएं उद्ग्राह, मेलापक ध्रुव एवं आभोग द्वारा ध्रुवपद के चारों भाग स्थाई, अन्तरा, संचारी व आभोग बने एवं पांच अंगों स्वर, विरूद (देवी-देवताओं) की प्रशंसा, पद, तेनक (नोम् तोम् आलाप) पाट (पखावज बोल) व ताल ने ध्रुवपद का सम्पूर्ण रूप गढ़ा।

जहां तक ध्रुवपद की गायन-शैली जिसे 'रीति' भी बोला गया की बात कहें तो उसका भी प्राचीन आधार रहा। भरतकालीन पदाश्रिता गीतियां मागधी, अर्धमागधी, पृथुला व सम्भाविता एवं स्वराश्रिता गीतियां शुद्धा, भिन्न, गौड़ी, बेसरा एवं साधारणी ने उसे

आधार प्रदान किया, यानि आवाज़ में स्वरों का शुद्ध लगाव, खण्डित अथवा वक्रलगाव, गाढ़-गाढ़कर, उछाल कर एवं सभी का मिश्रण करते हुए लगाना, जो सभी गायन-शैली का भी आधार बना, क्योंकि ये ही प्रमुख आवाज़-भेद सभी शैलियों में भी प्रयुक्त होते रहे हैं। इनका आधार भी प्राचीन भरतकालीन देशी व ग्राम राग व ग्राम गीतियां रहीं। अकबर काल में तानसेन के पुत्र-पुत्री वंश द्वारा इन्हीं गीतियों पर आधारित चार वाणियां गोबरहारी (ग्वालियरी) खण्डार, डागुर व नौहार आधुनिक ध्रुवपद घरानों की शैली का आधार बनी एवं ध्रुवपद के प्रचलित घरानों डागर, बिहार, मथुरा, आगरा, बेतिया, विष्णुपुर आदि ने अमूमन इसका ही अनुसरण किया, यह उक्ति भी प्रचलित है -

ज़ोर-ज़ोर से खण्डहार गावे, मधुर बोल को नौहार लेवे।
सांस बड़ी है गोबरहार की, आलापचारी है डागुर की।।

आचार्य कैलाश चन्द्र देव बृहस्पति ने अपने ग्रंथ ''ध्रुवपद का उद्भव और विकास'' में लिखा है कि 13वीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी राज्य के गोपाल नायक, जिन्होंने आलाप, ठाय, गीत व प्रबन्ध अंगों से 'चतुर्दण्डी सम्प्रदाय' की स्थापना एवं उसकी साधना कर सबसे पहले 'धक दलन रे प्रवल्ल नाद' शब्द-रचना का ध्रुवपद शैली में गायन किया, सम्भवत: वह ध्रुवपद का सम्पूर्ण स्वरूप था, उससे पहले ठाकुर जयदेव की अष्टपदियां भी उसका आधार रहीं।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (राज्यकाल 1486-1516ई.) ने ध्रुवपद को लोकप्रियता प्रदान की। ओ. गोस्वामी ने अपने ग्रंथ ''The story of Indian Music'' में लिखा है कि ''जब ध्रुवपदेतर शैली ख्याल ध्रुवपद का स्थान ले रही थी तब राजा मानसिंह ने ध्रुवपद के समकक्ष ही अन्य 'धमार' शैली, जो ब्रज के होरी-गीतों का आधार लेकर 'धम्माल' यानि पुरूष-स्त्री वर्ग के परस्पर होरी-खेल के चांचल्य, लपट-झपट, खेल, शोर मचाना आदि के समावेश से अपने दरबारी गायक बैजू के सहयोग से निर्माण किया। यह ध्रुवपद की शान्त व भक्ति प्रधान रचनाओं के दायरे से निकल कर नारी-पुरुषोचित श्रृंगार आदि भावनाओं से जोड़कर उसे समाज में लोकप्रिय बनाने का अहम् कार्य था।

ध्रुवपद के आधुनिक काल के प्रारंभ होने से पूर्व ध्रुवपद की भक्तिपरक रचनाओं में शान्त के अतिरिक्त दरबारी राजाओं के संरक्षण में पलने वाले गायकों द्वारा उनकी रुच्यानुकूल वीर एवं श्रृंगार आदि भावों को भी अपनी रचनाओं में समाहित किया जाने लगा। ध्रुवपद की भाषा में भी संस्कृत निष्ठता के अतिरिक्त ब्रज, अवधि व उर्दू का भी समावेश देखा जाने लगा था। पूर्वोल्लिखित भावभट्ट की परिभाषा बहुत हद तक उसका सही दिग्दर्शन कराती है।

ध्रुवपद का आधुनिक काल मेरे मत से एक क्रांति लेकर आया, जब ध्रुवपद अपनी सीमाओं के दायरे से निकल एक व्यापक स्तर पर प्रसारित होने लगा। इसमें दो घटकों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1. वह घरानों से निकलकर शिक्षण-संस्थानों में सभी प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए सुग्राह्य बना 2. वह विविध प्रचार-प्रसार माध्यमों द्वारा सुदूर श्रोताओं व पाठकों तक पहुंच गया। राजसी संरक्षण समाप्त होते-होते संगीत-शिक्षा का गुरुकुल एवं घरानों में निष्ठा के साथ पूर्ववत् आदान-प्रदान शनै:-शनै: मुश्किल हो गया। घरानों में तो वह अपने परिवार के मध्य येन-केन-प्रकारेण चलता रहा किन्तु उनके परिवार से इतर अन्य प्रतिभाशाली विद्यार्थी के लिए वह दुर्लभ होने लगा। ऐसी स्थिति में कुछ पढ़े-लिखे विद्वानों, जो स्वयं संगीत-प्रेमी एवं मर्मज्ञ थे उन्होंने संगीत के शास्त्र और प्रयोग को शिक्षा के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया। उसके लिए उन्होंने स्वयं पुस्तक-लेखन व शिक्षण-संस्थानों की स्थापना का तत्कालीन परिवेश में कठिन कार्य किया। 1871 में प. बंगाल के चित्तपुर रोड़ में सौरीन्द्र मोहन ठाकुर के प्रयास से 'बंग संगीत विद्यालय' और बंगाल एकेडमी ऑफ म्यूजिक, 1880 में जामनगर गुजरात में पंडित आदित्यराम ने एवं 1886 में बड़ौदा में उस्ताद मौलाबख्श ने संगीत-विद्यालय शुरू किये। 1918में ग्वालियर में भातखण्डे जी ने माधव संगीत महाविद्यालय, 1924 में लखनऊ में राय राजेश्वर और उमानाथ बलि ने ''मैरिसम्यूज़िक कॉलेज ऑफ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक'', 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत विभाग बना। आधुनिक काल में गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मिरज एवं मुम्बई के साथ इंदिरा कला विश्वविद्यालय, खैरागढ़ एवं राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर एवं भातखण्डे संगीत विश्वविद्यालय, लखनऊ संगीत के बड़े केन्द्र बनकर उभरे।

इन प्रयासों से शास्त्रीय संगीत तो सर्वसुलभ बना किन्तु ध्रुवपद पाठ्यक्रम में सिर्फशास्त्र पक्ष या उसका पद्य भाग एवं कुछ दुगुन-चौगुन आदि लयों का प्रशिक्षण तक सीमित हो गया, एवं जहां यह अवधारणा होती थी कि कोई भी गायन-वादन की तालीम ध्रुवपद से शुरू होनी चाहिये, वह वैकल्पिक रूप में पाठ्यक्रम की मात्र 1-2 रागों में ही सिमट कर रह गया। कवि माघ की यह उक्ति ''हिरण्यं एवं अर्जय निष्फलता: कला:'' यानि पैसा कमाओ या तन्ख्वाह लो एवं कलाएं परिणाम नहीं दे पा रहीं, यह शिक्षण-

संस्थानों में भी गठित हो रहा है। कुछ शिक्षित ध्रुवपद-गायकों के प्रयासों से यद्यपि दिल्ली व बड़ौदा के विश्वविद्यालयों में ध्रुवपद का विभाग भी बना किन्तु वह स्थाई नहीं हो सका। आज पूरे देश के महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में एक-दो गायकों को छोड़कर किसी भी ध्रुवपद-गायकों की नियुक्ति न होने के कारण ध्रुवपद के अनेक प्रतिभाशाली शिष्य इससे वंचित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में कुछ वरिष्ठ गायकों ने अपनी विरासत निजी प्रयासों से अनेक होनहार शिष्यों को सौंपी, जो वर्तमान में इस गायकी का देश-विदेश में परचम लहरा रहे हैं। वरिष्ठ ध्रुवपद-विशेषज्ञ गुरुओं में सर्वमान्य हैं - डागर घराने के उ. बहराम खां एवं उनके वंशज उ. अल्लाबन्दे खां, उ. ज़ाकिररूद्दीन खां, उ. नसीरूद्दीन खां, उ. हुसैनुद्दीन खां, उ. इमामुद्दीन खां, उ. जियाउद्दीन खां, उ. रहीमुद्दीन खां, उ. हुसैनुद्दीन खां, उ. जिया मोहियुद्दीन खां, उ. जिया फरीदुद्दीन खां, उ. नसीर मोइनुद्दीन खां एवं उ. नसीर अमीनुद्दीन खां, उ. रहीम फहीमुद्दीन खां, उ. नसीर ज़हीरूद्दीन खां, उ. नसीर फैयाजुद्दीन खां, उ. एच. सईदुद्दीन खां, पं. गोपाल जी भट्ट, पं. गोकुल चन्द्र जी भट्ट, पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग, पं. देवी शंकर तिवाड़ी, पं. निमाई चन्द बौराल, पं. राधाराम, पं. कर्ताराम, पं. रामचतुर मलिक, पं. सियाराम तिवाड़ी, पं. अभयनारायण मलिक, पं. विदुर मलिक, महाराजा आनंद किशोर, महाराजा युगल किशोर, पं. इन्द्र किशोर मलिक, पं. चंदन जी चौबे, पं. बाल जी व पं. लच्छमन जी चौबे, पं. सत्यभान शर्मा, पं. गोपेश्वर बैनर्जी, राधिका मोहन गोस्वामी, गुलाम अब्बास, उ. फैयाज खां, उ. विलायत हुसैन, पं. के.जी. गिंडे, पं. एस.सी.आर. भट्ट, डॉ. सुमति मुटाटकर आदि-आदि। स्वतंत्रता के बाद कुछ विशिष्ट संस्थाओं, जिसके प्रभारी स्वयं इसके साधक रहे या इसके मर्मज्ञों द्वारा आयोजित ध्रुवपद-समारोहों एवं कार्यशालाओं के आयोजन में ध्रुवपद की लौ जली रही, इन आयोजनों के उल्लेखनीय योगदान हेतु कुछ वर्णनीय नाम हैं - इंटरनेशनल ध्रुवपदधाम ट्रस्ट एवं रसमंजरी संगीतोपासना केन्द्र, जयपुर द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित 26 अखिल भारतीय ध्रुवपद समारोह एवं कार्यशालायें, ध्रुवपद सोसायटी, दिल्ली, ध्रुवपद संस्थान जयसिंह घेरा वृंदावन एवं ध्रुवपद केन्द्र ग्वालियर, ध्रुवपद केन्द्र कानपुर, ध्रुवपद केन्द्र भोपाल, पं. विदुर मलिक ध्रुवपद केन्द्र इलाहाबाद, पं. सिया राम तिवाड़ी ट्रस्ट दिल्ली, ध्रुवपद अकादमी दिल्ली एवं स्पिक मैके आदि।

संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में पं. भातखण्डे एक युगपुरूष के रूप में माने जा सकते है। गुणी गायक-वादकों की कला को समाज में परिचित कराने के उद्देश्य से 1890 से पूर्व ही 'गायन उत्तेजक मंडली' नाम से संस्था प्रारम्भ की भातखण्डे जी एक विद्यार्थी को संगीत शिक्षा द्वारा केवल गायक ही नहीं उसके साथ शास्त्रकार व प्रशासक बनाना चाहते थे। वे संगीत को विश्वविद्यालयीन दर्जा दिलाना चाहते थे एवं उन्हीं के सद्प्रयासों से ही सर्वप्रथम बड़ौदा विश्वविद्यालय में संगीत ने प्रवेश लिया। पं. भातखण्डे ने भी ध्रुवपद गायकी को सम्मान की दृष्टि से देखा और ध्रुवपदनुमा अनेक घरानेगत चीजों को सरगमों व लक्षण गीतों के माध्यम से अपने 'क्रमिक पुस्तक मालिका' ग्रन्थ के छः भागों में स्वरलिपि के रूप में उपलब्ध कराकर उसे सीखने हेतु सर्वसुलभ बनाया। अनेक घरानेदार गुरुओं से प्राप्त ध्रुवपद की बंदिशों को भी साधकों ने उनके इन ग्रंथों के माध्यम से साधा। ख्याल को भी मुंडा या लंगड़ा ध्रुवपद बताया यानि उसे भी ध्रुवपद के अवदान के रूप में ही देखा गया।

विविध सरकारी एवं सांस्कृतिक निकायों द्वारा भी ध्रुवपद का चहुमुँखी विकास हुआ। 31 मई 1953 में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की स्थापना के साथ अनेक राज्यों में स्वायत्तशासी अकादमियां बनीं। संस्कृति मंत्रालय एवं राज्य सरकारों के आधीन केन्द्रों भारत भवन भोपाल, उ. अलाउद्दीन खां अकादमी भोपाल एवं जवाहर कला केन्द्र, जयपुर सहित अनेक सरकारी, सांस्कृतिक केन्द्र उदाहरणार्थ पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, उदयपुर, उ.म.क्षे.सां. केन्द्र, इलाहबाद; दक्षिण मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, नागपुर, पूर्वी क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र कोलकाता आदि। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आजाद भवन, नई दिल्ली की स्थापना 9 अप्रैल सन् 1950 में हुई, इसने वैश्विक स्तर पर ध्रुवपद के कलाकारों को पहुंचाया। ब्रिटिश प्रशासन के दौरान भारत का पहला न्यूज़ पेपर 'दि बंगाल गैजेट 19 जनवरी 1780 को जेम्स अगस्टस हिक्की द्वारा प्रकाशित किया गया। किन्तु भारतीय प्रशासन के अन्तर्गत 1822 में राजा राम मोहनरॉय ने बंगाली अखबार 'संवाद कौमुदी' की शुरूआत की। पहला हिन्दी अखबार 'ओदंत मार्तंड को 1826में बंगाल से प्रकाशित किया गया। प्रिंट मीडिया के विविध उतार-चढ़ावों के उपरान्त 1931 में भारतीय प्रेस अधिनियम आया एवं आज़ादी के बाद समाचार पत्रों एवं पत्रकारों की कार्यशैली में काफी बदलाव आये एवं भारतीय संपादकों के हाथों में आने के बाद इसमें पेशेवर दृष्टिकोण आया। 1956 में अखबार मूल्य एवं पृष्ठ अधिनियम आया व 1970 के बाद अखबार ने उद्योग का दर्जा लिया इसलिए पूरे भारत में समाचार पत्रों में विश्लेषण एवं समीक्षाओं ने स्थान लिया एवं दि हिन्दू, टाइम्स ऑफ इंडिया, ट्रिब्यून, दैनिक भास्कर एवं दैनिक जागरण आदि जैसे प्रतिष्ठित अखबारों में कलाकारों की कलाओं की रिपोर्ट के साथ

समीक्षाओं ने भी कलाकारों को वैश्विक प्रतिष्ठा प्रदान की।

भारत में आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के पर्दापण ने मानो क्रांति ला दी। भारत में 1927 में दो निजी ट्रांसमीटरों से शुरू रेडियो प्रसारण का 1930 में राष्ट्रीयकरण होने के बाद इसका नाम 'भारतीय प्रसारण सेवा' (इंडियन ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन) रखा गया एवं 1957 में इसका नाम आकाशवाणी रखा गया। आकाशवाणी के स्थानीय चैनलों एवं राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं सभाओं ने ध्रुवपद-गायकों की गायन-प्रतिभा को विश्वव्यापी बना दिया। 15 सितम्बर 1959 में प्रारम्भ दूरदर्शन द्वारा ध्रुवपद-कलाकारों को विश्वस्तर पर देखा एवं सुना गया। इस संदर्भ में बी.वी. केसकर यानि बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर (समय 1903- 28अगस्त 1984) का योगदान सर्वमान्य एवं ऐतिहासिक माना जाता है, वे 1952-1962 के मध्य सूचना-प्रसारण मंत्री रहे, उन्होंने तत्कालीन प्रचलित फिल्म संगीत एवं खेल आदि से ऊपर शास्त्रीय संगीत का प्रचार-प्रसार कर उसके कलाकारों को आकाशवाणी के माध्यम से सर्वथा प्रतिष्ठित किया। आज दूरदर्शन, फिल्म एवं नाट्य-प्रस्तुतियों के पृष्ठ संगीत में भी ध्रुवपद का प्रयोग किया जा रहा है। स्वतंत्र भारत के इस वैज्ञानिक युग में विभिन्न कैसेटों, वीसीडी, एलबम्स, कम्प्यूटर की पेनड्राइव एवं हार्ड डिस्क में ध्रुवपद कलाकारों की कला का प्रचार-प्रसार, संरक्षण एवं सुरक्षित किया गया। सोशल मीडिया व इन्टरनेट ने मानो संगीत के क्षेत्र में पूर्ण क्रांति ला दी। विभिन्न मोबाइल एप्स, यू ट्यूब, वाट्सअप, इन्स्टाग्राम, फेसबुक, ट्विटर, वेबसाइट, निजी पेज़ेज़ में विश्व के किसी भी कोने में बैठे संगीत-साधक के गायन व उसका परिचय एक क्लिक पर प्राप्त हो जाता है।

ध्रुवपद पर केन्द्रित ही कुछ पुस्तकें-ध्रुवपद-वार्षिकी (प्र. बनारस विद्या मंदिर ट्रस्ट) ध्रुवावाणी पत्रिका (सं. स्वयं लेखिका) ध्रुवपद पंचाशिका (पं. ऋत्विक सान्याल) आदि में ध्रुवपद को लिपिबद्ध व शास्त्रबद्ध करने का प्रयास किया गया।

ध्रुवपद के क्षेत्र में वाग्गेयकार यानि गायन के साथ 'शब्द रचना' की सामर्थ्य रखने वाले कलाकार मध्यकाल के बाद नगण्य हो गये थे। ध्रुवपद के घरानों में बहुधा पुरानी घरानेदार रचनायें ही सुनी जा रही थी किन्तु कुछ सृजनधर्मी ध्रुवपद-गायकों ने ध्रुवपद की स्वरचनाएं कीं, जो काफी लोकप्रिय हुई। मेरे गुरु पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग जी ने 500 स्वरचित बंदिशें अपने तीन ग्रंथों-रसमंजरी शतक, संगीत रसमंजरी, पंचाशिका संगीत विमल मंजरी में लिपिबद्ध कर प्रकाशित कीं, उसी प्रकार अन्य कलाकारों पं. विदुर मलिक जी एवं उनके वंशज, पं. भातखण्डे जी, पं. राजा भैया पूछवाले, पं. ओंकार नाथ ठाकुर, पं. ऋत्विक सान्याल, स्वयं लेखिका एवं पं. विनोद कुमार द्विवेदी पं. गुन्देचाबन्धु आदि ने भी अनेक ध्रुवपदों की रचनाएं कीं।

ध्रुवपद का आधुनिक युग नवाचारों का युग है। ध्रुवपद के आवाज़ गुण-धर्म व लगाव में परिवर्तन एवं उसमें वैज्ञानिक तकनीक का गुणात्मक प्रयोग देखने को मिला। दरबार में सुदूर बैठे श्रोताओं तक अपनी आवाज़ को पहुंचाने हेतु ज़ोर-ज़ोर से गाया जाने वाला ध्रुवपद, जिसे माइक्रोफोन के युग में स्निग्ध आवाज़ में ढाला गया। जहां अपने घराने की शैली की प्रतिबद्धता होती थी वहां ध्रुवपद के सभी विशेषण प्रमुखता से ही सभी घरानों में आज उदारता के साथ प्रयोग में लाये जा रहे हैं। आज सही मानें तो सभी घराने 'साधारणी गीति का प्रयोग कर रहे हैं। ध्रुवपद में प्रयुक्त चुनिन्दा पुरानी रागों में अधुना प्रचलित रागें हंसध्वनि, शिवरंजनी एवं कीरवाणी आदि का प्रयोग भी मेरे गुरु द्वारा वर्षों पूर्व कर दिया गया। उनके निर्देशन में मैंने ध्रुवपद में कई नवाचार किये। जैसे पुराने रचनाकारों के साथ ध्रुवपद में अप्रयुक्त कबीर, मीरा, नानक, विवेकानन्द, बुल्लेशाह, महादेवी, निराला, रवीन्द्रनाथ टैगोर, संजीव मिश्र आदि कवियों की रचनाओं को भी ध्रुवपद में ढाला। ध्रुवपद में स्वरचित पद्य व रागों को भी स्थान दिया। 93 वर्षीय मेरे गुरु ने हरिकौंस, मेवाड़ा दरबारी, जोगेश्वरी, जौनतोड़ी, केदार कल्याणम् एवं औडुव कल्याणम् जैसी रागों के नये स्केल्स की परिकल्पना एवं रचना की, जिनका उन्होंने 30-35 वर्ष की उम्र में ही मंचों पर गायन किया। उन्होंने ध्रुवपद में प्रचलित तालों के अतिरिक्त 6 मात्रा की अद्धाचौताल जैसी नवीन ताल की रचना भी की। मैंने स्वयं चारूधरा, गुणवन्ती दुर्गा, धन्यमाधवभीम, जोगश्री एवं मधुर्गंधी आदि नये रागों के सकेल्स की परिकल्पना कर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुत किया। ध्रुवपद में बहुधा नहीं सुनाई दी जाने वाली राग मालाओं का भी मैंने नवाचार किया एवं देवियों के नामों वाली 9 रागों की माला पिरोकर 'भैरवी' रागमाला, 21 कल्याण प्रकारों एवं अंगों की गुम्फित 'जगत कल्याणम्' नाम से राग माला एवं मल्हार के 21 प्रकारों एवं अंगों की समन्वित रागमाला का निर्माण कर मंचों पर प्रस्तुत किया। ध्रुवपद में राजस्थानी मांड का भी प्रयोग मेरे गुरु द्वारा किया गया।

आधुनिक काल तक आते-आते खड़ी हिन्दी भाषा का भी प्रयोग ध्रुवपद में दिखाई दिये जाने लगा एवं उसके साथ बंगला, पंजाबी एवं राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी स्वयं मैंने अनेक ध्रुवपदों में किया। भक्ति प्रधान ध्रुवपदों का मूलभाव रखते हुए समसामयिक

संदर्भों यथा–साम्प्रदायिक सद्भाव (गंगा जमुनी तहज़ीब) नारी–विपदा एवं नारी–शक्ति, कन्या बचाओ–कन्या–पढ़ाओ, स्वच्छता अभियान एवं यहां तक देश भक्ति से ओतप्रोत 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' व 'वन्देमातरम्' को भी मैंने ध्रुवपद में ढाला। ध्रुवपद के विषय से इतर कोविड–संक्रमण जैसे समसामयिक विषय को भी मैंने भक्ति से आवृत्त कर इससे जोड़ा–

उदाहरणार्थ – राग मालकौंस – ताल – सूलताल (ध्रुवपद)

स्थाई – कोरोना सूं डरो ना भाई, सब मिल करो लड़ाई,
तन–मन करो सफाई, फिर याकी होवे विदाई।।

अन्तरा – प्रार्थना ये आराध्य साध्य तुम जो असाध्य
फिर ना हो भंजनाई, सबकूं करो सहाई।।

इस प्रकार मैंने पुरातनवादी भारतीय परम्परा में 'ध्रुवपद कन्टेम्परेरी आर्ट क्रियेशन' की रचना कर उसे समसामयिक बनाने का प्रयास किया। उपरोक्त इन नमोन्मेषों के पीछे मात्र एक विचार ही प्रमुख रहा कि प्रत्येक युग की कला समाज का दर्पण रही है और तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदि परिवेश ने समय–समय पर कलाओं को प्रभावित किया है और उसमें स्वाभाविक रूप से युगीन परिवर्तन समय की मांग के अनुसार सृजनधर्मी कलाकारों द्वारा किये जाते रहे हैं। उसी प्रकार ध्रुवपद में भी प्रत्येक युग का प्रभाव देखने को मिलता है अतएव वर्तमान परिवेश में भी ध्रुवपद की प्रासंगिकता सिद्ध करने के लिए सृजनशील ध्रुवपद–कलाकारों द्वारा समसामयिक संदर्भों के समावेश द्वारा उसे समृद्ध किया जाना आवश्यक है।

आज युवा पीढ़ी में कुछ युवा ध्रुवपद–गायकों ने ध्रुवपद को पूर्ण समर्पण से अपनाया है, जिसमें कुछ नाम दृष्टव्य है–श्री अभिजीत सुखदाणे, सुमित मलिक, डॉ. श्याम सुन्दर शर्मा, श्री आशीष सांकृत्यायन, अनन्त गुंदेचा, अफजल हुसैन, सुलभा चौरसिया, आयुष द्विवेदी, सुरेखा काम्बले एवं विशाल जैन आदि आदि।

कुल मिलाकर आज़ादी के 75 वर्षों के काल में ध्रुवपद का उद्घोष अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सुनाई दे रहा है एवं उसकी अमृत वाणी ने देश ही नहीं अपितु विदेशी संगीत साधकों को भी प्रभावित किया है। आज अनेक वरिष्ठ एवं युवा देशी–विदेशी साधक ध्रुवपद, पखावज, वीणा एवं सुरबहार सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं। यहां तक कि विदेशी वाद्यों, चैलो, गिटार, सेक्सोफोन आदि में भी विदेशी कलाकारों ने ध्रुवपद को प्रदर्शित किया। जैसा कि पं. टी.एल. राणा एवं पं. पुरु दाधीच जैसे गुणी संगीतज्ञों ने बताया कि प्राचीनकाल में ध्रुवपद पर नृत्य भी होता था जो कि पिछले 70 सालों में नहीं दिखाई दिया। मैंने एवं मेरे गुरु ने ध्रुवपद समारोह आयोजित कर उसमें डॉ. शशि सांखला एवं डॉ. रेखा ठाकर आदि अनेक कत्थकाचार्यों द्वारा कत्थक नृत्य में ध्रुवपद का प्रदर्शन भी कराया। मेरा स्पष्ट मत है कि आज लगभग 600–700 वर्ष पूर्व जन्मी एवं विकसित हुई ध्रुवपद गायकी आज भी अपने यौवन पर है। ध्रुवपद ही नहीं अपितु बांसुरी, सरोद, संतूर एवं मोहन वीणा आदि के दिग्गज कलाकार भी अपनी प्रस्तुतियों को ध्रुवपद से जोड़ने की दिशा में प्रयासरत दिखाई दे रहे हैं।

संतूरवादक पद्मश्री भजन सोपोरी ने संतूर में असम्भव महसूस होने वाली ध्रुवपद में प्रमुखता रखने वाली मींड गमक का प्रयोग कर ध्रुवपद गायकी को संतूर में ढाला। इसी प्रकार आमतौर पर चार तारों से बजने वाले वॉयलिन में पांचवें तार के समावेश से बने पंचतंत्री बेला के विशेषज्ञ वादक जयपुर के पं. रवि शंकर भट्ट तैलंग ने भी पिछले वर्ष इन्टरनेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित 26वें अ.भा. ध्रुवपद नाद–निनाद विरासत समारोह में ध्रुवपद के चारों चरणों की आलापचारी में मींड, गमक व लाग–डाट का समावेश कर धमार ताल में वादन किया।

शोध की दृष्टि से मेरे गुरु ने यह पाया कि भारतीय घरों–समाजों में 100 वर्षों से भी अधिक प्रचलित विष्णु आदि स्तुतियां एवं विविध देवी–देवताओं की आरतियां भी ध्रुवपद में प्रयुक्त विविध तालों के छन्दों को आत्मसात् की हुई हैं।

उल्लेखनीय यह भी है कि स्वतंत्रता के बाद नारी–शिक्षा एवं विकास के कई सोपान खुले। पुरूष प्रधान शैली माने जाने वाली ध्रुवपद गायकी के गायन–वादन क्षेत्रों में अनेक महिलाओं ने भी सशक्त रूप से प्रवेश कर अपना वर्चस्व स्थापित किया। गायन में पद्मश्री असगरी बेगम, प्रो. सुमति मुटाटकर, स्वयं लेखिका, कावेरीकार, शुभदा देसाई, नन्दी बहिनें, संचिता चौधरी एवं ईरामुखर्जी; पखावज–वादन के क्षेत्र में चित्रांगना आगले एवं महिमा उपाध्याय; रूद्र एवं विचित्र वीणा में ज्योति हेगड़े, पद्मजा विश्वरूप एवं राधिका उमड़ेकर आदि विशिष्ट नाम हैं। कुल मिलाकर भारतीयता की बुनियाद पर खड़ी ये गायकी अमरत्व लिये हुए हैं क्योंकि वह सदा से भारतीय जीवन शैली, भारतीय आस्थाओं एवं भारतीय संस्कृति का आवश्यक अंग बनकर भारतीय साधकों एवं इसके मर्मज्ञ श्रोताओं को अमृतपान कराते हुए रससिक्त करती रही है अतएव मेरा विश्वास है कि यह युग–युगान्तर तक अपना घोष दिग्दिगन्त गुंजायमान करती रहेगी। चिन्ता बस मात्र यह है कि

वर्तमान में सबसे
वरिष्ठ ध्रुवपद –
गायन विशेषज्ञ
गुरु पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग

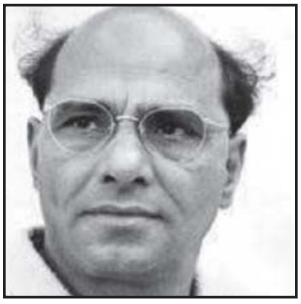

आकाशवाणी में शास्त्रीय
संगीत को सर्वोपरि
स्थान प्रदान कराने वाले
श्री बी. वी. केसरकर

डागर घराने की प्रसिद्ध
ध्रुवपद गायन जोड़ी–
स्व. उ.नसीर मोइनुद्दीन
एवं स्व. उ.नसीर अमीनुद्दीन डागर

पं. विष्णु नारायण भातखंडे

व्यावसायिकता एवं विदेशी आकर्षण से ग्रसित हमारी नयी पीढ़ी भारतीयता की संवाहक बन हमारी भारतीय कलाओं व साधनाओं को छोड़ती जा रही है उसे रोककर उन्हें भारतीयता की ओर प्रेरित किया जाए। मैथलीशरण गुप्त ने अपने ग्रंथ 'भारत–भारती' में भी यह चिन्ता व चेतना व्यक्त की है – ''हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी ? पुस्तक की प्रस्तावना में भी उन्होंने लिखा है – ''यह बात मानी हुई है कि भारत की पूर्व और वर्तमान दशा में बड़ा भारी अन्तर है। अन्तर न कह कर इसे 'वैपरीत्य' कहना चाहिए। एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला–कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि इन्हीं बातों का इसमें शोचनीय अभव हो गया है। जो आर्य–जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी वही आज पद–पद पर पराया मुँह ताक रही है। ठीक है, जिसका जैसा उत्थान, उसका वैसा ही पतन। परन्तु! क्या हम लोग सदा अवनति में ही पड़े रहेंगे ? हमारे देखते–देखते जनजातियाँ उठ कर हमारे साथ कदम बढ़ा रही हैं और हम वैसे हीं पड़े रहेंगे ? क्या हम लोग अपने मार्ग से यहाँ तक हट गए हैं कि अब उसे पा ही नहीं सकते ? संसार में ऐसा कोई काम नहीं जो सचमुच उद्योग से सिद्ध न हो सके। परन्तु उद्योग के लिए उत्साह की आवश्यकता होती है। इसी उत्साह को एवं इसी मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम माध्यम है।'' अतएव मेरा भी आह्वान है कि ध्रुवपद जैसी भारतीय कलाएँ उसका श्रेष्ठ माध्यम है।

दरभंगा घराने के वरिष्ठ
ध्रुवपद गायन–विशेषज्ञ
स्व.पं. रामचतुर मलिक

लेखिका–वरिष्ठ ध्रुवपद–गायिका,
पूर्व अधिष्ठाता, ललित कला संकाय, पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर। मो.: 9928277833

सुन्दरलाल प्रजापति की शायरी

लेखक : **सुन्दरलाल प्रजापति**

संस्करण : 2021
मूल्य : 100/–
प्रकाशक : सन्दर्भ प्रकाशन, भोपाल

आलेख

आज़ादी के बाद हिन्दुस्तानी संगीत

डॉ. मुकेश गर्ग

यह सच है कि शास्त्रीय संगीत में बदलाव बहुत धीरे-धीरे आता है। दूसरी कलाएँ जहाँ अपने ज़माने को बहुत जल्दी पकड़ती हैं, वहाँ शास्त्रीय संगीत परंपरा से चिपके रहने में गर्व महसूस करता है। अपने समाज के प्रति लंबे समय तक उदासीन बने रहना इस संगीत का ख़ास चरित्र है।

पर, इन वर्षों में शास्त्रीय संगीत ने समाज की काफ़ी-कुछ परवाह करना सीख लिया है। यही वजह है कि हिन्दुस्तानी संगीत में देश की आज़ादी के बाद जितने परिवर्तन आए हैं, उतने कई शताब्दियों में भी देखने को नहीं मिलते।

वर्तमान शास्त्रीय संगीत मूलत: दरबारों में पनपा है। इसलिए सामंती प्रवृत्तियाँ उसकी रग-रग में समाई हैं। धंटों तक एक ही राग को गाते या बजाते रहना; उसके सुरों के साथ अलग-अलग तरीक़े से खेलते रहना, भीषण तैयारी से श्रोताओं को आतंकित कर देना, फिरत, छूट, गमक, सपाट व जबड़े आदि की तानों से अपने ज़बरदस्त रियाज़ की धाक जमाना, अपने घराने के सामने दूसरे घरानों को तुच्छ समझना, संगीत के अपने गुरों को दूसरों से छिपाना, घराने की ख़ास तालीम अपने ख़ानदानियों को ही देना, इत्यादि कुछ ऐसी चीज़ें हैं, जो हिंदुस्तानी संगीत के सामंतीय चरित्र को आज भी प्रमाणित करती हैं।

स्वतंत्रता के बाद सबसे बड़ी बात यह हुई कि जो संगीत राजा-रईसों की चहारदीवारी से बाहर आने में दिक़्क़त महसूस कर रहा था, उसे मजबूरन जनता के बीच आना पड़ा। सामंतों का भविष्य अंधकारमय हो गया। इस तरह रजवाड़ों के टूटने से उसे ज़्यादातर उन आम रसिकों पर निर्भर होना पड़ा, जो शास्त्रीय संगीत के प्रेमी तो थे, पर जिन्हें इसकी तकनीकी बारीकियों की कोई पकड़ नहीं थी।

आम श्रोता की यह बढ़ती दिलचस्पी एक ऐसा ऐतिहासिक मोड़ साबित हुई, जिसने शास्त्रीय संगीत की दुनिया बदलकर रख दी। जो संगीत पहले सिर्फ़ अपने शरीर को रगड़-रगड़ कर धोने, पोंछने, सजाने और सँवारने में सारी ताक़त लगा देता था, वह अपनी आत्मा को भी टटोलने लगा। आम श्रोता की लगातार बढ़ती भागीदारी ने शास्त्रीय संगीत को अपनी 'क्रॉनिक' बीमारियों से मुक्त होने में भारी सहायता पहुँचाई। अब वह इने-गिने लोगों के मन-बहलाव या बौद्धिक अय्याशी का साधन-भर नहीं रह गया। वह उनके दिलों से भी बातें करने लगा।

शास्त्रीय संगीत के लोकतंत्रीकरण की यह शुरुआत इस शताब्दी के शुरु में ही हो गई थी। पं. विष्णु नारायण भातखंडे और पं. विष्णुदिगंबर पलुस्कर ने शास्त्र और क्रिया-पक्ष में जो काम किए, वे संगीत को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए ही थे। उसी दौरान दरबारी मनोवृत्ति वाले गायक-वादकों के बीच किराना घराने के उ. वहीद ख़ाँ और उ. अब्दुल करीम ख़ाँ ऐसे दो गायक पैदा हो गए, जिन्होंने उस धीर-गंभीर और संवेदनशील गायकी की बुनियाद रख दी, जो भावी शास्त्रीय संगीत की रीढ़ बन गई।

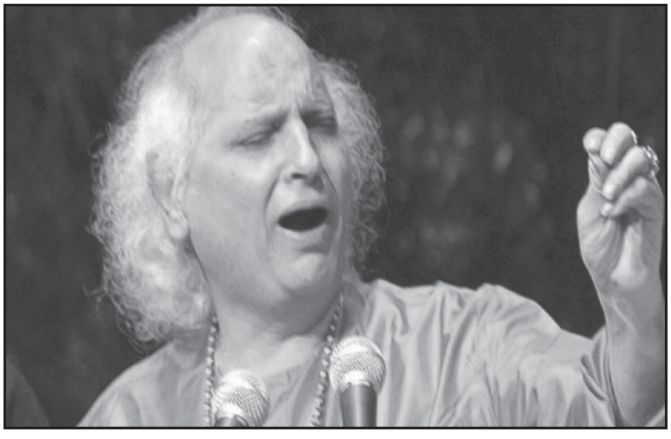

यह सब सदी के पूर्वार्द्ध में इसलिए हो रहा था, क्योंकि पूरा देश अँग्रेज़ों के ख़िलाफ़ स्वतंत्रता के महान् आंदोलन में कूद पड़ा था। राजे-रजवाड़े कमज़ोर पड़ गए और आम आदमी महत्वपूर्ण हो उठा था।

शास्त्रीय संगीत में लोकतंत्रीकरण की यह प्रक्रिया आज़ादी के बाद पूरे यौवन पर पहुँच गई। पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने रस-हीन संगीत को संगीत मानने से इनकार कर दिया। स्वरों में क्या और कैसे

वह बात पैदा हो कि सुनने वालों के हृदय में हलचल मच जाए, इस पर उन्होंने गंभीर चिंतन किया और गायकों के लिए एक ऐसा समझ-भरा रास्ता तैयार कर दिया, जिस पर चल कर कुमार गंधर्व, भीमसेन जोशी, जसराज, किशोरी अमोनकर जैसे रस-सिद्ध गायक-गायिका हमारे सामने आए।

उधर, उ. अमीर ख़ाँ ने गायकी में एक और नया आयाम जोड़ दिया। मेरूखंडी ढंग से राग की पैड़ी-दर-पैड़ी बढ़त की उन्होंने ऐसी मिसाल क़ायम की कि न सिर्फ़ गायक, बल्कि वादकों तक पर उसका गहरा असर पड़ने लगा।

पं. रवि शंकर का उदय इस सदी के उत्तरार्द्ध की एक और बड़ी घटना है। भारतीय संगीत को संसार के नक़्शे पर सम्मानजनक स्थान दिलवाने में उनके अथक प्रयासों का कोई जोड़ नहीं। भारतीय समाज में कुलीन घरों के बच्चों का संगीत सीखना पहले अच्छा नहीं माना जाता था। यह रवि शंकर की लोकप्रियता और ग्लैमर ही था, जिसने समाज का नज़रिया बदल कर रख दिया। अब अपने बच्चों को संगीत की तालीम दिलवाना फख्र की बात समझा जाने लगा।

शास्त्रीय संगीत का मंच पहले बड़ी अराजकता का शिकार रहता था। लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, बातें कर रहे हैं, चाय-कॉफी पी रहे हैं, मूँगफली चबा रहे हैं। रवि शंकर ने इस सबको रोका। विदेशों से उन्होंने मंच का सौंदर्य-बोध भी लिया। मंच पर बैठने का ढंग, उचित रोशनी, अच्छा कारपेट, अच्छा साउंड-सिस्टम-इन सब पर उन्होंने पूरा ध्यान दिया, ताकि लोग न सिर्फ़ सुनें, बल्कि देखकर नेत्रों का सुख भी लें।

रवि शंकर ने सितार-वादन की शैली में भी समग्रता लाने की ज़बरदस्त कोशिश की। उन्होंने अलग-अलग शैलियों की तमाम ख़ूबियों को एक जगह इकट्ठा कर दिया। इससे हुआ यह कि ध्रुपद के आलाप का, जोड़ का, ख़याल का, ठुमरी का, तैयारी का, लयकारी का और तिहाइयों का आनंद एक साथ और एक ही जगह मिलने लगा।

आज़ादी के बाद सितार में दूसरी क्रांति उ. विलायत ख़ाँ ने की। उनका सितार बिलकुल अलग राह पर चल पड़ा था। वह गाने लगा था। कोमलता, बारीक़ी और रूमानियत से उसने बिलकुल नया संसार रच डाला। रवि शंकर की लय-ताल-प्रधानता के मुक़ाबले विलायत ख़ाँ ने लंबी-लंबी मींड़ों के ज़रिए दिल को झकझोरने वाली ऐसी हरक़तों से सितार को संपन्न कर दिया, जिनका नशा हमारी युवा पीढ़ी पर आज पहले से भी ज़्यादा बढ़ता जा रहा है।

सितार की तीसरी क्रांति के मसीहा थे स्वर्गीय पं. निखिल बैनर्जी। वह उ. अली अकबर ख़ाँ के शिष्य थे। निखिल बैनर्जी ने रवि शंकर की रागदारी और लय-ताल की निपुणता में विलायतख़ानी बाज की मार्मिकता का ऐसा जटिल किंतु नपा-तुला मिश्रण कर दिया कि सितार एक संपूर्ण साज़ बन गया। आज रवि शंकर या विलायत ख़ाँ के आलोचक तो आपको कई मिल जाएँगे। पर, निखिल बैनर्जी के सितार की आलोचना करने वाला ढूँढे नहीं मिलेगा।

संगीत को शास्त्रीयता की अतल गहराइयों में पहुँचाने का जैसा प्रयास उ. अली अकबर ख़ाँ ने किया है, उसका कोई मुक़ाबला नहीं। क्या रागदारी क्या कल्पनाशीलता, क्या लयकारी, क्या चमत्कार और क्या मार्मिकता! कठिन से कठिन चीज़ों का ऐसा सहज प्रस्तुतीकरण कि श्रोता ठगा-सा रह जाए। समाज और सरकार-द्वारा की गई उपेक्षा के कारण ऐसे अद्‌भुत कलाकार का मजबूरन अमेरिका जा बसना आज़ादी के बाद की निश्चय ही दु:खद घटना है।

बाद की पीढ़ी में अली अकबर ख़ाँ की कुछ क्षति-पूर्ति उ. अमजद अली ख़ाँ के सरोद से हुई। अमजद अली रवि शंकर के बाद शास्त्रीय संगीत के दूसरे 'शो-मैन' के रूप में उभरे। पर, सुरीलेपन, तैयारी और अपने भाव-केन्द्रित सरोद-वादन की वजह से संगीत की दुनिया में उन्होंने जो सम्मान पाया, वह उनकी पीढ़ी के शायद ही किसी दूसरे कलाकार को मिला हो।

कुछ पुराने वाद्य आज़ादी के बाद धीरे-धीरे लुप्त होते चले गए। सुरबहार और रुद्रवीणा के वादकों में आज इक्का-दुक्का कलाकार बचे हैं। सारंगी के वादक अभी हैं ज़रूर, पर उनकी अब वैसी माँग नहीं रह गई। पखावज- जैसा ताल-वाद्य भी इन दिनों गर्दिश में है।

नए वाद्यों में संतूर ने भारी इज़्ज़त कमाई है। एक ऐसा वाद्य, जिसमें न मींड़ की गुंजाइश है न गमक की, फिर भी हिंदुस्तानी

संगीत में सिर चढ़कर बोले तो इसे अजूबा ही कहा जाएगा। पं. शिवकुमार शर्मा के अकेले प्रयासों ने यह ऐतिहासिक चमत्कार कर दिखाया है। उनके अंतहीन संघर्ष का ही यह नतीजा है कि नई पीढ़ी में अच्छा संतूर बजाने वाले अब कई वादक सामने आ चुके हैं। पं. पन्नालाल घोष और हरिप्रसाद चौरसिया की बाँसुरी और उ. बिस्मिल्लाह ख़ाँ की शहनाई ने भी आज़ाद भारत में ख़ूब धूम मचाई है। पहले शास्त्रीय संगीत में इन वाद्यों का कोई ख़ास महत्व था ही नहीं। उधर, संगत-वाद्य के रूप में हारमोनियम ने सारंगी को ज़बरदस्त शिकस्त दे दी है। अब ज़्यादातर गायक सारंगी-वादकों की अपनी कमज़ोरियों की वजह से हारमोनियम की संगत कहीं ज़्यादा पसंद करते हैं।

हिंदुस्तानी संगीत में स्वतंत्रता के बाद अनेक नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। अपने अस्तित्व को संगीत में डुबो देने वाली आत्मकेन्द्रित गायकी का विकास, कंठ-माधुर्य और स्वर-माधुर्य पर बल, स्वर-लगाव में संवेदनशीलता पर बराबर निगाह, रागों के समय-सिद्धांत का कमज़ोर पड़ते जाना, बड़े ख़याल की लय का अति-विलंबित हो जाना, गायकी में सरगम की तानों का सृजनात्मक प्रयोग, सितार-सरोद वादन में तबले के साथ लड़ंत-भिड़ंत की अखाड़ेबाज़ परंपरा की जगह सवाल-जवाब की कलात्मक और आकर्षक परंपरा की शुरुआत, मंद्र सप्तक के काम में बढ़ोत्तरी और उसमें गहराई आना, इत्यादि कुछ ऐसे तत्व उभरे जिन्होंने भारतीय संगीत के क्षितिज का आश्चर्यजनक विस्तार कर दिया।

उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत को अपनी घरानेदारी पर काफ़ी घमंड रहा है। ऐसे लोगों की आज भी कमी नहीं, जो घराने के नाम पर इठलाते नहीं अघाते। पर सच्चाई यह है कि आज़ादी के बाद रेडियो, टी.वी., ग्रामोफ़ोन, कैसेट और वीडिओ की बढ़ती लोकप्रियता ने घरानों की चहारदीवारियों को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। आज घराने के नाम पर कोई अपने महान् होने का दावा चाहे जितना करले, पर असलियत यह है कि आज का न तो कोई लोकप्रिय गायक अपने घराने की गायकी गा रहा है, और न कोई वादक अपने घराने के बाज को दुहरा रहा है। सभी गायक-वादकों के आँख-कान अब चारों तरफ़ देख-सुन रहे हैं। जहाँ जो अच्छा लगता है, वहीं से उसे लेकर अपनी कला को समृद्ध कर लेना आज के कलाकार की फ़ितरत बन गया है। यही वजह है कि मौजूदा संगीत क्षेत्रीयता की तमाम सीमाओं को तोड़ राष्ट्रीयता की ओर लगातार क़दम बढ़ाता जा रहा है।

रागों के क्षेत्र में भी आज़ादी के बाद कई सृजनात्मक काम

सामने आए। नटभैरव, बैरागी, जन-संबोधिनी जैसे नए रागों की लोकप्रियता बढ़ी। दीपावली, लाजवंती, चंद्रनंदन, लगनगांधार और मालावती जैसे कुछ अन्य नए मोहक राग उस्तादों से सुनने को मिले। छाया-तिलक, हिंडोल-बहार, कौंसी-भैरव जैसे अनेक मिश्र राग भी अस्तित्व में आए। कर्नाटिक संगीत के कई रागों का हिंदुस्तानी संगीत में प्रयोग होने लगा। हंसध्वनि, आभोगी, कीरवानी और चारुकेशी इनमें सबसे ज़्यादा लोकप्रिय हुए। उधर, कर्नाटिक संगीत ने भी उत्तर भारत के दरबारी कान्हड़ा और परज जैसे रागों को अपना लिया।

ठुमरी की रस-भरी गायकी का वर्चस्व आज़ादी के तीस वर्ष बाद तक ख़ूब रहा। आज़ादी के आस-पास कोठों से जुड़ी अनेक गायिकाओं ने अपना पुश्तैनी धंधा छोड़ दिया और शास्त्रीय संगीत के मंच पर आ गईं। अपनी नायाब ठुमरी-गायकी से उन्होंने भरपूर सम्मान और नाम कमाया। उ. बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ ने पंजाब अंग की हरक़तों से ठुमरी में एक अलग ही रंगीनी भर दी। उस वक़्त ठुमरी की ख़ूब धूम थी। इक्का-दुक्का को छोड़ ऐसा कोई कलाकार न बचा, जो ख़याल गाने के बाद अपने कार्यक्रम का समापन ठुमरी से न करता हो। वादकों तक ने अंत में ठुमरी-धुन बजाना शुरु कर दिया।

पर, अब पिछले तीस-चालीस बरस से ठुमरी यक़ायक़ संकट में आ गई है। ठुमरी के विशेषज्ञ गायक-गायिकाओं की नई पीढ़ी अब दिखाई नहीं देती। यहाँ तक कि ख़याल-गायक भी ज़्यादातर अपने कार्यक्रम का समापन अब ठुमरी की जगह भजन से करने लगे हैं। ठुमरी-जैसी सुकुमार और रसीली गायकी पर मँडराते ये काले बादल निश्चित रूप से हमें चिंतित करते हैं।

ध्रुवपद भी स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ता गया। ख़याल के साम्राज्य ने उसे लगभग पूरी तरह निगल लिया है। फिर भी, डागर घराने के उस्तादों और शागिर्दों ने जिस समर्पण, त्याग

और तपस्या से हमारी इस पुरानी धरोहर को अब तक सहेजे रक्खा है, उसकी जितनी तारीफ़ की जाए कम है।

स्वतंत्र भारत की सबसे बड़ी ख़ूबी है संगीत का विश्वविद्यालयों में प्रवेश। जो कला सदियों से अनपढ़ कलाकारों और मीरासियों की मुट्ठी में बंद रही, उसका खुली कक्षाओं में पठन-पाठन एक क्रांतिकारी बात थी। विश्वविद्यालयों से भले ही उम्दा दरजे के कलाकार पैदा न हो पाए हों, पर चिंतन के क्षेत्र में इसके बड़े दूरगामी सुपरिणाम सामने आए। भारतीय संगीत के जो पुराने संस्कृत-ग्रंथ दुर्बोध मान लिए गए थे, पी-एच.डी. के बहाने उनके अध्ययन का सिलसिला शुरु हुआ। पुराने और नए संगीत के बीच की खाई और परंपरा के जीवंत तत्वों को समझने में इन अध्ययनों से भारी मदद मिली। पं. ओम्कारनाथ ठाकुर, ठा. जयदेव सिंह, के. वासुदेव शास्त्री, आचार्य बृहस्पति, बी.सी. देव, प्रो. प्रेमलता शर्मा, डा. सुभद्रा चौधरी, डॉ. मुकुंद लाठ आदि विद्वानों ने संगीत में चिंतन की परंपरा को सुदृढ़ बनाने में ऐतिहासिक योगदान दिया।

पराधीन भारत में संगीत-समीक्षा की कोई उल्लखनीय परंपरा नहीं थी। इसकी असली शुरुआत आज़ादी के बाद ही हुई। अख़बारों और पत्र-पत्रिकाओं में संगीत के उस्तादों और उनके कार्यक्रमों पर टिप्पणियाँ छपनी शुरु हुईं। कुछ गुणी समीक्षकों की टिप्पणियों का बड़े-बड़े उस्तादों के संगीत पर आज गहरा असर पड़ता है, यह बात किसी से छिपी नहीं।

संगीत-संबंधी प्रकाशनों की एक बड़ी तादाद आज़ादी के बाद ही सामने आई। सतासी साल से लगातार छप रही हिंदी की मासिक पत्रिका 'संगीत' ने कोई 60-70 साल पहले संगीत-जगत् में वैचारिक हलचल मचा दी थी। अनेक महत्वपूर्ण शास्त्र-ग्रंथ भी इस सदी के उत्तरार्द्ध में ही रचे गए और प्रकाशित हुए।

भारत सरकार की दिलचस्पी के कारण स्वतंत्रता के बाद प्रदर्शनकारी कलाओं को प्रश्रय देने के लिए केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी की स्थापना हुई। राज्यों में भी अन्य अनेक अकादेमियाँ आरंभ हो गईं। व्यक्तिगत स्तर पर भी जगह-जगह संगीत-विद्यालय और संगीतोद्धारक मंडलों का गठन हुआ। आज पूरे देश में संगीत-सेवी संस्थाओं की एक बड़ी तादाद है। इनमें कुछ कार्यक्रम और समारोह आयोजित करती हैं, कुछ संगीत की परीक्षाएँ चलाती हैं और कुछ पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षा देती हैं।

पिछले कुछ सालों से दो-एक ऐसी संस्थाएँ भी सामने आई हैं, जो गुरु-शिष्य-परंपरा की पद्धति से चुने हुए विद्यार्थियों को उस्तादों से तालीम दिलवा रही हैं। कोलकाता स्थित आई.टी.सी. की 'संगीत रिसर्च अकादेमी' ऐसी ही एक संस्था है। युवाओं में शास्त्रीय संगीत की अभिरुचि जगाने के लिए 'स्पिक मैके' की कोशिशें गत दो दशकों से लगातार जारी हैं। उधर, अनछुए और अनपहचाने सैकड़ों संगीत-साधकों को मंच मुहैया कराने और संगीत-जगत् में उन्हें उचित प्रतिष्ठा दिलवाने के लिए 'संगीत-संकल्प नामक अखिल भारतीय संगठन के सृजनात्मक प्रयास अब एक देश-व्यापी आंदोलन का रूप लेते जा रहे हैं।

बेशक़ आज़ादी के इन 75 वर्षों में शास्त्रीय संगीत ने आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ हासिल की हैं। रजवाड़ों से लेकर लोकतंत्र तक और बुद्धि-प्रधानता से लेकर रस-प्रधानता तक की महत्वपूर्ण यात्रा उसने तय करली है। पर फिर भी, उसका भविष्य अभी बहुत निश्चिंत नज़र नहीं आता। युवा पीढ़ी में लबालब प्रतिभा के बावजूद गला-काट प्रतियोगिता, व्यापारिकता और ग्लैमर के प्रकोप ने चारों तरफ़ अन्याय और अराजकता का माहौल पैदा कर दिया है। धन के मामले में नामी कलाकारों की बेपनाह बढ़ती भूख ने उन्हें एकाधिकारवादी कंपनियों का दास बना दिया है। उनकी बहुत-सी ऊर्जा बाज़ार में अपनी स्थिति को लगातार ऊपर बनाए रखने में ख़र्च हो जाती है।

उभरते कलाकारों में भी बाज़ार को हथियाने की मानो होड़ लगी है। लूट-खसोट के इस माहौल में उन कलाकारों की ही तूती बोलती है, जो कला के साथ-साथ दुनियादारी की तिकड़मों में भी माहिर हैं। आज़ादी के 75 वर्षों में संगीत के अनगिनत सच्चे साधकों का इस तरह लगातार हाशिए पर पहुँचते जाना किसी भी समाज के लिए बेचैनी और चिंता की बात होनी चाहिए।

- लेखक-वरिष्ठ संगीतज्ञ तथा पूर्व संपादक 'संगीत' है।
डी-58, 2 फ्लोर, महेन्द्र एन्क्लेव, जी.टी. करनाल रोड, दिल्ली-110 033,
मो. 9313756699

■

आलेख

रामनारायण उपाध्याय : आत्मनिर्भर गाँव से स्वतंत्रता आन्दोलन को पोसने वाला सेनानी

डॉ. सुमन चौरे

देखते ही देखते वे दिन बहुत दूर निकल गये जब घर से बाहर निकलकर लोग अपने-अपने ओटलों पर खड़े होकर प्रतीक्षा करते थे कि डाकिया आया कि नहीं? जैसे ही डाकिया गली में आता था तुरंत सब पूछते थे, हमारी चिट्ठी-पत्री आई क्या? हमारा कारड-वारड आया क्या? और मुस्कुराते हुए डाकिया हाथ में थामे हुए चिट्ठियों के बण्डल में से उनकी चिट्ठी दे देता था। किन्तु हमारे दादा को इतना सब्र कहाँ कि वे डाकिये की प्रतीक्षा करें, वे तो डाकिया मुहल्ले में आये तब तक अपनी डाक का ज़वाब लिखकर डाक डालने डाकघर पहुँच जाते थे। दादा का स्वभाव था, उषाकाल में जल्दी से उठकर, स्नान करके लिख पढ़कर डाकघर पहुँच जाते थे, क्योंकि डाकिया को कई जगह डाक बाँटते-बाँटते हुए हमारे घर आने में आधा-पौन घण्टा बीत जाता था। डाकघर में चिट्ठियों के डाक टिकिटों पर डाकिया के द्वारा सील-ठप्पे लगाते ही दादा, अपने पते रामनारायण उपाध्याय, साहित्य कुटीर, ब्राह्मणपुरी, खण्डवा के नाम की सारी डाक साथ ले आते थे। हमारे आठ-दस किरायेदारों की डाक भी इसी नाम पते से आती थीं। उन सभी किरायदारों की डाक रोज़ नहीं आती थी। दादा किरायेदारों की डाक भी लेकर आते थे। दादा को घर में सभी कहते थे कि आप रोज़ सुबह से डाकघर जाकर डाक लाते हैं, फिर भी डाकिया अड़ोस-पड़ोस की चिट्ठी-पत्री लेकर तो आता ही है। आधा-पौन घण्टे का अन्तर पड़ता है बस, तो सुबह से डाकघर तक जाने की क्या आवश्यकता है? दादा कहते थे, यह तो कालमुखी (हमारे गाँव) की आदत है। साथ ही सुबह से रास्ते में सभी के हाल-चाल लेते हुए आता हूँ तो संतोष मिलता है।

दादा का बचपन बड़ा रोचक और सुखद घटनाओं से भरा था। किन्तुदादा को किशोरावस्था से ही अस्थमा की तकलीफ होने लगी थी। जो आषाढ़ मास से बहुत बढ़ जाती थी और कार्तिक मास के बाद ही कुछ राहत मिलती थी। यह तकलीफ शाम के बाद बहुत अधिक बढ़ जाया करती थी। दादा की उम्र के साथ रोग बढ़ता गया। रात में हम बच्चे दादा की पीठ और सीने पर तेल मालिश करते थे, जिससे उन्हें श्वास लेने में कुछ सरलता होती थी। दादा को आराम मिलने पर हम उनसे उनके बचपन और किशोरावस्था की बातें सुना करते थे। दादा सुनाया करते थे, देश को स्वतंत्रता मिलने से बहुत पहले की बात है। मैं, मोठा भाई (पुरुषोत्तम उपाध्याय) और छोटा भाई शिवा (शिवनारायण) तीनों पढ़ने के लिए खण्डवा भेजे गये। वहाँ हमारे लिए भाईजी (पिताजी) ने घर खरीदा। एक नौकर भी था, जो हमारे बस्ते हमारी शाला से लाता और ले जाता था।भाभी (माँ) तो नहीं आ सकती थीं। भाईजी को मालगुजारी की जिम्मेदारी देखनी होती थी। एक मावसी हमारे भोजन-पानी की व्यवस्था करने के लिए हमारे साथ रहती थीं। वो हमें माँ के जैसे ही लाड़ करती थीं।

सुकुमार पगारे। सरस पगारे

हम लोग ज़री के कुरते-टोपी, कान में मुरकी बाली, हाथ में सोने का कड़ा पहनते थे। हमारे साथ अंग्रेज अफसरों के बच्चे भी पढ़ते थे। जो हमारी सोने की बालियों को औऱ हमारी मालाओं को हाथ लगाकर पूछते थे, यह ''गोल्डन हथकड़ी है क्या?'' कभी-कभी अंग्रेज़ मास्टर भी भारतीय बच्चों के साथ अच्छा सलूक नहीं करते थे। हमारे मन में अंग्रेज़ों के प्रति बड़ी टीस उठती थी। कई बार अंग्रेज़ मास्टर हमारे सवालों के उत्तर न देकर कहते थे, ''बैठ

जाओ अपने पिता की जागीरदारी सम्हालना, क्या करोगे पढ़ लिख कर। यह पढ़ाई इंडियन के लिए नहीं है।'' तभी से मेरे मन में अंग्रेजों के विरुद्ध एक आक्रोश ने घर कर लिया। मैं कटनी रोपनी की (दिसम्बर) छुट्टियों में कालमुखी आया, तो मैंने अपने पिताजी से कहा, ''भाईजी, मुझे पढ़ते-लिखते आ गया है, अब मैं खण्डवा की शाला में तब तक पढ़ने नहीं जाऊँगा जब तक कि अंग्रेज़ हमारे देश से नहीं चले जायँगे।'' पहले तो भाईजी ने समझा कि मेरी यह पीड़ा मात्र आक्रोश क्षणिक है। किन्तु भाभी ने भाईजी से कहा - तीनों भाई अब खण्डवा पढ़ने नहीं जायँगे। उनके अंग्रेज मास्टर बच्चों को कहते हैं, टोपी मुरकी पहन कर स्कूल मत आओ और अपशब्द कहते हैं। भाईजी भी समझ गये थे कि हमारे हृदय में भारतीयों के प्रति अंग्रेज़ों के दुर्व्यवहार ने घर कर लिया है और इन परिस्थितियों में लड़कों को खण्डवा अकेला छोड़ना उचित नहीं है। सो मोठा भाई, शिवा और मैं तीनों खण्डवा के अंग्रेज़ी स्कूल की पढ़ाई छोड़कर कालमुखी आ गये। खण्डवा का अंग्रेजी स्कूल छोड़ने के समय मैं छठवीं पढ़ा था। आगे की पढ़ाई व्यवहारिक और अनौपचारिक रूप से हुई। हमारे काका पंडित रामचरण उपाध्याय रात को पढ़ाया करते थे। वे बहुत अच्छी संस्कृत, अंग्रेजी और मराठी पढ़ाते थे। हमारे भाईजी का स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा था, अत: काकाजी रामचरणजी और मोठा भाई उनके प्रशासनिक कार्यों में सहायता करते थे। भाईजी की सात गाँव की जागीरदारी थी, तो काम भी बहुत फैला हुआ और लम्बा-चौड़ा था। हर सप्ताह वसूली, कुर्की और न्यायिक कार्यों की जानकारी या तो धनगाँव थाना पहुँचाना पड़ता था या ये जानकारी लेने के लिए कभी-कभी स्वयं अंग्रेजों के प्रशासनिक अधिकारी घोड़े पर सवार होकर आ जाते थे। अत: बड़ा सतर्क रहना होता था। मोठा भाई मालगुजारी के काम में मदद करने लग गये, शिवा छोटी उम्र में ही खेती किसानी के काम में नौकर-चाकरों की देखरेख करने लगा। अकेला मैं ही कुछ नहीं करता था। मेरा मन नहीं लगता था, घर संसार के कामों में। मुझे लगता था कि क्रान्तिकारियों की सेना में भरती हो जाऊँ। सो मैं कालमुखी से आठ मील दूर निमाड़ खेड़ी रेलवे स्टेशन, कभी चुपचाप, कभी किसी की बैलगाड़ी से, कभी किसी के साथ घोड़े पर या कभी साइकिल से या फिर कभी-कभी तो पैदल ही चले जाता था और रेलगाड़ी आने के समय पर पहुँच जाता था। मुझे उम्मीद थी कि रेल में गुप्त तौर पर यात्रा करते हुए क्रांतिकारी मिल सकते हैं। स्टेशन से घर लौटते समय कालमुखी की डाक भी लाता था। कालमुखी में निमाड़ खेड़ी डाकघर ही लगता था। मैं भी पत्र लिखने लगा। स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े सेनानियों को

रमेशचंद्र बाहेती, सिद्धनाथ महोदय. जाधवजी मारु. बृजभूषण चतुर्वेदी .अमोलक चंद जैन, .पी. एन. पाटिल पर बैठे. पं. राम नारायण उपाध्याय. प्रभाकर माचवे, अनोखेलाल अरझरे ।

पत्र लिखता था। मेरे पत्र के उत्तर भी आते थे। मेरे मामाजी के बेटे सुकुमार पगारे, प्रभाकर पगारे,

डोंगरेजी मुझे डाक द्वारा गाँधीजी के आन्दोलन की गतिविधियों से अवगत कराते रहते थे। सुकुमार भाई का लालन-पालन कालमुखी में ही हुआ था। बाद में वे अपने पिता के पास इटारसी चले गये थे। इटारसी एक बड़ा रेलवे जंक्शन था। चारों दिशाओं में पहुँचने के लिए रेलगाड़ियाँ बदलने के लिए स्वतंत्रता सेनानी यहाँ गाड़ियों की प्रतीक्षा करते थे। वे सभाएँ भी करते थे। उनसे लोगों को हिम्मत मिलती थी। लोग भी निर्देशन लेने के लिए उनसे मिलते थे। उस समय तक सुकुमार भाई दो-तीन बार जेल जा चुके थे। वे ठक्कर बप्पा के आश्रम में रहते थे। मैं सुकुमार भाई से बड़ा प्रभावित हुआ और उनके परामर्श से स्वतंत्रता आन्दोलन का काम करने लगा। वे कहते थे, तू गाँव में सेना तैयार कर। अवसर आने पर तुझे संगठन से जोड़ लूँगा। फिर दादा (रामनारायणजी उपाध्याय) कालमुखी में सक्रिय हो गए।

दादा ने कालमुखी में अपने गुर्जर किसान और भील भाइयों की एक स्वतंत्रता सेना तैयार कर ली थी। जैसे कहते हैं कि श्रीराम ने रावण पर विजय पाने के लिए बड़े से बड़े और छोटे से छोटे लोगों को एक साथ जोड़ा। उसी सहयोग और समर्पण से लंका पर विजय पाई। उसी तरह देशभर में अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता पाने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में क्रान्तिकारियों की टोलियाँ संगठित हो रही थीं। दादा ने अपने सखाओं चम्पालाल भाई, छोगीलालकर, जीवन वग्सावाळे, हरीभाऊ केळवा आदि के साथ

मिलकर एक टोल तैयार कर लिया था, जो गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में भागीदारी के लिए और अंग्रेज़ों के शासन के विरुद्ध कुछ भी करने को तैयार थे। यह संगठन बड़ा गुप्त रूप से बना। यहाँ तक कि दादा बताते थे कि उनके छोटे और मोठा भाई के अलावा किसी को भी घर में इसके विषय में जानकारी नहीं थी। किन्तु जाने कैसे धनगाँव के थाने में इस टोल की सूचना पहुँच गई।

एक रात दादा के मित्रों ने योजना बनाने के लिए बन्द कमरे में बैठक बुलाई। जिसमें आस-पास के गाँव के स्वतंत्रता सेनानी भी आये। बन्द कमरे की चर्चा में दादा ने सबको कहा- 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी।'इस गुप्त बैठक और दादा के भाषण में बोली गई इस चौपाई की सूचना धनगाँव थाने में पहुँच गई। वहाँ से थानेदार घुड़सवार चार सैनिकों को लेकर आये।

बोलते हुए रामनारायण उपाध्याय साथ खड़े उनके ममेरे भाई स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और बैठी उनकी पत्नी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी सरस पगारे

दादा को पकड़कर भाईजी के सामने खड़ा कर दिया। थानेदार ने भाईजी से कहा, महाराज आप भले आदमी है, आपका यह बेटा अंग्रेजों के प्रशासन के विरुद्ध बन्द कमरे में सभा करके लोगों को भड़का रहा था। इसने आपकी मालगुजारी के क्षेत्र के लोगों को जोड़कर अंग्रेजों के विरुद्ध टोल बना लिया है। आप समझा लो वरना जेल में ठूँस दूँगा, डेढ पसली का धरा है और अंग्रेज़ों को उखाड़ने की बात कर रहा है। आपके व्यवहार को देखकर छोड़ रहा हूँ।

दादा ने आगे बताया कि भाईजी ने मेरी तरफ देखा तो मैंने सिर झुका लिया। मुझे मानसिक पीड़ा इसलिए हुई कि मेरे कारण भाईजी को सबके सामने थानेदार से दो बात सुननी पड़ी। किन्तु भाईजी ने मुझसे कुछ नहीं कहा। उनका मौन ही मेरे को बहुत कुछ कह गया। मेरा मन अंग्रेज़ों के विरुद्ध और भड़क गया।

मैं कुछ दिन अपने कक्ष में अध्ययन करता रहा। भाईजी के सामने नहीं गया। मैंने मोठा भाई से कहा ''आप और शिवा दो भाई हो, काकाजी हैं भाईजी के काम में सहयोग के लिए। मुझे छोड़ दो देश के लिए।'' मोठा भाई ने कहा, तुम समझते नहीं हो, दरअसल भाईजी चाहते हैं, तुम इस ज़मींदारी के मेहनत भरे काम से मुक्त रहो। उन्हें और हम सभी को केवल तुम्हारे स्वास्थ्य की ही चिन्ता है।

दादा सुनाते थे, एक बार मैं बहुत अधिक बीमार हुआ, किसी भी औषधि का लाभ नहीं हो रहा था। तब मेरी आजी ने कहा,'जा तू'। और मैं स्वस्थ होने लगा। तभी से लोग मेरा एक नाम जातू हो गया। किन्तु मेरी लगातार शारीरिक रुग्णता का परिणाम यह रहा कि मैं कमज़ोर काठी का ही बना रहा। इसलिए भाईजी मुझे क्रांतिकारी आन्दोलन में जाने की अनुमति नहीं दे रहे थे। यद्यपि मन्तक-मन्तक वे चाहते थे कि अपना देश अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो जाय।

दादा कहते थे, मैं मोठा भाई का बड़ा प्यारा था। मैंने मोठा भाई को मना लिया था। उनका सम्पर्क क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने मेरे कहने पर मुझे चुपचाप निमाड़ खेड़ी स्टेशन पर रेलगाड़ी के समय पर भेज दिया, जिस दिन गाड़ी में गुप्त रुप से स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जा रहे थे। किन्तु इतनी गुप्त रूपरेखा जाने कैसे भाईजी को पता चल गई और मेरे स्टेशन पहुँचते ही लेकिन रेलगाड़ी के आने के संकेत होने के पहले ही मुझे पकड़कर बैलगाड़ी में बैठाकर कालमुखी वापस ले आये। घर आकर बाद में मैंने मोठा भाई से कुछ सवाल किए, किन्तु उन्होंने यही कहा कि मेरे एक कान की बात दूसरे कान को भी नहीं मालूम, मुझे नहीं पता इतना खुफिया हमारे घर में कौन है।

दादा खादी का कुरता-धोती पहनते थे। दो जोड़ ही रखते थे, कि देश गरीब है। गाँधीजी के आदर्शों के सच्चे अनुयायी होने के कारण दो जोड़ से अधिक कपड़े नहीं रखते थे। हो सकता है, घर में अन्य कपड़ों के बीच सूखते मेरे कपड़े नहीं दिखाई दिये होंगे और इसी आशंका से निमाड़खेड़ी गाड़ी भेजी होगी।

दादा कहते थे कि फिर कुछ दिन मैं शान्त रहा, किन्तु डाक लेने निमाड़खेड़ी अवश्य जाता था। एक बार अपने कृष्णराव पारे मामाजी के घर नागपुर जाने की इच्छा ज़ाहिर की। तो भाईजी ने कहा जाओ। पारे मामाजी, राधाकृष्ण के भक्त थे, और आयुर्वेद की किसी कम्पनी में काम करते थे। किन्तु दादा नागपुर में उनके घर न जाकर वर्धा चले गए। उन दिनों गाँधीजी वर्धा के आश्रम में थे। गाँधीजी ■

प्रार्थना से निवृत्त हुए, तो दादा ने उन्हें प्रणाम किया और निवेदन किया कि मैं निमाड़ के कालमुखी से आया हूँ। आपके आश्रम में रहकर सेवा करना चाहता हूँ और स्वतंत्रता संग्राम में सक्रियता से काम करना चाहता हूँ। मुझे कार्य सौंप दीजिए। गाँधीजी ने कहा, भाई गाँव में रहकर गाँव की सेवा कीजिए। गाँव की सेवा भारत की सेवा है। गाँव से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करें। यही मेरे आश्रम की सेवा है। आपको यह जवाबदारी सौंप रहा हूँ। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सेवा ही देश सेवा है।

दादा कहते है, मैं कालमुखी में रहकर गुप्त रूप से स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की मदद करता रहा और ग्रामीण पिछड़ी बस्तियों में सेवा कार्य अपने सहयोगियों की मदद से करने लगा। इन्दौर से खण्डवा और खण्डवा से इन्दौर जाने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जंगल के रास्ते केळवा अटूद होते हुए कालमुखी आते थे। यहाँ पर दादा अपने मित्रों के साथ उनके भोजनऔर ठहरने की गुप्त व्यवस्था करते थे। आवश्यकतानुसार कुछ आर्थिक मदद भी करते थे। फिर किरगाँव के जंगलों के रास्ते कभी अतर टेमी के जंगल तो कभी हीरापुर के जंगलों के रास्ते सुळगाँव नागचून होते हुए खण्डवा पहुँचते थे। इन्दौर से श्रीराम आगरकर तो खण्डवा के इदर से लक्ष्मण डासौडी आदि आने जाने वाले होते थे। मार्ग पर मदद के लिए भैया लाल बाबूलाल सोनी सबको लाते ले जाते थे। खण्डवा भी गढ़ बन गया था। भैसावां से भास्कर राव चौरे तो खण्डवा से माखनलाल चतुर्वेदी, वैद्यनाथ महोदय, अमोलकचन्द जैन, वाँचू बाबू थे। सिद्धनाथ महोदय, बाबूलाल तिवारी। रायचन्द नागड़ा ने डोंगरगाँव वन सेना की अगुवाई की। इस वन सेना को आदिवासियों के सहयोग ने अधिक सशक्त बना दिया था। सभी सेनानियों से दादा का मिलना-जुलना था। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर मदद पहुँचाने का प्रबंध दादा करते थे।भास्कर राव चौरे पेशे से वकील थे, पर क्रांति की आग में कूद पड़े। उन्होंने लाल सेना का गठन किया था।

दादा को दम चलता, तेज़ हाँफा भरता था, तो उन्हें भी तकलीफ कम हो और अकेला बुरा न लगे इसलिए हम उनके लिए जागते रहते थे। सुनसान रात में हमको भी बुरा न लगे इसलिए दादा हाँफते-हाँफते भी सेनानियों के बारे में सुनाया करते थे, कि किस तरह गाँव-गाँव तक अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध गतिविधियाँ चलती थीं। वो कहते थे, कि स्वतंत्रता आन्दोलन की यादों से उनकी हिम्मत बढ़ जाती है और दम चलने के बाद भी आराम मिलता है। विनोद में दादा कहा करते थे, मैं दमदार आदमी हूँ। दादा कहा करते थे कि इस दम से मेरा लेखन दमदार बना है। मैं और मेरा जीवन गाँव, गाँधी और दम का ऋणी रहेगा, जिन्होंने मुझे सद्विचारों की ओर अग्रेषित किया। दादा ने अपनी बीमारी को भी अपनी ताकत बना लिया था।

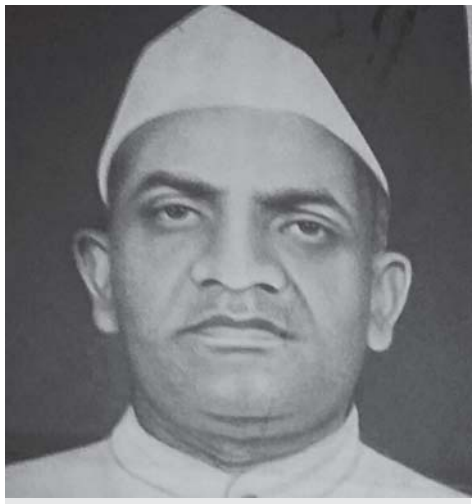

चम्पालाल भाई गुर्जर.स्वतंत्राता संग्राम सेनानी। ग्राम कुमठी।

दादा कहते थे कि मेरे गुरु गाँधीजी ही हैं। और गाँधी और उनके आदर्श ही मेरा गुरु मंत्र हैं। देश की महान विभूति के मुखारविन्द से गुरुज्ञान प्राप्त किया किन्तु यह दम नहीं चलता तो शायद मेरे भाईजी मुझे गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में शामिल होने से नहीं रोकते। वे अंग्रेज़ों के अधीन मालगुजारी का काम करते थे, किन्तु आत्मा से वे बहुत बड़े देशभक्त और लगातार लोकहित के सेवाकार्यों के लिए मदद दिया करते थे। जो गरीब़ ज़रुरतमंद लगान नहीं भर सकते थे, उन किसानों की ओर से लगान अंग्रेज़ों के खजाने में जमा कर देते थे। देश भक्ति का वही खून मेरी रगों में दौड़ रहा था, वे पचपन साल की उम्र में सन् चौंतीस में इस देह से स्वतंत्र हो गये।

गाँधीजी से मिल सका और गाँव को अपना ध्यान केंद्र बनाया तो मेरा मन संतुष्ट है। गाँव से दादा का आशय केवल उनके ही एकमात्र गाँव कालमुखी से कभी नहीं रहा। दादा ने उन सभी गाँवों को, जहाँ तक वे नियमित जीवंत संपर्क कर सकते थे और गाँधीजी के निर्देशानुसार सामाजिक सुधार कार्यों और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहित करने के लिए मदद पहुँचा सकते थे, अपने कार्यक्षेत्र का अंग बनाया। और फिर लेखन कार्य के माध्यम से तो उनका कार्यक्षेत्र और भी व्यापक हो गया था।

दादा के सहयोग से गाँवों में सड़क बनी, शाला, डाकघर, अस्पताल शुरु हुए और पशु अस्पताल तक खुल गया। कालमुखी के डाकघर के प्रभारी बड़े गुरुजी थे और शाला के चपरासी पतिराम मामा गाँव में डाक वितरित करते थे। किन्तु तब भी दादा अपनी चिट्ठी लेने स्वयं शाला के डाकघर पहुँच जाते थे।

दादा के जीवन प्रवाह में उन्हें मार्ग में गाँधीजी के विचारों

का पालन करते कई लोग मिले। दादा का विवाह निमाड़ के बोरगाँव, असीरगढ़ के मध्य गाँव कुमठी के साध परिवार में हुआ था। दादा कहते थे, उस वनक्षेत्र के गाँव में भी गाँधी की आत्मा बसती थी। मैं जब भी कुमठी जाता था, मोठाभाई याने चम्पालाल गुर्जर से बिना मिले नहीं आता था। दादा कहते थे चम्पालाल भाई मूक सेवक थे और उन जैसे लोगों के कारण ही धर्म और मानवता जीवित है। चम्पालाल भाई गाँधीजी के आन्दोलन के सिलसिले में तीन बार जेल की सजा भी हुई। चम्पालाल भाई से मैंने बहुत कुछ सीखा।

देश की स्वतंत्रता के बाद भी दादा निरन्तर महात्मा गाँधी की सीखों पर चलते रहे। सभी की मदद करते रहे। हमें याद है, जब हमारे गाँव में मोटर नहीं चलती थी, तब सात मील दूर अत्तर जाकर छोटी लाईन की रेल से खण्डवा जाते थे। खण्डवा जाने से पहले दादा पूरे गाँव में पूछ परख करते थे। कोई बीमार हो तो उसके लिए गोली-दवाई लाना, कोई आवश्यक वस्तु बुलवाना हो तो दादा खण्डवा से सब लेकर आते थे। विनोबाजी भावे के 'भूदान यज्ञ', 'सबै भूमि गोपाल की' के साथ भी काम किया। विनोबा आश्रम से सुन्दर बैलों वाली बड़ी बैलगाड़ी कालमुखी आई। जिसमें तीन लोग आए थे। दादा उन सभी को अपने ही घर ठहराया। दादा ने अपनी और पूरे परिवार की भूमि बड़े स्तर पर गरीबों को दान करवाई। फिर पटेल, बहुत से बड़े गुर्जर किसानों से भी भू दान करवाया। भूदान यज्ञ की बैलगाड़ी से आए लोगों के साथ दादा आसपास के कई गाँवों में गए और आग्रहपूर्वक कई किसानों से भूदान यज्ञ में भूदान करवाया।

गाँव से जुड़कर ग्राम विकास, आत्मनिर्भरता और समाजोत्थान के माध्यम से स्वतंत्रता आन्दोलन को फैलाने का काम गाँधीजी ने दादा को सूत्र रूप में दिया था। इस गुरुमंत्र का पालन दादा ने सदैव किया। दादा गाँव से हमेशा जुड़े रहे। भारत सरकार द्वारा पद्मश्री दिए जाने बाद दादा सबसे पहले अपने बाल सखाओं से मिलने कालमुखी गए। दादा ने गाँधीजी की विचारधारा को सही अर्थों में समझा, उनके सूत्र को अक्षरश: अपनाया। ऐसे देशभक्त संत को प्रणाम।

– लेखिका-वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन, बावड़िया कला, भोपाल- 462039
मो.- 0942440377, वैकल्पिक नंबर
(कुमार कार्तिकेय)-09819549984, 9407458788

मौन का संवाद
ग़ज़ल संग्रह

लेखक : **दीपक पंडित**

संस्करण : 2021
मूल्य : 250/-
प्रकाशक : सन्दर्भ प्रकाशन, भोपाल

सुषेण पर्व

लेखक : **डॉ. देवेन्द्र दीपक**

संस्करण : 2021
मूल्य : 135/-
प्रकाशक : इंदिरा पब्लिशिंग हाउस, ई-5/21, अरेरा कॉलोनी
हबीबगंज पोलिस स्टेशन रोड, भोपाल-462016

आलेख

आलेख-दिल्ली में कथक क्रान्ति

पंडित विजय शंकर मिश्र

कभी सोने की चिड़ियों के नाम से मशहूर रहा भारत आज अपने खंडित रूप में दुनिया के सबसे बड़े राजतंत्र के रूप में अपार लोगों के आकर्षण और आस्था का केंद्र बना हुआ है, तो भारत का दिल-दिल्ली-भी विश्व के प्राचीन और ऐतिहासिक नगरों में शुमार होता है। यही कारण है कि शुरु से अब तक अनेक बादशाहों, सम्राटों ने इसे अपनी राजधानी बनाया। इस शहर ने कई राजवंशों का उदय और पतन देखा है। हिंदूकुश और सुलेमान पर्वत मालाओं से लगभग 900 किलोमीटर की दूरी पर बसा, अपने निवासियों को ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतुओं का आनंद देने वाली यह नगरी राज-काज की दृष्टि से शुरु से ही सुरक्षित मानी जाती रही है। अपने सघन वनों, अरावली पर्वतमालाओं और परम पुनीत श्यामसलीला यमुना नदी यहाँ के निवासियों के चतुर्दिक किसी सुरक्षा कवच की भाँति खड़े रहते हैं। यही कारण है कि अनेक शासकों ने इसे ही राजधानी बनाने और बनाये रखने का निर्णय लिया।

दिल्ली (DILHI और DILLI) के नामकरण के विषय में अधिकांश लोगों के मतानुसार यह फारसी के दहलीज एवं हिंदी के ड्योढ़ी शब्द का रूपांतर है, क्योंकि तब इसे ही यमुना नदी का प्रवेश द्वार माना जाता था। आधुनिक दिल्ली अलग-अलग समय पर अलग-अलग शासकों द्वारा बसाये गये नगरों का संयुक्त रूप है। इसमें महाभारतकालीन युधिष्ठिर का हस्तिनापुर एवं इंद्रप्रस्थ, राजा दिला का दिल्ली, अनंगपाल का लालकोठ, सूरजपाल का सूरजकुंड, पृथ्वीराज चौहान का लाल पिथौरा, जलालुद्दीन का किलकोरी, अलाउद्दीन खिलजी का शिरी, तुगलकशाह का तुगलकाबाद, फिरोज शाह का फिरोजाबाद, खिजी खान का खिजराबाद, मुबारक शाह का मुबारकबाद, हुमायूँ का दीनपनाह, शेरशाह सूरा की दिल्ली, शाहजहाँ का शाहजहानाबाद और अंत में लुटियन का दिल्ली और नयी दिल्ली- इन सबका संयुक्त रूप है- आज की पुरानी दिल्ली और नयी दिल्ली। इस तरह प्रमुख रूप से सात बार उजड़ी और फिर बसी दिल्ली का आधुनिक स्वरूप इसका आठवाँ रूपांतरण है- जो लुटियन द्वारा संकल्पित और अंग्रेजों की देन है- जिसे आज हम नयी दिल्ली कहते हैं। इसके शेष सात स्वरूप भी- आज-भी- किसी-न-किसी रूप में अपने अस्तित्व और उपस्थिति का बोध हमें कराते रहते हैं। वे पूरी तरह विलुप्त आज भी नहीं हुए हैं।

महाभारत काल से बारहवीं शताब्दी तक दिल्ली पर हिंदू राजाओं का आधिपत्य था और वे सभी कला अनुरागी थे। खुद धनुर्धारी अर्जुन सांगीतिक कलाओं में प्रवीण थे। वे वीणा पर गायन करते थे और अज्ञातवास के समय वृक्ष्न्नला के रूप में विराट राज की कन्या उत्तरा को संगीत-कला की उच्चस्तरीय शिक्षा दी थी। बारहवीं शताब्दी के बाद भारत में मुसलमानों का आगमन शुरु हुआ और स्थिति बदलती चली गई। लगभग चौदहवीं शताब्दी तक मुसलमान शासक लुटेरों के रूप में आते रहे और यहाँ की धन संपदा लूटकर अपने-अपने देशों में लोट जाते रहे। उन दिनों दिल्ली ही नहीं पूरे देश में अराजकता व्याप्त थी, और सांगीतिक कलायें छोटी-छोटी रियासतों तक ही सिमट कर रह गई थी। अकबर के शासनकाल में संगीत की ओर ध्यान दिया गया और इसके विकास के प्रयास आरंभ हुए। लेकिन, तब संगीत के नाम पर सिर्फ गायन-वादन की बातें होती थीं। नृत्य मनोरंजन, विलासिता और अय्यासी का ही साधन बना रहा, जबकि आमेर के कथक नर्त्तक आचार्य वल्लभ दास इसी समय हुए थे, जिन्होंने संत शिरोमणि स्वामी हरिदास प्रणीत् रासलीला की नृत्य संरचना की थी और इस नृत्य संरचना के आधार पर विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि तब समाज में कथक नृत्य का प्रचलन था, भले ही उसका नामकरण कथक नहीं हुआ था। अष्टछाप के अनेक कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में कथक नृत्य के अनेक तत्वों का प्रयोग किया था। उदाहरण के लिये भक्त कवि सूरदास की इस प्रसिद्ध रचना को देखा जा सकता है- **'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल। काम क्रोध का पहिर चोलना। कंठ विषय की माल। माया को कटि फेंटा बांध्यो। लोभ तिलक दियो भाल। भरम भर्‌यो मन भयो पखावज। चलत कुसंगत चाल।**

नाना नाद करत घट भीतर। जल थल सुधि नहीं काल। सूरदास की सर्वे अविद्या। दूरि करो नंदलाल।' इस रचना में कथक नर्त्तक की वेशभूषा का शब्द चित्र प्रस्तुत किया गया है।

इसी तरह अपनी एक रचना में नंददास जी ने कथक नृत्य के विभिन्न तत्वों सहित कथक नृत्य के प्रमुख वर्ण ततथेई आदि का भी वर्णन किया है–

लास्य भेद निपुन कोक रस उजनारी।
लेत सुलप उरप अवनि उरज वदन फिरत।
निरतत गिरधरन संग रंग भरी नागरी।
वृंदावन रम्य जहाँ विहरत पिय प्यारी।
तहाँ मंडल रची रास रसिक जुवति बिन बागरी।
बाजत अनहद मृदंग ताल बीन गति सुढ़ंग।
अंग-अंग लग्यौ निरखि जग्यौ रंग राग री।
तत थेई शब्द करत सकल नृत्य भेद सहित।
सुलप संच उदप तिरप लेत नागरी।'

कुंभन दास ने कृष्ण के दरबार में प्रस्तुत संगीत नृत्य का दर्शनीय रूप–रास–स्वरूप–का वर्णन करते हुए उसमें ताम्बूल अर्थात् पान विवरण का भी मनमोहक वर्णन किया है–

'गावत गिरधर संग परम मुदित रास रंग।
उरप तिरप लेत तान नागर नागरी।
सरिगमपधनिनापधनि उघटति सप्त सुरनि।
लेती लाग-डाँट काल गति उजागरी/
चर्बन ताम्बूल देत ध्रुव तालहिं गतहिं लेत।
गिड़ि गिड़ि तक थुंग थुंगा अलग लागरी।

रासलीला शब्द रास और लीला–इन दो शब्दों को मिलाकर बना है जो इसके प्रदर्शनात्मक स्वरूप का बोध कराते हैं। रास का नृत्य प्रधान रूप ब्रज में विकसित हुआ था, इसके पश्चात् श्री नारायण भट्ट ने विभिन्न ईश्वरीय कथाओं, लीलाओं के नाट्य रूप में प्रस्तुत करना आरंभ किया, और, इस प्रकार रासलीला का वर्तमान स्वरूप स्थापित हुआ। सोलह कला संपूर्ण नटवर श्रीकृष्ण को ध्यान में रखते हुए सोलह प्रकार के ही रास नृत्य की ही संरचना कथक नर्त्तक आचार्य वल्लभ दास ने की थी, जो तत्कालीन अधिकांश कथक नर्त्तकों का आदर्श था और इसकी शिक्षा प्राप्त करने के लिये वे दूर–दूर से वृंदावन की यात्रा करते थे। यही कारण है कि कथक नृत्य की कल्पना भी श्रीकृष्ण के अभाव में नहीं की जा सकती है।

दिल्ली दरबार में इस समय सिर्फ तबयफों के मनोरंजन प्रधान नृत्य को ही बढ़ावा मिला, किंतु मंदिरों एवं छोटे छोटे हिंदू राजाओं के सरंक्षण एवं प्रोत्साहन ने धीमी गति में ही सही, कथक की विकास यात्रा को जारी रखा... उन्हें प्राणवायु देकर इसे न केवल मरने से बचा लिया, अपितु वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार का माध्यम भी बना लिया। एक ओर ताकत के बल पर हिंदुओं को इस्लाम कबूल करने के लिये मजबूर किया जा रहा था तो दूसरी ओर कला के माध्यम से हिंदुओं को उनकी समृद्ध परंपरा और वैष्णव धर्म की महानता बताई जा रही थी, इसीलिये कहा गया कि– 'कथा कहे सो कत्थक कहावे।' यानी कथा कहने वाले कत्थक जाति के लोग हैं। ये कत्थक जाति के लोग ब्राह्मण थे और अपना उपनाम मिश्र, पांडेय और तिवारी आदि लिखा करते थे। लेकिन चूँकि ये जगह–जगह जाकर तत्कालीन भव्य मंदिरों के प्रांगण में ईश्वरीय लीलाओं का संगीत और नृत्य आदि का प्रदर्शन करते थे, अत: इन्हें कत्थक भी कहा गया। बीसवीं शताब्दी में कत्थकों द्वारा प्रस्तुत किये जाने के कारण ही इसका नामकरण कथक हुआ, किंतु कुछ लोग इसे कत्थक नृत्य भी कहते हैं। सिर्फ प्रसंगवश। यहाँ यह बताना उचित होगा कि इसी कालावधि में भारत के अन्य शास्त्रीय नृत्यों के भी आधुनिक नामकरण हुए। देश को आजादी मिलने के पूर्व कथक नृत्य के विकास में लखनऊ के नवाबों और जयपुर के राजाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा। अपनी बौद्धिक और मानसिक विलासिता के लिये ही सही रामपुर के नवाबों ने भी इसके संरक्षण में योगदान दिया और रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह जूदेव ने भी इसमें सक्रिय भूमिका निभाई। फलस्वरूप कथक नृत्य के दो महत्वपूर्ण घराने लखनऊ और जयपुर स्थापित हुए। एक अन्य घराना रायगढ़ भी अस्तित्व में आया। और बिना किसी राज्याश्रय के बनारस घराना भी सामने आया। औ, बीसवीं शताब्दी में– उस दिल्ली में– जहाँ बारहवीं शताब्दी से कथक नृत्य उपेक्षित अवस्था में रहा– कथक नृत्य का बीजारोपण आरंभ हुआ। पं. अच्छन महाराज, पं. नारायण प्रसाद, पं. शंभू महाराज, पं. सुंदर प्रसाद, विदुषी माया राव, पं. बिरजू महाराज, महाराज कृष्ण कुमार, पं. कुंदन लाल गंगानी, पं. देवीलाल, पं. दुर्गा लाल जैसे कथकाचार्यों सहित प्रो. मोहनराव कल्याणपुरकर, विदुषी निर्मला जोशी, विदुषी सुमित्रा चरतराम और श्री केशव कोठारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। पं. तीर्थराम आजाद, पं. विनय चंद्र मौद्गल्य, रेबा विद्यार्थी, भगवान दास विदुषी नैना देवी, विदुषी उर्मिला नागर, विदुषी शोवना नारायण, विदुषी उमा शर्मा, विदुषी गीतांजलि लाल, विदुषी मंजूश्री चटर्जी और पं. जितेंद्र महाराज आदि ने भी दिल्ली में कथक नृत्य को समृद्ध करने में यथेष्ट योगदान

दिया है और दे रहे हैं।

दिल्ली में कथक नृत्य की बात करें तो यहाँ कथक नृत्य का बीजारोपण करने का श्रेय लखनऊ घराने के महान् कथक नर्त्तक पं. अच्छन महाराज जी को है। 1940 के दशक में वे दिल्ली आये थे। उन दिनों दिल्ली के कॅनाट प्लेस में हिंदुस्तानी म्यूजिक एंड डांस एकेडमी नामक एक संस्था चल रही थी। महाराज जी उसमें अध्यापक नियुक्त हो गये। एक सभ्रांत, कला अनुरागी महिला निर्मला जोशी का महाराज जी का बहुत सहयोग किया। बाद में केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी की 1953 में स्थापना होने पर निर्मला जोशी जी उसकी प्रथम सचिव नियुक्त हुईं पं. अच्छन महाराज से दिल्ली में सीखने वालों में से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं– विदुषी उमा जोशी (निर्मला जोशी की बहन), विदुषी कपिला वात्स्यायन, विदुषी रेबा विद्यार्थी, सोहन कुमार और निर्मला जैन आदि। वे स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई के अंतिम दिन थे। 1946 में महाराजजी को अपने गृहनगर लखनऊ और अपने मित्रों की याद आने लगी, अत: कुछ दिनों का अवकाश लेकर वे सपरिवार लखनऊ चले गये। वहाँ उन्हें लू लगी और 1946 में ही उनका निधन लखनऊ में हो गया। हिंदुस्तानी म्यूजिक एंड डांस एकेडमी नामक वह संस्था आज संस्कार भारती नाम से मंडी हाउस क्षेत्र में तानसेन मार्ग पर आज भी चल रही है।

जिस समय दिल्ली में हिंदुस्तानी म्यूजिक एंड डांस एकेडमी चल रही थी, उस समय यानी 1939 में कॅनाट प्लेस में ही प्रेम हाउस में किराये के दो कमरों में पं. विनय चंद्र मौद्गल्य ने अपने दो भाइयों बिपिन चंद्र मौद्गल्य और प्रमोद चंद्र मौद्गल्य के साथ मिलकर गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की थी। बाद में यह कमला नगर में स्थानांतरित हुआ और उसके बाद 1972 में दीन दयाल उपाध्याय मार्ग पर इसका भव्य और विशाल भवन बनकर तैयार हुआ– जहाँ यह आज चल रही है। उस समय दिल्ली में अन्य सांगीतिक गतिविधियाँ तो चल रही थीं, लेकिन पं. अच्छन महाराज के दिल्ली से चले जाने और फिर उनका निधन होने से दिल्ली के कथक नृत्य में फिर एक जड़ता व्याप्त हो गई थी। और, देखते–देखते 1947 का वर्ष आ गया। 1947 में दिल्ली में कई महत्वपूर्ण घटनायें घटीं। सबसे महत्वपूर्ण घटना तो आजादी की घोषणा थी। इसी वर्ष कला अनुरागी सुमित्रा चरतराम ने झनकार नाम से एक सांस्कृतिक, सांगीतिक संस्था गठित की, जो 1952 में भारतीय कलाकेंद्र के नाम से एक संगीत विद्यालय में रूपांतरित हो गया और आज श्रीराम भारतीय कला केंद्र के नाम से दिल्ली की अग्रणी संस्थाओं में शुमार है। और, इसी वर्ष जयपुर घराने के महान् नृत्याचार्य पं. नारायण प्रसाद जी अपनी पत्नी और नवजात पुत्र चरण गिरधर चाँद के साथ दिल्ली पधारे।

दिल्ली आने के बाद पं. नारायण प्रसाद सर्वप्रथम सिविल लाईंस के रामकिशोर लेन में डॉ. वासु के यहाँ ठहरे। यहाँ डॉ. पी.एन. भार्गव ने अपनी दो पुत्रियों शशि और कृष्णा को नृत्य सिखाने के लिये पं. नारायण प्रसाद को नियुक्त किया। 1948 में पं. विनयचंद्र मौद्गल्य को पं. नारायण प्रसाद के दिल्ली आगमन की सूचना मिली। अत: उन्होंने पं. नारायण प्रसाद जी को गांधर्व महाविद्यालय में कथक नृत्य सिखाने के लिये आमंत्रित किया। पं. नारायण प्रसाद जी ने 1948 से 1958 तक– अपनी मृत्युपर्यंत यहाँ नृत्य की शिक्षा दी। इसी दौरान उन्होंने कृष्ण लीलाओं से संबंधित अनेक कवित्त–नटवर राधा युगल नृत्य, माखन चोरी, कालिया दमन, राधाकृष्ण होली, कृष्ण गोवर्धन लीला, इंद्र कोप, सोलह श्रृंगार आदि सहित अनेक भजनों को भी रचकर अपने शिष्यों को सिखाया। दिल्ली प्रवास के दौरान पं. नारायण प्रसाद ने नटराज शंकर देव झा, मांगेलाल, महादेव प्रसाद, रानी कर्णा, पुष्पा बत्रा, शकुंतला देवी, पुष्पा माथुर, रीता भंडारी, लक्ष्मी देव, संतोष सूद, प्रणोती राव, माधवी मुद्गल, कन्हैया लाल, सुरेंद्र आर्टिस्ट तीरथ राम आजाद, जुगल किशोर चौहान, वेद प्रकाश, प्रेमनाथ शर्मा, उस्ताद हम्मा खाँ, फकीर चंद, गोविंद प्रसाद, प्रकाश गार्ड, राजकुमार, बर्मन लाल, बाबू प्रेमदास, शिव प्रसाद, हरिप्रसाद, प्रभुलाल एवं लक्ष्मी नारायण आदि को कथक नृत्य की शिक्षा दी थी। इनके अलावा कार्तिक राम, कल्याण दास, फिरतू दास, बर्मन लाल, कुंदन लाल गंगानी सुंदर लाल गंगानी, बाबूलाल पाटनी एवं देवीलाल तथा दुर्गालाल के पिता पं. ओम्कार लाल ने भी उनसे सीखा था। पं. नारायण प्रसाद के सुपुत्र पं. चरण गिरधर चाँद वर्तमान में इस परंपरा का सफल प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। सिर्फ 48 वर्ष की उम्र में फेफड़े के कैंसर से 12 सितंबर 1958 को दिल्ली में पं. नारायण प्रसाद का निधन हुआ।

इस बीच 1947 में झनकार नाम से गठित संस्था 1952 में भारतीय कलाकेंद्र के नाम से पंजीकृत होकर एक संगीत संस्था के रूप में गतिशील हो चुकी थी। सुमित्रा चरतराम द्वारा स्थापित इस संस्था से निर्मला जोशी और नैना देवी जैसे प्रभावशाली लोग जुड़ चुके थे। 1955 में कथक नृत्य की शिक्षा देने के लिये निर्मला जोशी ने लखनऊ से पं. शंभू महाराज को बुलाया। उनसे सीखने के लिये सरकारी छात्रवृत्ति लेकर माया राव आईं थी, और सर्वप्रथम भोजन कक्ष में कक्षायें आरंभ हुईं। शंभू महाराज ने दिल्ली में रहते हुए माया

राव सहित कुंकुदिनी लाखिया, उमा शर्मा, विभा दाधीच, महाराज कृष्ण कुमार, ज्ञान मिदलानी, रीना सिंह एवं श्रीमती कमलेश सहित अपने भतीजे बिरजू महाराज और पुत्रों कृष्ण मोहन एवं राम मोहन को भी सिखाया। भारतीय कलाकेंद्र एवं कथक केंद्र में कार्य करने के दौरान शंभू महाराज ने कुमार संभव, मालती माधव, शाने अवध, गोवर्धन लीला, फाग लीला, कथक की कहानी एवं युद्ध और शांति जैसी नृत्य नाटिका का निर्माण एवं निर्देशन करके कथक नृत्य के लिये एक नयी जमीन तैयार करने का काम किया था, जिसमें माया राव एवं बिरजू महाराज उनके सहायक थे। 4 नवंबर 1970 को शंभू महाराज का निधन दिल्ली में हुआ था।

इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि पहले कथक के कलाकार अपनी इच्छानुसार जब भी जो चाहते थे नाच लेते थे। लेकिन, दिल्ली में पं. शंभू महाराज ने माया राव के सहयोग से कथक नृत्य का एक वस्तुक्रम निर्धारित करते हुए यह तय किया कि किसके बाद किस बोल को नाचा जाये। और, आज लगभग सभी नृत्यकार उस वस्तु क्रम का पालन कर रहे हैं।

निर्मला जोशी के आमंत्रण पर एक बार पं. लच्छू महाराज भी कुछ दिनों के लिये दिल्ली आये थे। यहाँ उन्होंने भारतीय कलाकेंद्र के लिये मालती–माधव नामक नृत्य नाटिका का निर्देशन किया था। पं. बिरजू महाराज उनके सहायक थे। 1957 में दिल्ली के ताल कटोरा गार्डन के विशाल मंच पर प्रदर्शित इस नृत्य नाटिका में नायक की भूमिका में महाराज कृष्ण कुमार थे, सहनायक की भूमिका में पं. बिरजू महाराज थे और नायिका की भूमिका में कुमुदिनी लाखिया थी। भारत सरकार के तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ. बी.वी. केसकर ने अपने संबोधन में इसे दिल्ली के सांस्कृतिक जगत की ऐतिहासिक घटना बताया था।

1958 में भारतीय कलाकेंद्र के आमंत्रण पर जयपुर घराने के महान् नर्त्तक पं. सुंदर प्रसाद जी दिल्ली आये थे। उन्होंने दिल्ली में भारतीय कलाकेंद्र और कथक नृत्य में शिक्षा दी थी। पं. सुंदर प्रसाद ने दिल्ली में उमा शर्मा, रानी कर्णा, देवी लाल, दुर्गा लाल, उर्मिला नागर, प्रिया पवार, प्रकाश, संतोष और ओमप्रकाश आदि को कथक नृत्य की उच्चस्तरीय शिक्षा दी थी। जयपुर घराने के नर्त्तक अपने कार्यक्रम का शुभारंभ गणेश स्तुति से करते हैं। इस प्रथा का श्रीगणेश पं. सुंदर प्रसाद जी ने किया था। 1959 में केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान से सम्मानित पं. सुंदर प्रसाद जी ने तालमाला, गंगा जमनी, ताल त्रिवेणी, नायिका माला, भस्मासुर मोहिनी, अहिल्या उद्धार, कामदहन, माखनचोरी, कालिया दमन, होली, द्रौपदी वस्त्राहरण और शेष शायी विष्णु जैसी अनुपम और अद्भुत गतों के महान् सर्जक पं. सुंदर प्रसाद जी का निधन फेफड़े के कैंसर से 30 मई 1970 को दिल्ली में हुआ।

1964 में भारतीय कलाकेंद्र का कथक नृत्य विभाग उससे अलग हो गया, और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी के सहयोग से कथक नृत्य के राष्ट्रीय संस्थान कथक केंद्र के रूप में भगवान दास मार्ग स्थित बहावलपुर हाउस में स्थापित हो गया। इस समय चाणक्यपुरी के सेना गार्टिन मार्ग पर अपने भव्य एवं विशाल भवन में यह संस्थान नवकथककर्मियों का मार्ग प्रशस्त कर रहा है, और न केवल पूरे देश, बल्कि कई दूसरे देशों से भी लोग यहाँ कथक नृत्य का उच्चस्तरीय प्रशिक्षण लेने के लिये आते हैं।

दिल्ली में कथक नृत्य को स्थापित करने में विदुषी माया राव, प्रो. मोहन राव कल्याणपुरकर और श्री केशव कोठारी जैसे लोगों का भी बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन लोगों ने कथक नृत्य के क्षेत्र में काम करने के साथ–साथ प्रशासनिक और सरकारी स्तर पर ऐसी योजनायें बनाकर उनका क्रियान्वयन भी कराया जिससे कथक नृत्य के विकास को एक सुनियोजित दिशा मिली... विस्तार मिला। माया राव पहली दक्षिण भारतीय महिला थीं जिन्होंने उत्तर भारतीय कथक नृत्य को सीखा... इसके दोनों प्रमुख घरानों– जयपुर और लखनऊ का प्रशिक्षण लिया, और नृत्य नाटिकाओं के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। प्रो. मोहन राव कल्याणपुरकर ने दिल्ली के कथक केंद्र के निदेशक के पद को भी सुशोभित किया था। श्री केशव कोठारी जी ने भी केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी के सचिव ओर कथक केंद्र के निदेशक पद को सुशोभित करते हुए कई उल्लेखनीय कार्य किये।

पं. बिरजू महाराज ने दिल्ली में कथक नृत्य को विकसित करने में अहम् योगदान दिया है। बचपन में ही दिल्ली आ गये महाराज जी ने संगीत भारती, भारतीय कलाकेंद्र और कथक केंद्र में गुरु के पद को सुशोभित करने के पश्चात् इस समय अपनी संस्था कला आश्रम के माध्यम से कथम नृत्य के विकास में जुटे हैं। महाराज जी ने अनेक नृत्य संरचनाओं ओर नृत्य नाटिकाओं का निर्माण और निर्देशन करके जहाँ एक ओर कथक की कथा को आगे बढ़ाया है, वहीं इसके सौंदर्यात्मक तत्वों को विकसित करते हुए अपने सैकड़ों शिष्यों के माध्यम से इसे दुनिया के अनेक देशों में पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

पं. बिरजू महाराज जी की जन्मभूमि भले ही लखनऊ रही, लेकिन उनकी कर्मभूमि दिल्ली ही रही। ये अपनी अबोधावस्था में ही

अपने पिता–गुरु पं. अच्छन महाराज के साथ दिल्ली आ गये थे। आठ वर्ष की उम्र में इन्हें अपने पिता के साथ लखनऊ जाना पड़ा जहाँ अच्छन महाराज जी की मृत्यु हो गई। यह 1946 की घटना है। इसके बाद 14 वर्ष की उम्र में 1952 में ये पुन: दिल्ली आ गये। यहाँ निर्मला जोशी जी की सहायता से इन्हें उसी इंडियन म्यूजिक एंड डांस एकेडमी में कथक नृत्य सिखाने की जिम्मेदारी सौंपी गई, जिसमें पं. अच्छन महाराज सिखा चुके थे। गायन, वादन और नृत्य–तीनों ही विधाओं की गहरी जानकारी रखने वाले महाराजजी ने दिल्ली में रहते हुए ही शतरंज के खिलाड़ी, देवदास, गदर, डेढ़ इरिकिया, माचिस, दिल तो पागल है, विश्वरूपम, बाजीराव मस्तानी और प्रणाली–द ड्रेडियन जैसी फिल्मों में नृत्य निर्देशन किया तो कुमार संभव, डालिया, कृष्णायन, कथा रघुनाथ की, होता है शबे रोज तमाशा मेरे आगे, रूपमती–बाज बहादुर, मालविकाग्निमित्र, होरी धूम मच्यो री, गीत गोविंद, हब्बा खातून, लय परिक्रमा, नृत्य केलि, मौन साक्षी, नृत्य अर्चना, अंग तरंग, तीर तरंग, ध्रुव पतिका, ठुमरी मालिका, अतिथि, नृत्यांजलि, आलोक मुक्ति, यति दर्शन, समन्वय, अभिलाषा, नाद गुंजन, रास रम्या, रोमियो जूलिएट, एडीटिंग, अनम नवग्रह, सिंहासन, गीतोपदेश, तिहाई, वंदेमातरम्, पंचतत्व, माधुर्य लीला, प्रहार, चलो मन गंगा जमुना तीर, दिल्ली नामा, अष्टनायिका एवं महारास आदि जैसी नृत्य नाटिकाओं एवं नृत्य संरचनाओं का सृजन कर चुके महाराज जी आज भी अपने सृजनकर्म में जुटे हुए हैं। केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी की रत्न सदस्यता और पद्मविभूषण के अलंकरण सहित अनेकानेक सम्मान पा चुके महाराज जी ने दिल्ली में रहते हुए स्व. प्रदीप शंकर, स्व. विजयशंकर, स्व. अर्जुन मिश्रा, स्व. वैरोनिक अजान, तीरथ अजमानी, भारती गुप्ता, मुन्ना शुक्ला, शास्वती सेन, भास्वती मिश्रा, शिवजी मिश्र, रश्मि वाजपेयी, शर्मिला शर्मा, काजल शर्मा, शोवना नारायण, अदिति मंगलदास, ओमप्रकाश मिश्रा, मालती श्याम, रसोधरा, रेनू शर्मा, अभयशंकर मिश्र, काकोलि शंकर मिश्र, रक्षा सिंह, स्व. सुभाष दीक्षित, जानकी पैट्रिक, सुश्री शैली, श्री बेक, श्रीमती सुराना, स्व. मधुकर आनंद, चेतना जालान, महुआ शंकर किरण चौहान, भावना ग्रोवर दुआ, नायनिका घोष चौधुरी और असिमता मिश्रा जैसे हजारों लोगों सहित अपने दोनों चचेरे भाई कृष्ण मोहन मिश्र और राम मोहन मिश्र, पुत्रों जयकिशन और दीपक, पुत्रियों कविता और ममता, पौत्र त्रिभुवन, पौत्री रागिनी और यशस्विनी तथा दौहित्ती शिंजनी आदि को भी इस कला में पारंगत करके कथक की दुनिया को समृद्ध किया है।

महाराज कृष्ण कुमार बनारस के जानकी प्रसाद घराने के

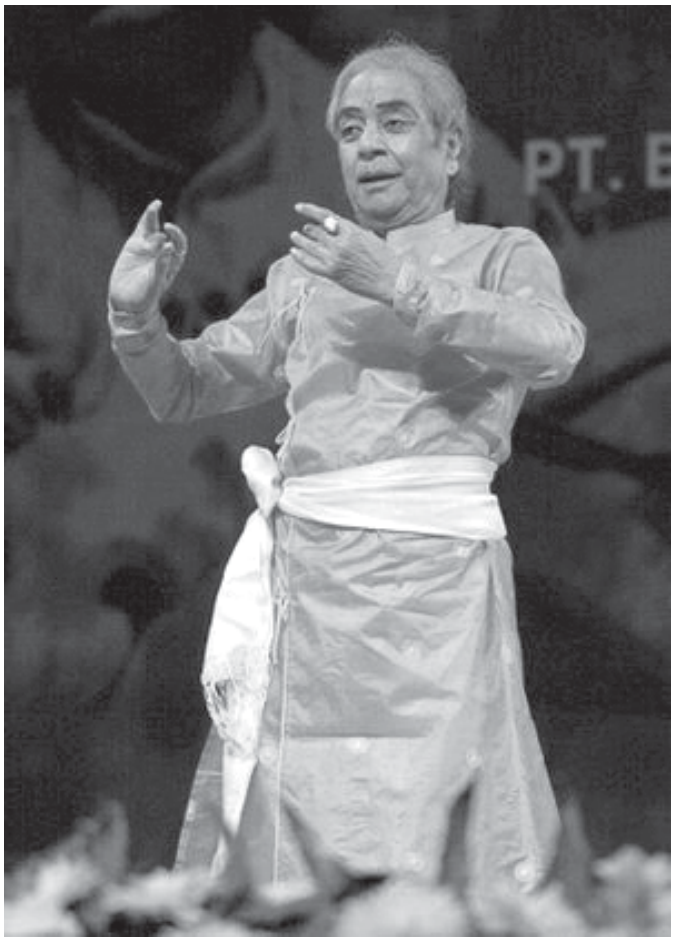

एक ऐसे कथक नर्त्तक थे, जिनके नृत्य में लखनऊ और जयपुर घराने की भी विशेषतायें मौजूद थीं। जानकी प्रसाद घराने के प्रख्यात नर्त्तक पं. गोपाल के सुपुत्र कृष्ण कुमार जी ने कथक नृत्य की शिक्षा हीरा बाई, पं. हनुमान, पं. मोहनलाल और उ. आशिक हुसैन उर्फ भूरे खाँ से प्राप्त की थी। ये सभी उनके पिता के शिष्य थे। कृष्ण कुमार जी के पिता पं. गोपाल का निधन तभी हो गया था जब कृष्ण कुमार की उम्र मात्र डेढ़ वर्ष की थी। 1956 में संगीत नाटक अकादेमी की सचिव निर्मला जोशी ने जब बरेली में उनका नृत्य देखा तो बहुत प्रभावित हुईं और उन्हें छात्रवृत्ति देकर पं. शम्भू महाराजजी से सीखने के लिए दिल्ली बुलाया। भारतीय कलाकेंद्र की आरंभिक नृत्य नाटिकाओं में मालती माधव और कुमार संभव में नायक की भूमिका अभिनीत की थी। सह नायक की भूमिका में पं. बिरजू महाराज थे। शान–ए–अवध में नवाब वाजिद अली शाह की भूमिका में महाराज कृष्ण कुमार और अपने प्रपितामह पं. ठाकुर प्रसाद की भूमिका में पं. बिरजू महाराज थे। महाराज कृष्ण कुमार द्वारा निर्देशित नृत्य नाटिकायें मिट्टी की गुड़िया, ताज की कहानी, कत्थक की कला, मानव, शाहजहाँ का ख्वाब, राजा भर्तृहरि, उमर खैय्याम, पत्थर के

आँसू, पनिहारी, पीड़ा दा परागा, हमारी दिल्ली, संत सुंदर दास, काव्य संध्या, श्रवण कुमार, पृथ्वीराज चौहान और मूमल-महेंदर नृत्य नाटिकायें काफी प्रशंसित हुई थीं। प्रेम रोग, नूरी, दिले नादान, प्यार का सावन तथा यारी जैसी फिल्मों में इनके निर्देशन को काफी सराहा गया था। इनके दिल्ली स्थित शिष्य-शिष्याओं में इनके सुपुत्र अशोक महाराज, जितेंद्र महाराज, तीरथराम आजाद, नलिनी मल्होत्रा जैन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी की रत्न सदस्यता और पद्मश्री से अलंकृत महाराजजी का निधन मात्र 64 वर्ष की उम्र में 23 दिसम्बर 1992 को दिल्ली में हुआ था।

पं. ओकारलाल के पुत्र द्वय पं. देवीलाल और पं. दुर्गालाल ने भी दिल्ली में कथक नृत्य को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। हालाँकि, ये दोनों भाई बहुत कम उम्र में दुनिया को अलविदा कह गये। पं. देवीलाल ने पं. सुंदर प्रसाद जी से सीखा था, जबकि पं. दुर्गालाल ने पहले अपने बड़े भाई पं. देवीलाल से, तत्पश्चात् पं. सुंदर प्रसाद से सीखा था। जयपुर शैली के कथक नृत्य में सौंदर्यात्मक तत्वों के विकास का प्रथम श्रेय पं. दुर्गालाल को ही दिया जाता है। पं. दुर्गालाल द्वारा प्रस्तुत दशावतार को आज भी लोग याद करते हैं। दुर्गालाल पखावज भी बहुत अच्छा बजाते थे। पं. गोपी कृष्ण के नृत्य और पं. रविशंकर के सितार के साथ पखावज वादन करके उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। पं. रविशंकर द्वारा निर्देशित और बर्मिंघम ऑपेरा कंपनी के लिये निर्मित तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शित नृत्य नाटिका घनश्याम में मुख्य भूमिका पं. दुर्गालाल ने ही निभाई थी। दिल्ली स्थित कथक केंद्र में गुरु पद पर कार्यरत रहे पं. दुर्गालाल ने नंदनी सिंह, उमा डोगरा, जयंत कस्तुवार, तनिल पटेल, स्मृति मिश्रा, रूबी मिश्रा, तनिल पटेल और निगत चौधरी (पाकिस्तान) जैसे प्रतिभाशाली शिष्यों को तैयार किया था। 21 जनवरी 1990 को इनका निधन हुआ। इनकी पुत्री नूपुर और पुत्र मोहित भी संगीत कला से जुड़े हुए हैं।

पं. देवीलाल की पत्नी विदुषी गीतांजलि लाल अंतराष्ट्रीय ख्याति की नृत्यांगना हैं। कश्मीरी फिल्म (शायरे कश्मीर मेहजूर) में नायिका की भूमिका निभा चुकीं नृत्य शारदा, भारत गौरव, नाट्य कलाश्री, कला शिरोमणि, कल्पना चावला अवार्ड, इंदिरा गाँधी प्रियदर्शिनी अवार्ड और जीजाबाई वुमेन अचीवर्स अवार्ड सहित केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान से सम्मानित गीतांजलि लाल ने विदुषी रोशनकुमारी, नटराज गोपीकृष्ण और पं. देवीलाल से शिक्षा प्राप्त की है। कथक केंद्र दिल्ली में अध्यापिका और निदेशक के रूप में काम करते हुए इन्होंने कई शिष्यों को तैयार किया, जिनमें अभिमन्यु लाल और विद्यालाल का नाम उल्लेखनीय है। विदुषी गीतांजलि लाल 'देवी दुर्गा कथक संस्थान' की स्थापना करके कथक नृत्य के विकास में जुटी हुई हैं।

दिल्ली में जयपुर शैली के कथक नृत्य को स्थापित करने में नृत्याचार्य पं. नारायण प्रसाद के प्रमुख शिष्य और भांजे पं. कुंदन लाल गंगानी का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पं. सुंदर प्रसाद जी के निधन के पश्चात् इन्हें दिल्ली आमंत्रित किया गया था। गंगानीजी दिल्ली आने के पहले ही उर्मिला नागर, शशि सांखला और शोभा कौसर जैसी वरिष्ठ नृत्यांगनाओं को प्रशिक्षित कर चुके थे। दिल्ली कथक केंद्र में कार्य करते हुए इन्होंने कई शिष्यों को तैयार किया, जिनमें इनके पुत्र द्वय गुरु राजेंद्र गंगानी और हरीश गंगानी तथा शिष्या विदुषी प्रेरणा श्रीमाली के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दिल्ली में सिर्फ 58 वर्ष की उम्र में 16 जुलाई 1984 को इनका निधन हुआ था।

गुरु गोपाल डांगी, गुरु कुंदन लाल गंगानी और गुरु नारायण प्रसाद जी की यशस्वी शिष्या गुरु उर्मिला नागर 1964 में दिल्ली आई थी। यहां आकर इन्होंने राष्ट्रीय छात्रवृति लेकर भारतीय कलाकेंद्र में गुरु सुंदर प्रसाद से कथक नृत्य और विदुषी सिद्धेश्वरी देवी से ठुमरी सीखना शुरु किया। बाद में पं. विनय चंद्र मौद्गल्य, प्र. बसंत ठकार और पं. दिलीप चंद्र वेदी से भी गायन सीखा। गायन और नर्त्तन दोनों में दक्ष राजस्थान संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित कई मान-सम्मान प्राप्त कर चुकी अंतरराष्ट्रीय ख्याति की इस कलानेत्री ने कथक केंद्र (दिल्ली) के गुरु और निर्देशक के पद को सुशोभित किया है। अपनी संस्था संगीत गंगा के माध्यम से ये आज भी संगीत के विकास में जुटी हुई हैं। इनके सुपुत्र विशाल नागर बहुत अच्छे ताबलिक हैं तो उज्जवल नागर गायक।

पं. कुंदन लाल गंगानी के सुपुत्र और शिष्य गुरु राजेंद्र कुमार गंगानी की गणना न केवल दिल्ली अपितु देश के प्रमुख कथक नर्त्तकों में होती है। नृत्य के साथ-साथ तबला, पखावज वादन और गायन तथा संगीत निर्देशन के क्षेत्र में भी दखल रखने वाले राजेंद्र गंगानी 1985 से कथक केंद्र में गुरु पद पर कार्यरत रहे। इन्होंने राजस्थानी भाषा के अनेक गीतों पर भी कथक नृत्य प्रस्तुत किया है। दुनिया के अनेक देशों में नृत्य प्रदर्शन कर चुके राजेंद्र गंगानी ने अनादि, अनंत, लय आंगिकम, नृत्य रूपा, लीला वर्णन, निवंदी, राग विस्तार, सरगम, सृजन, कलाकृति, महारास और परिक्रमा आदि जैसी कई नृत्य संरचनाओं को रचकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। भरतनाट्यम्, कुचिपुड़ी और मोहिनी अट्टम आदि जैसी

भारतीय नृत्य शैलियों के अलावा फ्लैमिंको एवं स्पेनिश क्लासिकल डांस के साथ भी युगल नृत्य प्रस्तुत कर चुके गुरु राजेंद्र गंगानी को संगीत राज, शास्त्रीय नाट्य शिरोमणि, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित कई मान-सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। इनके छोटे भाई हरीश गंगानी भी सुविख्यात कथक नर्त्तक हैं।

विदुषी प्रेरणा श्रीमाली ने कथक नृत्य की शिक्षा गुरु गौरी शंकर और गुरु कुंदन लाल गंगानी से प्राप्त की है। नई साहित्यिक कविताओं व राजस्थानी गीतों आदि पर कथक शैली में नृत्य प्रस्तुत कर इन्होंने जयपुर घराने को एक नयी दिशा देने का सफल प्रयास किया है। गायन और पखावज वादन की भी शिक्षा प्राप्त कर चुकीं प्रेरणा बहुत ही अच्छी नृत्य संरचनाकार भी हैं। मीरा बाई पर आधारित- दूसरो न कोई, आवर्त्तन, विस्तार, विवृति और आरती जैसी कई नृत्य संरचनाओं का निर्देशन कर चुकीं प्रेरणा श्रीमाली ने दूरदर्शन के लिये बनी फिल्म- पथराई आँखों के सपने- में नायिका की भूमिका अभिनीत की है। 'कथक एंड एब्सट्रेक्शन ? विषय पर शोध कार्य के लिये इन्हें भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय से वरिष्ठ अध्येतावृति भी मिल चुकी है। दिल्ली के गंधर्व महाविद्यालय, श्रीराम भारतीय कलाकेंद्र, कथक केंद्र और त्रिवेणी कला संगम में कथक नृत्य की शिक्षा दे चुकीं प्रेरणा श्रीमाली को श्रृंगार मणि, कलाश्री, युवा रत्न, राजस्थान युवा रत्न, श्रीकांत वर्मा राष्ट्रीय पुरस्कार, प्रशस्ति ताम्र पत्र, आधारशिला पुरस्कार, राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, रज़ा पुरस्कार, केशव स्मृति सम्मान, विमला देवी सम्मान, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान जैसे कई अन्य मान-सम्मान भी मिल चुके हैं।

पद्मभूषण उमा शर्मा लखनऊ और जयपुर दोनों ही शैलियों की निष्पात् नृत्यांगना हैं। गुरु गिरवर दयाल, गुरु हीरा लाल, गुरु सुंदर प्रसाद और पं. शंभू महाराज की यशस्वी शिष्या उमा शर्मा ने रास लीला और कथक नृत्य के आंतरिक संबंधी पर शोधकार्य करके दोनों को निकट लाने का कार्य किया। इन्होंने अनेक मशहूर शायरों और कवियों की ग़ज़लों, कविताओं और नज़्मों पर नृत्य करते हुए कथक में एक नया अध्याय जोड़ा है। भारतीय संगीत सदन नामक एक संस्था का गठन करके ये कथक की नयी पीढ़ी को प्रशिक्षित करने का भी काम कर रही हैं, और उच्चस्तरीय संगीत समारोह का आयोजन भी। अखिल भारतीय विक्रम परिषद् (काशी) द्वारा प्रदत्त सृजन मनीषी सम्मान, दिल्ली सरकार का साहित्य कला परिषद् सम्मान, भारत सरकार के केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान, पद्मश्री और पद्मभूषण के अलंकरणों से अलंकृत विदुषी उमा शर्मा आज भी अपने सृजनकर्म में जुटी हुई हैं।

विदुषी शोवना नारायण आज के युवाओं के लिये एक आदर्श और प्रेरणास्त्रोत हैं। अंतरराष्ट्रीय ख्याति की कथक नृत्यांगना होने के साथ-साथ लेखा सेवा के एक वरिष्ठ पदाधिकारी के रूप में भी इन्होंने कार्य किया है। 1950 में जन्मी शोवनाजी ने विदुषी साधना बोस, गुरु कुंदनलाल सिसोदिया और पं. बिरजू महाराज से कथक नृत्य की शिक्षा प्राप्त की है। एक नृत्यांगना, नृत्य संरचनाकार और नृत्य निर्देशिका के रूप में शोवनाजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। वेस्टर्न क्लासिकल वैले, स्पेनिश फ्लैमिंको, टैप डांस, बौद्ध, भिक्षुओं के साथ बौद्ध मंत्रों पर और पाश्चात्य शास्त्रीय संगीतकारों के साथ-शोवनाजी ने खूब काम किया है- राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय मंचों पर। ये 1994 में 'द डॉन आफ्टर' में वेस्टर्न क्लासिकल डांस, स्पैनिश फ्लैमिंको डांस और भारतीय कथक नृत्य-की तीन में से एक क्रियेटिव डायरेक्टर भी थीं। मैथिली शरण गुप्त, रूमी और विद्यापति आदि की कविताओं को अपने नृत्य के माध्यम से जीवंत कर चुकीं शोवनाजी अच्छी चिंतक और विचारक भी हैं, जिसका परिचय उनके अनेक शोधालेख और 8 प्रकाशित पुस्तकें इंडियन क्लासिकल डांसेज, परफार्मिंग आर्ट्स इन इंडिया ए पॉलिशी पर्सपैक्टिव, इंडियन थियेटर एंड डांस ट्रेडिशन, रिद्मिक एकोस एंड रिफ्लेक्शंस कथक, डांस लेगेसी ऑफ पाटलीपुत्रा, फोक डांस ट्रेडिशन्स ऑफ इंडिया मेन्ड्रिंना पॉश्चर्स ऑफ मेमोरीज, कृष्णा इन परफार्मिंग आर्ट्स तथा कथक विजडम-देती हैं। साहित्य कला परिषद् सम्मान, दादा भाई नौरोजी सम्मान, राष्ट्रीय एकता सम्मान, भारत निर्माण सम्मान, रोटरी इंटरनेशनल अवार्ड, श्रृंगार शिरोमणि सम्मान, राजधानी रत्न सम्मान, इंदिरा प्रियदर्शिनी सम्मान, विहार गौरव पुरस्कार, राजीव स्मृति पुरस्कार और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान तथा पद्मश्री के अलंकरण से अलंकृत विदुषी शोवना नारायण की कला यात्रा आज भी जारी है।

7 दिसंबर 1943 मो जन्में गुरु मुन्ना शुक्ला पं. अच्छन महाराज के नाती तथा पं. बिरजू महाराज के भान्जे और शिष्य हैं। 1976 से सन् 2000 तक इन्होंने दिल्ली कथक केंद्र में शिक्षा दी। अवकाश प्राप्त के बाद ये दिल्ली में ही रह रहे हैं। इनकी प्रमुख नृत्य संरचनाओं, नृत्य नाटिकाओं में नाटक, कथक प्रसंग, अन्वेषा, क्रौंचवध, त्रियाप्तिका, धेनु स्त्रोत, श्रावण श्याम, चतुरंग, अंगमुक्तिका, रागान्विता, गोवर्धन लीला, ताल माला, ताल चक्र, हिमराजा, राजपूत रमणी, शाही मेहफिल, हिंडोला, होली, तराना,

कथक की कहानी, कालिया दमन, माखन लीला, बंशी लीला, श्याम बांसुरिया, कथकायन और बहार आदि विशेष उल्लेखनीय है। उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार, सुरसिंगार संसद्र का शारंगदेव समान (मुंबई), साहित्य कला परिषद् सम्मान (दिल्ली) तथा केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान से सम्मानित गुरु मुन्ना शुक्ला ने प्राचीन कलाकेंद्र (चंडीगढ़) निर्मित ऑपेरा-अमीर खुसरो, का तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (दिल्ली) द्वारा निर्मित इंदर सभा तथा अजीजुनिसा का भी सफल निर्देशन किया था। इनके छोटे भाई सतीश शुक्ला, सुपुत्री श्रुति शुक्ला और सुपुत्र अनिरुद्ध शुक्ला भी संगीत कला से जुड़े हुए हैं। इनके शिष्यों में प्रमुख हैं- नीलिमा अजीम, अलकनंदा, श्रुति सिन्हा, कविता ठाकुर और राखी अग्रवाल। गुरु हीरालाल, पं. सुंदर प्रसाद, पं. देवीलाल और पं. दुर्गालाल की शिष्या नंदनी सिंह को पं. देवीलाल और पं. दुर्गालाल के साथ युगल नृत्य करने का भी सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। संस्कृति मंत्रालय से परनो पर शोधकार्य हेतु फैलोशिप प्राप्त कर चुकी नंदनी सिंह को चिरागे नव, राजस्थान रंगमंच अवार्ड, आउटस्टैंडिंग वुमेन ऑफ द इयर, अभिव्यक्ति कला संगम सम्मान, राजा राममोहन राय फाउंडेशन सम्मान, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक सम्मान और पं. दुर्गालाल सम्मान जैसे कई मान-सम्मान मिल चुके हैं। श्रीराम भारतीय कलाकेंद्र एवं कथक केंद्र में गुरु पद पर कार्य करते हुए इन्होंने कई शिष्यों को तैयार किया है।

दिल्ली में बनारस घराने के जानकी प्रसाद परंपरा की नींव डालने वाले महाराज कृष्ण कुमार के वरिष्ठ शिष्य गुरु जितेंद्र महाराज ने अनेक देवालयों और इबादतगाहों में कथक नृत्य की प्रस्तुति करके साम्प्रदायिक सौहार्द बढ़ाने का कार्य किया है। 1970 में संगीतिका नामक एक संस्था का गठन करके ये संगीत-नृत्य के विकास में जुटे हुए हैं। इनके नृत्य में श्लोक, वंदना और ध्रुवपद आदि की प्रधानता होती है। दिल्ली दूरदर्शन के लिये निर्मित इनकी नृत्य संरचनायें रुद्राष्टकम् तथा कला और वासना काफी लोकप्रिय हुई हैं। दुनिया के अनेक मंचों को अपने घुंघरूओं से झंकृत कर चुके गुरु जितेंन्द्र महाराज को उत्तर प्रदेश संगीत नाटक पुरस्कार, इंदिरा प्रियदर्शिनी सम्मान, सुर सिंगार संसद का नृत्य शिरोमणि सम्मान और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित कई मान-सम्मान मिल चुके हैं।

कथक नृत्य में महिला नर्त्तकियों की एकमात्र जोड़ी- नलिनी और कमलिनी-गुरु जितेंद्र महाराज की वरिष्ठ शिष्यायें हैं। नृत्य में सात्विकता की पक्षधर और धार्मिक, पौराणिक विषयों पर ही अधिकांशत: प्रस्तुति देने वाली इन दोनों बहनों ने मीरा, यशोधरा, वैदेही वनवास, रुद्रावतार, अखंड सौभाग्यवती शक्ति स्वरूप तथा कला और वासना आदि नृत्य नाटिकाओं का संयोजन अपने गुरु जितेंद्र महाराज के साथ मिलकर किया है और इस समय उन्हीं के साथ मिलकर संगीतिका संस्था के माध्यम से कला के प्रचार-प्रसार में जुटी हुई हैं।

पं. तीर्थराम आजाद का जन्म 13 दिसंबर 1933 को लायलपुर (अब पाकिस्तान में) हुआ था। देश के विभाजन के बाद ये दिल्ली आ गये थे। इन्होंने जयपुर घराने के वरिष्ठ गुरुओं पं. हनुमान प्रसाद, पं. गिरिराजजी, पं. नारायण प्रसाद, और पं. चिरंजीलाल सहित बनारस घराने के महाराज कृष्ण कुमार से कथक नृत्य, तलवंडी घराने के उस्ताद मेहर अली से गायन की तथा मास्टर वंदे खाँ और ओ.पी. तरुण से थियेटर की शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने 1958 से 1988 तक दिल्ली के गांधर्व महाविद्यालय में कथक नृत्य की शिक्षा प्रदान की थी। कत्थक प्रवेशिका, कत्थक श्रृंगार, कत्थक दर्पण एवं कत्थक ज्ञानेश्वरी जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक आजादजी को नृत्य शिरोमणि, नृत्य सम्राट, नृत्य रूनाकर एवं केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी जैसे कई मान-सम्मान मिले थे।

लखनऊ घराने के महान् नृत्याचार्यों पं. शंभू महाराज और पं. बिरजू महाराज के स्थायी रूप से दिल्ली में ही बस जाने से यह कहना गलत नहीं होगा कि देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद- लखनऊ शैली के कथक नृत्य का जितना प्रचार-प्रसार दिल्ली में हुआ- उतना-लखनऊ में भी नहीं हुआ। शंभू महाराज के शिष्य परंपरा के साथ-साथ वंश परंपरा भी दिल्ली में ही विकसित हुई।

पं. शंभू महाराज के ज्येष्ठ पुत्र पं. कृष्ण मोहन मिश्रा ने नृत्य की आरंभिक शिक्षा अपने पिता से लेने के बाद आगे की शिक्षा अपने चचेरे भाई पं. बिरजू महाराज से भी ली। अपने उच्चस्तरीय प्रदर्शन के लिए प्रयाग संगीत समिति (प्रयागराज) द्वारा स्वर्ण पदक प्राप्त कर चुके, दूरदर्शन के सर्वोच्च श्रेणी के अनुमोदित नर्त्तक, बिरजू महाराज की अनेक नृत्य संरचनाओं और नृत्य नाटिकाओं में महत्वपूर्ण तथा नायक की भूमिका निभा चुके कृष्ण मोहन मिश्र ने दशकों तक दिल्ली कथक केंद्र में अध्यापन कार्य किया है।

इनकी पत्नी वास्वती मिश्रा भी श्रेष्ठ नृत्यांगना हैं। विदुषी रेबा विद्यार्थी और रेवा विद्यार्थी की शिष्या वास्वती मिश्रा 1969 में 10 वर्ष की उम्र में एक नृत्यांगना के रूप में मंच पर आ गई थीं और 14 वर्ष की उम्र में ही पं. बिरजू महाराज के नृत्य नाटिका की नायिका बन गई थीं। एक अच्छी नृत्यांगना, नृत्य निर्देशिका और गुरु के रूप

में वास्वती मिश्रा ने अपना राष्ट्रव्यापी परिचय दिया है। कई वर्षों तक श्रीराम भारतीय कलाकेंद्र में कथक नृत्य का प्रशिक्षण देने के बाद इन दिनों अपनी संस्था ध्वनि के माध्यम से कथक नृत्य का प्रचार-प्रसार कर रही हैं। वर्षा ऋतु, आलापिनी, अंतर्हिततत्वम्, द लास्ट लीफ, आकार, बंदिश, महादेव और कृष्णावतार तथा शाम-ए-मुगल जैसी इनकी नृत्य संरचनाओं और नृत्य नाटिकाओं ने इन्हें नृत्य निर्देशकों की प्रथम पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

पं. शंभू महाराज के कनिष्ठ पुत्र पं. राम मोहन भी सर्वोच्च श्रेणी के नर्त्तक हैं। कथक केंद्र (दिल्ली) और श्रीराम भारतीय कलाकेंद्र में गुरु पद को सुशोभित कर चुके राम मोहन इस समय अपनी संस्था- आंगिकम् डांस एंड म्यूजिक इंस्टीट्यूट (दिल्ली) के माध्यम से कथकार्थियों को प्रशिक्षित कर रहे हैं। इंदिरा गाँधी प्रियदर्शिनी सम्मान, आरचाप एक्सीलेंस अवार्ड, नेशनल सिटिजन अवार्ड एवं जैन-शॉव इंडियन अवार्ड जैसे कई मान-सम्मान प्राप्त कर चुके राम मोहन महाराज ने कथक नृत्य की शिक्षा अपने पिता पं. शंभू महाराज और चचेरे भाई पं. बिरजू महाराज से प्राप्त की है।

विदुषी शारश्वती सेन ने कथक नृत्य की आरंभिक शिक्षा विदुषी रेबा विद्यार्थी से प्राप्त करने के बाद शेष शिक्षा पं. बिरजू महाराज से प्राप्त की और उनकी अतिप्रिय शिष्या बन गईं। भारत-रत्न सत्यजीत रे की मशहूर फिल्म शतरंज के खिलाड़ी में नृत्य प्रदर्शन कर चुकीं शाश्वती जी पं. बिरजू महाराज जी की अधिकांश नृत्य नाटिकाओं से नायिका और सहायिका के रूप में भी जुड़ी रही हैं। इनके द्वारा निर्मित और निर्देशित नृत्य संरचनायें दरबार, आदाब, सूर्य प्रणाम, मेहफिल और नियति नायिका तथा नृत्य नाटिकायें कथक यात्रा, दशावतार, कार्त्तिक विलास, श्रुदिता पाषाण, रोमियो एंड जूलियट, वर्ण रंग, मुसाफिर, गीत गोविंद, जल यज्ञ, कृष्ण कथा और हब्बा खातून आदि विशेष रूप से प्रशंसित हुई हैं। क्रिटिक्स रिकमंडेशन अवार्ड, श्रृंगार मणि, संस्कृति सम्मान और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित कई मान-सम्मान प्राप्त कर चुकी शाश्वती सेन जी इस समय अपने गुरु पं. बिरजू महाराज जी के सपने, कला आश्रम संस्था को विकसित करने में जुटी हुई हैं।

पं. बिरजू महाराज के शिष्य अभय शंकर मिश्र अपनी पत्नी काकोली शंकर मिश्र के साथ मिलकर विश्व व्यापी प्रचार-प्रसार कर रहे हैं कथक का अपनी संस्था शंकरा डांस अकादमी के माध्यम से- जिसकी शाखायें देश के कई भागों में हैं। अभय शंकर मिश्र, उनकी पत्नी काकोली और पुत्र अभिनव सभी अच्छे नर्त्तक हैं। अभय तो अंतरराष्ट्रीय स्तर के नर्त्तक हैं। इनके शिष्य दुनिया के अनेक देशों में फैले हुए हैं। एक अच्छे नर्त्तक, गुरु, संरचनाकार और नृत्य निर्देशक के रूप में अभय अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। इन्होंने कथक नृत्य पर शोधकार्य भी किया है।

रक्षा सिंह युवा और प्रतिभाशाली कथक नृत्यांगना है। एक कुशल नृत्यांगना , गुरु और नृत्यनिर्देशिका के रूप में देश के प्रतिष्ठित मंचों पर सक्रिय हैं, ये कथक नृत्य के संगीत और साहित्य विषय पर शोध कार्य कर चुकीं रक्षा सिंह अपनी संस्था नृत्यम् कला संगम के माध्यम से कथक की कला को गति दे रही हैं। रक्षा सिंह और जयकिशन महाराज की शिष्या अस्मिता मिश्रा भी दिल्ली की सक्रिय नृत्यांगना हैं। एक नर्त्तकी शिक्षिका और नृत्य निर्देशिका के रूप में ये देश के प्रतिष्ठित मंचों पर सक्रिय हैं। इसी तरह अलकनंदा अपनी संस्था-अलकनंद इंस्टीट्यूट ऑफ परफार्मिंग आर्ट्स के माध्यम से तो श्रुति सिन्हा अपनी संस्था श्रुति डांस एकेडमी के माध्यम से दिल्ली में कथक को विकसित कर रही हैं। रानी खानम शिखा खरे, मऊमाला नायक, मोनिशा नायक, स्वाती सिन्हा और नयनिका घोष चौधरी भी दिल्ली में रहकर अपने-अपने स्तर पर कथक नृत्य को विकसित कर रही हैं।

विदुषी कुमुदिनी लाखिया और पं. बिरजू महाराज की शिष्या अदिति मंगलदास कथक नृत्य के क्षेत्र में अपनी प्रयोगधर्मिता के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ये अपने नृत्य के लिये नये-नये विषय भी उठाती हैं। इनकी महत्वपूर्ण रचनाओं में- द लास्ट साउंड ऑफ यूनिवर्स, चीख, वृंदा कृति, स्वगत, विस्तार तथा फुट प्रिंट्स ऑन वाटर काफी चर्चित हुई हैं। गुजरात संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और केंद्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान जैसे कई मान-सम्मान पा चुकीं अदिति अपनी दो संस्थाओं दृष्टिकोण डांस फाउंडेशन और अदिति मंगलदास डांस कंपनी के माध्यम से दिल्ली के कथक जगत में सक्रिय हैं।

पं. बिरजू महाराज के ज्येष्ठ पुत्र पं. जयकिशन महाराज सुप्रसिद्ध, नर्त्तक, नृत्य निर्देशक एवं गुरु होने के साथ-साथ अच्छे गायक और तबला-परवाज वादक भी हैं। कथक केंद्र दिल्ली में गुरु पद पर कार्य करते हुए इन्होंने नृत्य नाटिका आकांक्षा, साधुवासवानी और पंचभूत का संगीत निर्देशन किया है। डॉक्यूमेंट आयुर्वेद सारथी, गढ़वाली फिल्म डगरिया तथा यश चोपड़ा की प्रसिद्ध फिल्म दिल तो पागल है- का नृत्य निर्देशन कर चुके जयकिशन श्रीराम भारतीय कलाकेंद्र की प्रस्तुति मेरा भारत महान् और हरिहर के लिये तथा फेमिना के लिये ओम शांति और आकार का संगीत निर्देशन भी किया है। पं. बिरजू महाराज निर्मित अनेक नृत्य

नाटिकाओं में महत्वपूर्ण भूमिकायें निभा चुके जयकिशन ने मीरा और राधा को लेकर मीराधा नामक एक नृत्य संरचना तैयार की है, जो काफी प्रशंसित हुई है। इनकी पत्नी रूबी मिश्रा एवं पुत्र त्रिभुवन महाराज कुशल कथक नर्त्तक हैं तो पुत्र वधू रजनी अधिकारी भरतनाट्यम् नृत्यांगना। ये सभी लोग मिलकर 'बिरजू महाराज परंपरा' नामक एक संस्था चला रहे हैं।

पं. बिरजू महाराज की पुत्री ममता महाराज एवं कनिष्ठ पुत्र दीपक महाराज भी कथक के क्षेत्र में अपनी अच्छी पहचान बना चुके हैं। दीपक की दोनों पुत्रियां रागिनी और यशस्विनी भी तेजी से आगे बढ़ रही हैं कथक नृत्य के क्षेत्र में। बिरजू महाराज की एक अन्य पुत्री अनीता कुलकर्णी की पुत्री शिंजनी कुलकर्णी भी अच्छी कथक नृत्यांगना हैं।

दिल्ली न केवल देश की राजधानी है, बल्कि यह कलाओं की भी राजधानी है। देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद जब कथक नृत्य वातानुकूलीत प्रेक्षागृहों के भव्य मंचों पर प्रस्तुत किया जाने लगा तो उसमें सौंदर्यात्मक तत्वों का भी विकास होने लगा। वस्त्र-विन्यास और रूप सज्जा और विशेष ध्यान दिया जाने लगा। कभी एक तबला और एक सारंगी की संगति में प्रस्तुत किये जाने वाले कथक नृत्य में अब 4 से 6 संगतिकार तो होते ही हैं। अच्छे ध्वनि विस्तारक यंत्रों की भी व्यवस्था होने लगी, तो विशेष प्रकार की अत्याधुनिक प्रकाश व्यवस्था को भी वरीयता दी जाने लगी है। लाइट डिजाइनर को अलग से आमंत्रित किया जाने लगा, उन्हें अलग से पारिश्रमिक दिया जाने लगा, निमंत्रण पत्र में उनका नाम प्रकाशित होने लगा और अब तो उन्हें मान-सम्मान और अलंकरण भी मिलने लगे हैं। कथक अपने आरम्भिक दौर में एक खुला नृत्य था। नर्त्तक और ताबलिक सीधे मंच पर मिलते थे और मंच पर जोर आजमाईश होती थी कि कौन कितने पानी में हैं? लेकिन अब एकल नृत्य भी नृत्य संरचना के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, सब कुछ रटारटाया, पूर्व निर्धारित। 1970 के दशक तक संगीत समारोहों के म्यूजिक कान्फ्रेंस शब्द का प्रयोग होता था, लेकिन 1980 के दशक से ऐसे आयोजनों के लिये संगीत समारोह और म्यूजिक फेस्टिवल जैसे शब्द धीरे-धीरे व्यवहृत होने लगे। विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य नृत्यों के साथ इसकी सफल जुगलबंदियां प्रस्तुत करने के लिये इसका विस्तार किया गया। दिल्ली में प्रचलित कथक नृत्य की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ के अधिकांश नर्त्तकों ने अपने नृत्य में सौंदर्यपरक तत्वों पर विशेष ध्यान दिया- घराना चाहे जो भी हो- परिणामस्वरूप कथक नृत्य न जानने वालों का रुझान भी इस नृत्य की ओर बढ़ा और कथक नृत्य के प्रचार-प्रसार को गति मिली। एक प्रश्न सहज ही उठता है कि दिल्ली में कथक नृत्य को जब इतना प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला, और उसका एक नया स्वरूप भी विकसित हुआ तो फिर इसे एक नये घराने का नाम क्यों नहीं मिला? दिल्ली में कथक नृत्य को विकसित करने में लखनऊ और जयपुर घराने के कलाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन, इन दोनों ही परंपरा के नर्त्तकों को अपने घराने का नाम बदलना स्वीकार नहीं था और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि महत्व कथक नृत्य के विकास का है, नये घराने के नामकरण का नहीं।

- लेखक-वरिष्ठ संगीतकार, कला समीक्षक, मिश्रा संगीत अकादमी है।
के-1/243, न्यू पालम विहार, फेस-1, सेक्टर 110, गुरूग्राम-122017
मो. 9810517945

बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र

लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रकाशन वर्ष : 2021

मूल्य : 1200/-

प्रकाशक : आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद् का प्रकाशन
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय,
श्यामला, हिल्स, भोपाल, म.प्र. (भारत)
फोन : 0755- 2661640, 2661948

आलेख

आजादी की अमृत जयंती पर लोककलाओं का अमृत मंथन

डॉ. महेन्द्र भानावत

इसे मैं अपना अहोभाग्य-सौभाग्य ही मानता हूं कि भारतीय आजादी के पूर्व काल का साक्षी बन तब से अब तक की लोककलाओं के दिशा-दर्शन का अमृत-मंथन करने का यत्किंचित उत्साहजनित उल्लसित प्रयास कर रहा हूं।

मेरा जन्म 1937 में उदयपुर जिले के एक छोटे से गांव कानोड़ में हुआ। यह गांव सामंतीकाल का एक प्रमुख ठिकाना रहा जो प्रारंभ से ही बड़ा जोशीला, जागरूक तथा जलतेदीप रहा। संस्कार-पौरूष की बात कहूं तो मेरी मां डेलूबाई परम्परानिष्ठ होती हुई भी दकियानुसी नहीं थी। मैंने उसका वैधव्य देखा। घोर गरीबी का आलम भोगा। वह सारे त्यौहार-उत्सवी-अनुष्ठानों की सबरंग ओढन्-पहनन, खानन-पानन, गायन-नरतन तथा रंजन-मंडन कला में माहिर थीं।

विधिवत इलाज की कोई सुविधा नहीं होने से पिताजी तो बुखार की अडक़ इलाजी में ही चल बसे। उसी छुटपन में मुझे भी एक धूजणी बुखार-ताव आ लगा। दो-तीने गोदड़े ओढने पर भी उसकी कटकटी-कंपकंपी ने सबके होश खट्टे कर दिये तब विधवाओं की उस पिरोळ में पांच विधवाएं और इकट्ठी हो गईं। बोलीं- 'रावले में राई नाच रही है। इसे नार के नीचे निकाला जाय तो देवी नारसिंघी इस पर मेहर हो सब ठीकठाक कर देगी।'

यही हुआ। रावले चौक में एक हट्टाकट्टा नार अपनी डरावनी हूंकार दिये पूरे वातावरण को कंपित किये जा रहा था। मुझे उसके पांव तले निकाला गया और मेरा ताव गर्म तवे पर की बूंद की भांति जाता रहा। वैसा पूरे शरीर पर असली शेर-सा टिपकेवाला नाहर-शेर मैंने फिर कभी नहीं देखा। उसके बाद देवी नारसिंघी की सचमुच की किरपा से मुझे फिर बुखार का कभी खार नहीं लगा।

बुखार के माध्यम से वह राई-गवरी का बीजारोपण मुझ में ऐसा संस्कारित हुआ कि आगे जाकर मैंने उसी को अपनी शोध का विषय बनाया और उदयपुर विश्वविद्यालय का प्रथम पीएच.डी. धारी छात्र बना। परीक्षकों की नगाहों में तो वह विषय ही बड़ा बेतुका अजीब रहा पर उसका लाभ यह रहा कि हजार कोशिशों के बावजूद आदिवासी भीलों का यह नृत्यानुष्ठान जीवित रहते लोकनाट्यों की उद्भव-कथा का बीजमंत्र ही बना हुआ है।

अपने गांव में मैंने आजादी की खुशी में चौथी से छठी कक्षा में प्रवेश पाया वहीं आजाद होने की आहट में प्रभातफेरी में भाग लेते 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा' गाते पुलिस की रौबदारी से थाने में बंद होने की भरपाई भी झेली। उस गांव में तेरह स्वतंत्रता सेनानियों का प्रभाव यह रहा कि मेरे जैसे छात्र भी खद्दर का पजामा कुरता और टोपी पहनने लगे।

यह सब हुआ पर असल में लोककला से मेरी संगती 1958 में हुई जब मैं बी.ए. पास कर नौकरी की तलाश में भारतीय लोककला मण्डल पहुंचा जहां देवीलाल सामर ने अपने परिवेश और वहां के रंग-ढंग से मुझे लोकरंगी बना दिया।

सच तो यह है कि भारतीय लोककलाओं को अपने देश में और फिर विश्व में प्रतिष्ठित करने का जो कार्य देवीलाल सामर ने कलामंडल में किया वह इतिहास-रचना का महत्वपूर्ण अध्याय है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जब आजादी के सूर्य की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं, सामरजी ने लोककलाओं की जीवनधर्मी उपादेयता और सांस्कृतिक अनिवार्यता का बिगुल बजा दिया था। अपने एक छोटे से कलादल द्वारा 22 फरवरी 1952 को उन्होंने स्वतंत्र रूप से भारतीय लोककला मंडल की स्थापना कर पूरे देश में और फिर विदेश में घूमते वे भारतीय लोकनृत्यों, नृत्यनाट्यों और कठपुतलियों के प्रदर्शन देते रहे।

पहली बार उन्होंने राजस्थान के घूमर और भवाई, गुजरात के गरबा, डांडिया तथा आदिवासियों के घूमरा और गेर नृत्य को अपने अंचल से बाहर निकाला। पणिहारी, ढोलामारू, मूमल, रासधारी तथा म्हाने चाकर राखोजी नृत्य नाटिकाओं में सामरजी ने राजस्थान के लोकाख्यानों की पारंपरिक रंगधर्मिता को लेकर जो प्रस्तुतियां दीं उससे पूरा देश यहां की सांस्कृतिक महक से अभिभूत हो उठा। इनमें सामरजी के साथ दयाराम, तोलाराम तथा शकुंतला

जैसे कलाकारों की प्रमुख भूमिकाएं उन्हें कीर्ति के नित नए शिखर देती गईं।

यहीं पर मेरा सुयोग यह बना कि 1958 में लोककलाकारों के प्रशिक्षण शिविर में लोकानुरंजन की ख्याल, स्वांग, लीला आदि विधाओं में प्रदर्शन देनेवाले कलाकारों से लेकर फिर पूरे राजस्थान और मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, गुजरात तथा तमिलनाडु जैसे प्रांतों में घूमफिरकर भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों तथा देवदर्शनों के माध्यम से जो दृश्य-अदृश्य देखा, सुना, समझा उससे मैं भारत और भारतीयता की पुरातन वैभवजनित स्मृद्धि को आंकते अपने अंक में समायोजित कर सका। सर्वाधिक लेखन कर सामरजी की लिखी अनेक पुस्तकें लोकसंस्कृति की वाहक बनीं।

विविध विधाओं के कलाकारों के प्रशिक्षण का संयोजक होने का मुझे यह लाभ मिला कि मैं पूरे दो माह उदयपुर के समीपस्थ बेदला ठिकाने के रावजी के महलों में कलाकारों से रू-ब-रू होता लोकरंजनकारी प्रस्तुतियों से आत्माराम होता रहा। इन संगोष्ठियों में कपिला वात्स्यायन, जगदीशचन्द्र माथुर, डॉ. सत्येन्द्र, कोमल कोठारी, विजय वर्मा, पुष्कर चन्दरवाकर जैसे ख्यातलब्ध लोकवेत्ताओं की भागीदारी उल्लेखनीय रही। जगदीशचन्द्र माथुर ने तो मेरे द्वारा किये गये कार्य को देख लिखा भी- 'सामरजी का नेतृत्व, स्नेह, सौहार्द पाकर डॉ. भानावत उनके सहकर्मी के रूप में इस पुण्य यज्ञ के ऋत्विक हैं' और ओंकारश्री ने कहा- 'अनाम लोककलाकर्मियों के कृत कार्यों पर जो कार्यान्वेष डॉ. भानावत कर रहे हैं वह राजस्थान की गौरवमयी सांस्कृतिक परम्परा का मंगलार्चन है।'

इस शिविर की देशव्यापी धूमधाम और आशातीत सफलता देख कलामण्डल ने अखिल भारतीय कठपुतली समारोह (1959 तथा 1964), अखिल भारतीय लोककला संगोष्ठी (1972 तथा 1978), राजस्थान बाल कठपुतली समारोह (1976 तथा 1977) तथा कला मण्डल की रजत जयंती पर लोकानुरंजन मेला (1978) आयोजित किया। मुम्बई में रंगीला राजस्थान समारोह (1960) किया गया। उदयपुर में गणतंत्र दिवस (1967) पर पहले 600 और फिर 1200 बालिकाओं द्वारा घूमर नृत्य के प्रदर्शन सर्वाधिक सराहे गये।

ऐसा ही प्रयोग पारंपरिक धागा पुतलियों में 'अमरसिंह राठौड़' की नव्य-भव्य नाटिका में किया जिसने बुखारेस्ट में 1965 में आयोजित तृतीय अंतर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में विश्व का प्रथम पुरस्कार दिलाया। इसका लोकाधार नागोर के जीजोट गांव के नाथू भाट का कठपुतली खेल था जो पहलीबार राजस्थान विकास विभाग के सहयोग से कलामंडल द्वारा आयोजित लोककलाकार प्रशिक्षण शिविर में भागले लेने आया था। शिविर के सभी कलादलों में नाथू भाट का कठपुतली दल अकेला था जिसे शिविर समाप्ति पर कलामंडल में रख उसकी मंचन पद्धति आदि का अध्ययन कर पहलीबार मैंने 'अमरसिंह राठौड़' खेल को लिपिबद्ध कर जगजाहिर किया।

इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने पारम्परिक कलाओं के महत्व को समझा। कई अज्ञात कला-विधाएं पुनर्प्रतिष्ठित हुईं। अल्पज्ञात को पुनर्जीवन मिला और कलाकारों ने यह समझा कि उनके घरों में जो परम्परागत कलाएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित होती आई हैं वे महत्वपूर्ण तथा मूल्यवान हैं। उनकी चमक फीकी नहीं होने देनी है। वे हेय नहीं, गेय हैं। लुप्त, गुप्त तथा समाधि देने वाली नहीं अपितु दर्शनीय एवं प्रदर्शनीय हैं।

ऐसी कलाएं लोकधर्मी हैं अत: जीवनधारा की प्रबल आधार तथा हमारी अन्तश्चेतना की संजीवनी हैं। इसलिए राजस्थान को लोककलाओं का अलमबरदार कहा गया है। लोककलाओं की सर्वाधिक विविधता तथा उनमें निहित जीवनरसता भी यहीं मिलती है। यहां के लोकरंगी वैभव, परम्पराशील रंगदर्शन और उल्लसित होते जन-मन-रंजन के अप्रतिम उमाव, अद्भुत आनन्द तथा अकूत उत्साह को देखकर ही पं. जवाहरलाल नेहरू ने इसे 'रंगों का प्रदेश' कहा।

इस दृष्टि से पूरे देश में राजस्थान ही वह पहला प्रांत है जिसने सर्वप्रथम लोककलाओं के महत्व को समझा। उनके उन्नयन का बीड़ा उठाया। उनके विकास और प्रचार-प्रसार का जिम्मा लिया। लोक कलाकारों की सुध ली। उन्हें सम्मानजनक प्रदर्शन-मंच दिया। उनकी कला को प्रोत्साहन दिया। उनकी पहचान बनाई। विशिष्ट प्रतिष्ठा और राजकीय सम्मान मिला। लोककलाओं का सर्वेक्षण, अध्ययन, लेखन, प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ। लोककला संस्थाएं शुरू हुईं। लोककला विषयक पत्र-पत्रिकाएं निकाली गईं। विविध समारोह और संगोष्ठियों का आयोजन किया गया।

सर्वप्रथम खड़ताल वादक सिद्दीक को पद्मश्री मिलना और कोहिनूर बालक का खड़ताल नर्तक के रूप में सबकी आंखों का सितारा बनना अंधेरी गुप्प अनाम बस्तियों में यकायक रोशनी का रथ घुमाना है। भजन गायिका सोहनीदेवी की स्वर-लहरियों ने तो सिनेमा तक को प्रभावित किया। 'केसरिया बालम' गीत की अमर गायिका के रूप में पद्मश्री अल्लाजिलाईबाई का 'पधारो म्हारे देस'

गीत तो राजस्थान आमंत्रण का हेला ही बन गया। कालबेलिया नर्तकी गुलाबो के भाग्य का क्या कहना? उसकी लोकप्रियता के चलते जगह-जगह डुप्लीकेट गुलाबों से भी मेरा साक्षात्कार हुआ। बाड़मेर-जैसलमेर की ढाणियों में रहनेवाले अपने स्वर-सुरों से पूरे विश्व को चकित कर देने वाले लंगों मांगणियारों की ढाणियों में चालीस घंटों का रेकार्डिंग करने हमारे बाद कोई नहीं पहुंचा।

बसी की काष्ठकला हो या मोलेला की लोकदेवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्तिकला, बीकानेर की उस्ता कला हो या फिर प्रतापगढ़ की थेवा कला, आकोला, सांगानेर, बगरू की छपाई कला हो या जयपुर की जूतियां, बूंदी के लाख के चूड़े, अपनी पहचान बनाकर पूरे विश्व में राजस्थान को रौनक दे रहे हैं। गुदने, मेहंदी तथा माण्डनों की कला तो न जाने कितने ओर-छोर नाप चुकी है।

हमारे से प्रेरणा लेकर भीलवाड़ा में निहाल अजमेरा ने गैर समारोह शुरू किया तो कई गांवों की विविध गैर विधाएं जाग उठीं। होली त्यौहार की रंगीनियां बढने लगीं। खिलाडियों में जोश आया। ऐसा ही एक समारोह बाड़मेर के कनाना गांव में मगराज जैन ने प्रारम्भ किया। इनकी हवा भी विदेशों तक पहुंची। जैसलमेर में नन्दकिशोर शर्मा ने लोककला संग्रहालय प्रारम्भ किया जिससे उधर की लोकसमृद्ध धरोहर को संरक्षण मिला। संगीत नाटक अकादमी में अध्यक्ष रमेश बोराणा ने राजस्थानी लोकवाद्यों का अद्वितीय एवं अलभ्य संग्रहालय बनाकर वाद्यों की उम्दा पुस्तक का प्रकाशन किया।

डॉ. सत्येन्द्र, नानूराम संस्कर्ता, मूलचंद 'प्राणेश', सोहनदान चारण, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', डॉ. कन्हैयालाल सहल, डॉ. सोनाराम विश्नोई, डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, डॉ. महावीरप्रसाद दाधीच, डॉ. मनोहर शर्मा, रतन शाह, गोविन्द अग्रवाल, गींडाराम वर्मा, दीनदयाल ओझा, डॉ. कहानी भानावत, डॉ. कविता मेहता, डॉ. लक्ष्मी कमल, डॉ. नरेन्द्र भानावत, डॉ. रामप्रसाद दाधीच, डॉ. महिपालसिंह राठौड़, डॉ. शांता भानावत, अगरचंद नाहटा, रावत सारस्वत, सुधा राजहंस, नरोत्तमदास स्वामी, मोहनलाल पुरोहित, मालिनी काले, आईदानसिंह भाटी, डॉ. अर्जुनसिंह शेखावत, विजय वर्मा, विजयदान देथा, डॉ. नारायणसिंह भाटी, गणपत स्वामी, डॉ. गणपतिचंद भंडारी, डॉ. जयकृष्ण दुग्गड़ आदि अनेक व्यक्तियों ने लोकसाहित्य के विविध विषयों पर लिखा और शोधार्थियों का मार्गदर्शन किया।

जिन विषयों पर मैंने पहलीबार लिखा उन पर विविध विश्वविद्यालयों में अनेक छात्र-छात्राएं शोधकार्यकर रही हैं। विश्वविद्यालयों में लोककलाओं पर सेमीनार, संगोष्ठियां, समारोह शुरू हुए। पाठ्य पुस्तकों में इन्हें सम्मिलित किया गया। शोधकार्य प्रारम्भ हुए। नये-नये विषय ढूंढ़े जाने लगे। साहित्य के अलावा संगीत, इतिहास, गृहविज्ञान, समाजशास्त्र, चित्रकला जैसे विभाग भी लोकजीवन की धडक़नों और धमनियों की सुध लेने लगे। ऐसे पांच सौ से अधिक शोधप्रबंध और लघु-शोधप्रबंध तो राजस्थान में ही लिखे गये जो यहां के शत-सहस्त्र लोकरंगों का उकेरण प्रस्तुत करते हैं।

यहीं से लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति, मरु भारती, राजस्थान भारती, रंगयोग, रंगायन, वाणी-लोकसंस्कृति तथा बम्बई से सत्यप्रकाश जोशी के सम्पादन में हरावल नामक पत्रिकाएं निकाली गईं। लोककला विषयक प्रकाशनों की सूची तो दांतों तले उंगली दबाने जैसी है। दो सौ के ऊपर तो राजस्थानी लोकगीत की पोथियां ही मिल जायेंगी। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, कोमल कोठारी, विजयदान देथा जैसे सिद्ध लोककलाविद् इसी भूमि की देन हैं जो लोककलाओं की खनखनाती टकसाल बने हुए हैं।

लोककला संस्कृति को उजलास देने के लिए स्थापित पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र (उदयपुर) और जवाहर कला केन्द्र (जयपुर) हमारे गौरव स्तंभ हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा गोवा की कला-सांस्कृतिक पहचान बनाने पश्चिम केन्द्र सांस्कृतिक केन्द्र और उससे संबद्ध शिल्पग्राम में लगने वाले शिल्पी मेले की पहचान सबओर आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

राजस्थान के पर्यटन, कला एवं संस्कृति विभाग ने लोककला की सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण एवं यादगार बनाये रखने के लिए पारम्परिक मेलों के नवीनीकरण के साथ कुछ नये मेले-उत्सव प्रारम्भ किये। इनमें ऊंट उत्सव (बीकानेर), मरु उत्सव (जैसलमेर), हाथी उत्सव (जयपुर), मेवाड़ उत्सव (उदयपुर), मारवाड़ उत्सव (जोधपुर), दशहरा मेला (कोटा), पुष्कर मेला (अजमेर) आदि की शान निराली है। यही नहीं, पर्यटन विकास निगम द्वारा जगह-जगह जो डाकबंगले बनाये गए, उनके नाम भी बड़े कलात्मक, संस्कृतिनिष्ठ और आंचलिक किंवा स्थानीय सांस्कृतिक बोध के सूचक हैं।

इनमें गणगौर एवं तीज (जयपुर), कजरी (उदयपुर), गवरी (ऋषभदेव), मूमल तथा ढाणी (जैसलमेर), गोकुल (नाथद्वारा), खादिम (अजमेर), घूमर (जोधपुर), चंबल (कोटा), ढोलामारू (बीकानेर), कामधेनु एवं झूमर बावड़ी (सवाई माधोपुर), हवेली (फतहपुर), चंद्रावती (झालावाड़)

प्रमुख हैं। राज्य के सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'राजस्थान सुजस' तथा के.सी. मालू द्वारा प्रकाशित 'स्वर सरिता' में कला, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, पर्यटन, नीति, शिक्षा, राजनीति, समाज, धर्म, अध्यात्म आदि से संबंधित लबालब रंग-सामग्री सब ओर अपनी अनुपम ओळखाण दिये है। राज्य सरकार द्वारा संचालित साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी, ललित अकादमी तथा हिन्दी ग्रंथ अकादमी भी जीवंत परिवेशी कला-संस्कृति सम्बन्धी उन्नयन उत्कर्ष के लिए कर्मशील हैं।

अभी आजाद हुए को काफी समय नहीं हुआ है तो बहुत कुछ होने का सिलसिला समाप्त भी नहीं हुआ है। कई सारी चुनौतियां अपनी स्वयं की, अंदर की और बाहर की भी मुंह बांयें निरन्तर घोष दे रही हैं। जो कलाएं हमारे देखते-देखते मरी-अधमरी-सी हो गईं उनके अस्तित्व को बचाना है। टेलीविजन के विजन द्वारा लोककला-संस्कृति की हो रही पंगुता को रोकना है। सिनेमा के नाम दिखाये जा रहे पर्दे की विद्रूपता को ताजा और स्वच्छ दर्पण देना है। कुकुरमुत्ता की तरह पनप रही जयचंदों की खरपतवार को खड्ग दिखानी है और हरिचंद के सांचे मूल्यों तथा हंसों के पारदर्शी मोतियों को मुलक़ाना है। यह समय निष्कर्ष का नहीं, लगातार उत्कर्ष का है। सच तो यह है कि जो कुछ इस लोक में मैं गुन-धुन पाया उसकी धुनक की यदि किंचित मात्र भी कोई आहट ले पायेगा तो उसका लेखन देती मेरी शताधिक पुस्तकें साख भर सकेंगी।

– लेखक-वरिष्ठ लोक साहित्यकार है।
352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर-313001
मो. 9351609040

'कला समय' पत्रिका के सदस्यता शुल्क में वृद्धि की सूचना

प्रिय पाठकों,

द्वैमासिक 'कला समय' एक अव्यावसायिक कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक सांस्कृतिक पत्रिका है, जो विगत 25 वर्षों से अविकल रूप से कला/साहित्य जगत की सेवा कर रही है। आप इस तथ्य से परिचित हैं कि एक अव्यावसायिक कला-सांस्कृतिक पत्रिका निकालना बड़ा ही दुष्कर और श्रमसाध्य कार्य है। विगत कुछ वर्षों में मुद्रण, टंकण, कागज आदि की लागत में असामान्य बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में पत्रिका के नियमित प्रकाशन को आप तक पहुँचाने के लिए ग्राहक सदस्यता शुल्क में (जून-जुलाई 2021) अंक से वृद्धि करना अपरिहार्य हो गया है। सदस्यों से अनुरोध है कि अब वे अपना सदस्यता शुल्क निम्नानुसार भेजकर सहयोग करें। जिन आजीवन (15 वर्षीय) सदस्यों की सदस्यता अवधि के 15 वर्ष पूरे हो चुके हैं, उनसे अनुरोध है कि वे पुन: अपनी आजीवन सदस्यता का नवीनीकरण कराने हेतु 'कला समय' के पक्ष में आजीवन सदस्यता शुल्क भेज कर अनुगृहीत करें।

संशोधित सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)
		350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)
		700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)
		1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)
(15 वर्ष के लिए)	:	12,000 (संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

आलेख

स्वाधीनता संग्राम में अल्पज्ञात हिन्दी कवयित्रियों का योगदान

गोविन्द गुंजन

जिन दिनों गाँधीजी के नेतृत्व मे हमारा आजादी का आंदोलन अपने चरम पर था, उस दौर का आलम यह था कि इस देश की स्त्रियाँ पहली बार अपने घरों की देहरियों का अतिक्रमण कर सड़कों पर उतर आयी थी। उन्होनें पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर बराबरी से उस लड़ाई में हिस्सेदारी की, जो स्वदेशी स्वाभिमान की लड़ाई के साथ-साथ आत्म सम्मान की भी लड़ाई थी। इसलिए उस आंदोलन में शामिल होना हर भारतीय के लिए आत्म गौरव की बात थी। स्वाधीनता संग्राम सेनानी कहलाना समाज में गौरवशाली होना था। ये निहत्थे लोग अंग्रेजों के सशस्त्र बल से बहादुरी से टकराते थे और बंदूक का जवाब बंदगी से देना सीख गए थे। ऐसी जादुई लड़ाई दुनिया में पहली बार लड़ी गयी थी जिसे जीतना किसी भी अन्यायी शक्ति के लिए असंभव था।

अपने घर की देहरियों से बाहर निकलकर आयी हुई ये स्त्रियाँ तत्कालीन समाज की परंपरागत रूढ मान्यताओं के जाल से भी बाहर निकल सकी, यह बात तब इतनी सरल नहीं थी। **उस समय स्त्री का आकाश मोहल्ले से छोटा और उसका विहार घर की देहरी तक होता था।** घर से बाहर निकलने पर उसे अपने पति, जेठ, देवर, पुत्र आदि किसी परिवार के पुरूष की अभिरक्षा में ही बाहर निकलना पड़ता था। समाज के मध्यम वर्ग में यह अनुशासन अधिक कडाई से पालन होता था। यह एक बड़ा वर्ग था। मध्यम वर्ग का यह समाज ना तो गरीबों में गिना जाता था, ना अमीरों में। विडम्बना यह थी कि निर्धन समाज की दृष्टि में जिस मध्यम वर्ग को सुखी और संपन्न समझा जाता था, उसकी गरीबी नामक बीमारी पूरी तरह ठीक नहीं हुई थी। आधी बीमारी मौजूद थी जिसे वह किसी प्रकार छिपाए रखता था।

भारत के इस मध्यम वर्गीय समाज की अलग परिस्थितियाँ थी, फिर भी समाज में शिक्षा के प्रसार और प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि बालिकाएँ स्कूल जाने लगी। उच्च शिक्षा भी ग्रहण कर रही थी। सहशिक्षा के लिए समाज की उदार स्वीकृति मिलने लगी थी। लोग अखबार पढ़ते। खेतों में काम करने वाले किसान रेडियों पर देश भर की खबरें सुनते थे। चौपालों पर देश और दुनिया की राजनीति खंगाली जाती थी। कस्बों में भी स्त्री और पुरूषों द्वारा बराबरी से देश की राजनीति पर चिंताएं और चिंतन किए जाते थे। इस तरह के वातावरण में मध्यम वर्गीय समाज की चेतना का उदारीकरण प्रारंभ हुआ और आजादी के आंदोलन का बड़ा प्रभाव यह भी हुआ कि स्त्रियाँ अब बराबरी की साथी बनकर उभरी थी। वह सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बनी थी। **उस समय हिन्दु, मुस्लिम, सिख आदि सारे धर्म एक ही धर्म में समाहित हो गए थे और उस धर्म का नाम था - ''देश धर्म ।'' इसीलिए वह देश धर्मी स्त्री पुरूष अजेय थे।**

यह चमत्कार जितना गांधीजी का था उतना ही तिलक, टैगोर और शरद से लेकर सुब्रम्हमण्यम भारती, प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, आदि असंख्य ज्ञात अज्ञात साहित्य मनीषियों का भी था, जिन्होंने आत्म गौरव की दीपशिखाएं घर घर की देहरी पर प्रतिष्ठित की। यह चमत्कार सुभाष , नेहरू लोहिया से लेकर भगतसिंह, राजगुरू आदि असंख्य महान देश भक्तों का भी था, जिनकी पुकार का अनसुना करना असंभव था। यह चमत्कार बहुत बड़ा और प्रभावशाली था, परन्तु उसकी सफलता का आंतरिक स्त्रोत इस देश की स्त्रियाँ थी, जिनकी सहभागिता के बिना यह चमत्कार होना असंभव था। भारतीय नारी की चेतना में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ था। नये युग की इन स्त्रियों के आदर्श अब लक्ष्मी, सीता, सावित्री, गांधारी, राधा, सुलोचना आदि अतीत की गौरवशाली नारियाँ नहीं थी। उनका आदर्श कौन था, यह बात हिन्दी की एक तत्कालीन अल्प ज्ञात कवयित्री चंचल कुमारी देवी से सुने तो ठीक होगा -

प्रश्नः-

''सखि! तू क्या बनना चाहेगी, रमा रूक्मणी या सीता,
अथवा सावित्री बनकर चाहेगी यम को भी जीता।

या पतिपूजा का दिखलाएगी पथ, बनकर गांधारी
या गलियों में खेल करेगी बनकर के राधा प्यारी।
या बनकर उत्तरा अरी तू वीर वधू कहलाएगी।
या सुलोचना बनकर अपने तन में आग लगाएगी।
बता बता जीवन का तूने क्या उद्देश्य बनाया है।
जग में क्या कर दिखलाने का तुझमें भाव समाया है ?

उत्तर:-

अंकित है उर में सखि,! सब सीता सावित्री गांधारी
इस युग में पर नहीं बनूंगी, मैं बीते युग की नारी।
अब तो इच्छा है निकलू मैं घर से लेकर नंगी तलवार,
देख जिसे इस दबे देश में हो कुछ साहस का संचार।

चंचल कुमारी देवी उत्तरप्रदेश के एक छोटे जनपद में जन्मी कवयित्री थी जिनकी रचनाओं का कोई संग्रह प्राप्त नहीं है, किन्तु उनकी उपर्युक्त एक कविता ही उसके व्यक्तित्व और कृतित्व की परिचायक है, जिसमें स्त्री बीते हुए युग की महान स्त्रियों के प्रति आदर भाव रखते हुए भी नये युग की नारी बनना चाहती है। एक और उदाहरण तोरण देवी शुक्ल की कविता का भी दृष्टव्य है, जो 'लली' उपनाम से कविताएँ करती थी -

''कहकर उपदेश सुनाने से, जिनका सत्कर्म प्रधान रहा,
परहित में जीवन धारण था, परिपूर्ण अलौकिक ज्ञान रहा।
अभिमान नहीं जिन हदयों में, उनका जग में अभिमान रहा,
जो समझ चढे बलि वेदी पर, बलिदान वही बलिदान रहा।
रणवीर! इन्ही आदर्शो को, नित रीत नई से दरशाना।
ओ देश प्रेम के मतवालों, मत प्रेम प्रेम कह इतराना।

तोरण देवी शुक्ल 'लली' का जन्म म.प्र.के पिपरिया गाँव में ईस्वी सन् 1896 में हुआ था। इनकी कविताएँ रसिक मित्र, प्रियंवदा, साहित्य सरोवर, जान्हवी, अभ्युदय, मर्यादा, स्त्री दर्पण, गृह लक्ष्मी के अलावा अपने समय की लब्धप्रतिष्ठित पत्रिका सरस्वती में भी प्रकाशित होती थी। ये भी हमारे साहित्य के इतिहास की उन बड़ी महत्वपूर्ण प्रतिभाओं में से एक थी जिन्हें बाद के इतिहास ने भुला दिया ।इसे विंडबना ही कहा जा सकता है।

पराधीन देश में ललीजी को विजयादशमी का पर्व मनाना नहीं सुहाता था। उनका हृदय अपने देश के अतीत की गरिमा का भावचिंतन करते हुए कह रहा था -

''मेरी विजया दशमी आज!
पराधीन है देश हमारा, निर्बल हीन समाज।
'लली' न जाने कहां छिपी है, देश धर्म की लाज।।

अंग्रेजों के अत्याचार के कारण तीर्थराज प्रयाग में लोग सन् 1924 में दशहरे का पर्व नहीं मना पाये थे। उसी की पीडा उपर्युक्त कविता में उभरी थी। वह विजयादशमी की विजयिनी शक्ति से प्रशन करती है -

''क्या कह कर गुणगान तुम्हारा, करे विजयिनी आज,
स्मृति में उत्सव तक भी जब, कर न सका तीरथ राज!
मेरी विजया दशमी आज।''

तोरण देवी शुक्ल माखन लाल चतुर्वेदी की समकालीन कवयित्री थी जो उनसे उम्र में सात वर्ष ही छोटी थी। वह राष्ट्रीय काव्य आंदोलन की सशक्त हस्ताक्षर थी। तोरण देवी शुक्ल ''लली'' के संबंध मे श्री रामशंकर शुक्ल ''रसाल'' ने सन् 1931 में लिखा था - ''खडी बोली के काव्य जगत में नवीन पद्धति से काव्य रचना करने वाली महिलाओं में श्रीमति तोरण देवी शुक्ल ''ललीजी'' सर्वाग्रगण्य है। ललीजी ने शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग जैसा अच्छा किया है वैसा कदाचित किसी दूसरी देवी ने नहीं किया। इन्होंने सामयिकता को अपने सामने रखकर नवीन विषयों पर नवीन शैली से मनोहारिणी रचनाएं की है। देशानुराग, प्रेम, वीरभाव इनकी रचनाओं मे प्रधानता रखते है। इनकी कविता में ओज और वीरत्व का जो प्रादुर्भाव होता है वह वर्तमान खड़ी बोली के लिए नवीन और गौरवपूर्ण है। हम इन्हें आधुनिक समय में खड़ी बोली मे रचना करने वाली देवियों की प्रधान प्रतिनिधि समझते है।'' खेद है आधुनिक राष्ट्रीय साहित्य के इतिहास में इन जैसे अनेक नारी रत्नों के अवदान को बिसरा दिया गया हैं किंतु यह भी सच है कि हमारी स्वाधीनता की चेतना को उस समय की अनेक कवयित्रियों ने जैसा उत्कर्ष प्रदान किया था, उसका ही प्रभाव था कि हमारा स्वाधीनता आंदोलन सही अर्थों में जन आन्दोलन बन सका था।

वरिष्ठ कथाकार अमरकांत का एक उपन्यास है- ''इन्हीं हथियारों से ''। इसमें उन्होंने बलिया जिले के आम नागरिकों स्त्री पुरूषों के द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने का विशद वर्णन किया गया है। इस उपन्यास की एकपात्र है नम्रता। वह जागरूक स्त्री है जो प्रेमचंद का गोदान, इलाचन्द्र जोशी का सन्यासी, यशपाल का दादा कामरेड' अज्ञेय का शेखर एक जीवनी जैसा

साहित्य पढती है। उसकी शिक्षक थी दुलारी गुरुजी। जो खद्दर की साड़ी पहनती थी। वह लडकियों को अंधविश्वास छोड़ने और नयापन अपनाने को कहती। वह कहती है– ''स्त्री कोई काठकी लकडी, रेतपाई नहीं है, उसमें भी सुंदर इच्छाएँ है। स्वाभिमान है, विवेक है, अत्याचार और उत्पीडन के विरूद्व घृणा के भाव है, राष्ट्र प्रेम और साहित्य प्रेम है।'' नम्रता उनके प्रभाव से बदली हुई नारी है, जो कहती है कि उज्जवल समाज बनाने के संघर्षो में ही नारी और पुरूष मिलजुलकर परस्पर प्यार व त्याग की कविता रच सकेगें।'' वह अपनी जीवनचर्या बताती है– '' मैं खुश हूँ। मै जीवन से प्यार करती हूं। गरीब निरक्षर और सताई हुई स्त्रियों को अधिक। मैं अधिक से अधिक पढना चाहती हूं। दुलारी गुरुजी के कहने से ही मैं रोज सबेरे एक घण्टा चरखे पर, सूत कातती हूँ। मेरी इच्छा है कि इन सूतो से बने कपडे बनवाकर पहनूं।''

स्वाधीनता आंदोलन में घर की देहरी लांघ कर सड़क पर उतरी हुई इस स्त्री शक्ति को जाग्रत करने तथा उन्हें देश प्रेम की खातिर और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए ''शक्ति स्त्रोत'' बनाने का काम उस समय हिन्दी साहित्य की अनेक कवयित्रियाँ कर रही थी। आज भले ही उन्हें भुला दिया गया है किन्तु इससे उनका महत्व कम नहीं हो जाता। उनकी प्रेरणा का परिणाम था कि स्त्रियां स्वाधीनता संग्राम में निर्भीक होकर भाग ले रही थी। जेल जा रही थी। अपने पति, पुत्र और स्वजनों की शक्ति बनकर राष्ट्रयज्ञ में शौर्य की आहूतियाँ दे रही थी। उस समय की एक कवयित्री थी प्रेम प्यारी देवी।'

इनके बारे में बहुत कुछ ज्ञात नहीं है, और ना हम उनकी रचनाएं संरक्षित कर सकें, किन्तु उनकी एक कविता की बानगी ही उनकी काव्य प्रतिभा और देशानुराग का अप्रतिम उदाहरण है जिसका शीर्षक है – ''मेरा श्रृंगार।'' इसकी पंक्तियों में जो ओज और उत्साह तथा राष्ट्र प्रेम की प्रेरणा है, उसकी शक्ति से कौन इन्कार कर सकता है प्रेमप्यारी देवी की वह कविता इस प्रकार है–

''शौक मुझको हो कभी यदि हाथ जेवर का प्रभो,
तो भरे ''उपकार कंगन'' से मेरे कर हो विभो।
शीश की बेनी अगर भगवन, मुझे दरकार हो,
शीश तक कर दूँ निछावर, देश का उपकार हो।
नाथ, क्यों तन के लिए अब जेवरों की चाह हो,
है वहां तू, जोश का थोडा बहुत उत्साह हो।
ऐसे गहनों से सखी श्रंगार करिये आप भी।
झूठे गहनों से न होगें, दूर मन के ताप भी।

मुझे इस कविता के पढते हुए राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की अमर कविता '' मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक, मातृ भूमि को शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक '' की याद आती है, जो 10 अप्रैल 1922 को सर्वप्रथम प्रताप नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। प्रेम प्यारी देवी जैसी कवयित्रियों का प्रभाव था कि गांधीजी की सभाओं में स्त्रियां अपने तन के जेवर, कंगन चूडियाँ इत्यादि स्वाधीनता आंदोलन के लिए किये जाने वाले निधि संग्रहण में प्रसन्नता पूर्वक समर्पित कर दिया करती थी। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था कि ''यदि माताएं साथ नहीं आती तो मैं सौ वर्ष प्रयत्न करके भी देश को स्वतंत्र नहीं करा सकुंगा।''

हमारे स्वाधीनता आंदोलन को गतिशील बनाने वाली स्त्रियों में बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब की महिलाएं भी बहुत सक्रिय थी। गांव गांव में महिलाएं चरखा चलाती थी। राष्ट्रीय फंड में अपने आभूषणों को उतार कर स्वेच्छा से दान देती थीं। नोआखाली की भागवती देवी ओजस्वी गीतों की रचनाएं करती थी। लाहौर के बेरिस्टर रोशनलाल की पत्नी हरदेवी ने हिन्दी में भारत भगिनी नाम की पत्रिका संपादित की थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर की बहिन स्वर्ण कुमारी देवी कवयित्री ही नहीं उपन्यासकार एवं सामाजिक कार्यकर्ता भी थी। उनके द्वारा संपादित भारती नाम की पत्रिका का महत्वपूर्ण स्थान है। वह शायद हिन्दी की प्रथम महिला संपादक भी थी, किंतु उनके योगदान को भी लगभग बिसरा दिया गया हैं। इसी तरह रवीन्द्रनाथ टैगोर की भानजी सरला देवी चौधरी जो भारत की प्रथम महिला उपन्यासकार भी है, ''भारती'' नामक पत्रिका के माध्यम से तथा सक्रिय आंदोलन से भी जुडी हुई थी। सन 1905 में बनारस कांग्रेस अधिवेशन में सरला देवी ने प्रथम बार गोपाल कृष्ण गोखले की प्रेरणा से बंकिम का ''वंदे मातरम ''गा कर अधिवेशन में प्राण फूंक दिये थे। इनका निधन 18 अगस्त 1945 को हुआ था।

महादेवी वर्मा ने ''श्रृंखला की कडियाँ'' में आधुनिक नारी शीर्षक निबंध में स्पष्ट रूप से कहा है कि – ''राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाली महिलाओं ने आधुनिकता को राष्ट्रीय जागृति के रूप में देखा और उसी जागृति की ओर अग्रसर होने में अपने सारे प्रयत्न लगा

दिये। इस उथल-पुथल के युग में स्त्री ने जो किया वह अभूतपूर्व होने के साथ-साथ उसकी शक्ति का प्रमाण भी था। यदि उसके बलिदान, उसके त्याग भूले जा सकेगें तो उस आन्दोलन का इतिहास भी भूला जा सकेगा। इस प्रगति द्वारा सार्वजनिक रूप से स्त्री समाज को भी लाभ हुआ। उसके चारो ओर फैली हुई दुर्बलता नष्ट हो गयी, उसकी कोरी भावुकता छिन्न भिन्न हो गयी, और उसके स्त्रीत्व से शक्तिहीनता का लांछन दूर हो गया। पुरूष ने अपनी आवश्यकतावश ही उसे साथ आने की आज्ञा दी, परंतु स्त्री ने उससे पग मिलाकर चलकर प्रमाणित कर दिया कि पुरूष ने उसकी गति पर बंधन लगाकर अन्याय ही नहीं, अत्याचार भी किया है। जो पंगु है उसी के साथ गतिहीन होने का अभिशाप लगा है, गतिवान को पंगु बनाकर रखना सबसे बड़ी क्रूरता है।''

''नये दशक में महिलाओ का स्थान'' शीर्षक वाले निबंध में भी महादेवीजी ने लिखा है कि - ''प्रथम बार भारत के विभिन्न धर्म और संप्रदायों के व्यक्तित्वों ने एक होकर विदेशी शासन से मुक्त होने का प्रयास किया और नारी ने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से साथ देकर अपने समर्थ सहयोगी होने का प्रमाण दिया।

- लेखक वरिष्ठ साहित्यकार है।
18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे, खण्डवा (म.प्र.) 450001
मोबा. 9425342665

कला समय

कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 300/- रूपये, दो वर्ष : 600/- रूपये, चार वर्ष : 1000/- रूपये, आजीवन : 10000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .....
ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो.: .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	:	300 (व्यक्तिगत)	350 (संस्थागत)
द्वैवार्षिक	:	600 (व्यक्तिगत)	700 (संस्थागत)
चार वर्ष	:	1000 (व्यक्तिगत)	1200 (संस्थागत)
आजीवन	:	10,000 (व्यक्तिगत)	12000 (संस्थागत)

(15 वर्ष के लिए)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाईन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा 'कला समय' के नाम पर उक्त पते पर भेजें)

विशेष : 'कला समय' की प्रतियाँ साधारण डाक/रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से भेजी जाती हैं यदि कोई महानुभाव रजिस्टर्ड पोस्ट से पत्रिका मंगवाना चाहते हैं तो कृपया वार्षिक डाक खर्च 120/- अतिरिक्त भेजने का कष्ट करें।

कार्यालय सम्पर्क :

संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :

'कला समय' का बैंक खाता विवरण

पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी भोपाल, म.प्र. **(IFSC : PUNB0093210)** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

आलेख

भारत का स्वतंत्रता संग्राम और बस्तर के आदिवासी योद्धा

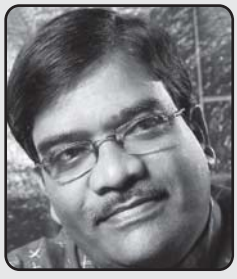

लक्ष्मीनारायण पयोधि

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की चर्चा करते हुए अक्सर उन आदिवासी क्रांतिकारियों का उल्लेख नहीं किया जाता, जिन्होंने आज़ादी के अनुष्ठान में न केवल अपना रक्त अर्पित किया, बल्कि अपने-अपने अंचल के सुसंगठित और सुनियोजित विद्रोह द्वारा ब्रिटिश-सत्ता की चूलें हिला दी थीं। उनके इस महान योगदान को कभी उस महत्व के साथ इतिहास में दर्ज़ नहीं किया गया। इतिहासकार प्राय: यह भ्रामक तथ्य प्रचारित कर उनकी महत्वपूर्ण लड़ाइयों की उपेक्षा करते रहे कि आदिवासी-विद्रोह उनकी अपनी समस्याओं से प्रेरित रहे हैं। उनकी क्रांतियों में राष्ट्रमुक्ति की भावना कभी नहीं थी। बहुत समय तक 1857 के मुक्तिसंग्राम के बारे में भी इसी धारणा को प्रचारित किया गया था।

उल्लेखनीय यह है कि 1857 से पूर्व ही आदिवासी बहुल बस्तर के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में गोंड समुदाय के मुक्तिकामी योद्धाओं द्वारा बाकायदा संगठित-प्रशिक्षित होकर ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध योजनाबद्ध संघर्ष आरंभ कर दिया था। सन् 1856 में जब उत्तर भारत में ब्रिटिश सरकार की हड़प नीति से विचलित कुछ महलों-रजवाड़ों में विद्रोह की चिंगारियाँ सुगबुगा रही थीं, उस समय बस्तर के सीमावर्ती भोपालपटनम् अंचल में लिंगागिरी के धर्माराव, भोपालपटनम् के यादवराव, मल्लमपल्ली के बाबूराव और अड़पल्ली के वेंकटराव जैसे योद्धा गोंड (दोरला, कोया, गोट्टे आदि) वनवासियों की सेना तैयार कर अंग्रेज फौजों से छापामार युद्ध कर रहे थे। यह बात तत्कालीन अंग्रेज अधिकारी ईलियट (1856) ने स्वयं स्वीकार की है। ईलियट ने लिखा है कि उनकी सेना के साथ तेलंगा माड़ियों के अनेक संघर्ष हुए हैं।

धर्माराव के नेतृत्व में गोंड क्रांतिकारी सेना को छापामार युद्ध में प्रशिक्षित किया गया था। 3 मार्च 1856 को चिन्तलनार की पहाड़ियों में घात लगाकर बैठी आदिवासी सेना ने अंग्रेजों की सरकारी सेना पर हमला बोल दिया था। यहाँ चली लंबी लड़ाई के बीच अचानक अंग्रेज सेना को स्थानीय स्तर पर सैन्य सहायता मिल जाने से धर्माराव की सेना का पराभव हो गया था। यहीं उन्हें उनकी पत्नी और बच्चों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में गोंड योद्धा धर्माराव को सार्वजनिक रूप से फाँसी दी गयी थी।

धर्माराव के बलिदान से उद्वेलित उनके परम मित्र भोपालपटनम् यादवराव ने दोरला-गोंडों को पुन: संगठितकर एक विशाल सेना तैयार की और ब्रिटिश-सत्ता के विरुद्ध संग्राम शुरु कर दिया। उनके इस अभियान में अहेरी (महाराष्ट्र) क्षेत्र के मल्लमपल्ली बाबूराव और अड़पल्ली के वेंकटराव गोंड भी सहयोगी थे। इनकी गोंड सेनाओं ने अंग्रेज फौजों पर लगातार आक्रमण करके अनेक ब्रिटिश अधिकारियों को मार डाला था। विद्रोहियों की इन कार्यवाहियों से त्रस्त और आतंकित ब्रिटिश हुकूमत ने बस्तर के राजा भैरम देव और अहेरी तथा भोपालपटनम् के ज़मींदारों पर विद्रोहियों की गिरफ़्तारी के लिए भारी दबाव डाला और अंतत: अहेरी ज़मींदारिन लक्ष्मीबाई ने कपटपूर्वक बाबूराव को पकड़वाया। उन्हें 21 अक्टूबर 1858 को चाँदा में फाँसी दी गयी। बाबूराव गोंड पूरे क्षेत्र में शौर्य और आतंक के प्रतीक बन गए थे। ब्रिटिश प्रशासन के आदेश पर भोपालपटनम् के ज़मींदार ने अपने पुत्र यादवराव को महल में ही पकड़ कर सौंप दिया था। उन्हें सन् 1860 में फाँसी हुई। अड़पल्ली के वेंकटराव पहले ही अपने मित्र यादवराव के सहयोग से अहेरी-भोपालपटनम् सीमा से निकल कर जगदलपुर चले गए थे। वे काफी दिनों तक बस्तर के राजमहल में छुपे रहे। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों के आगे राजा भैरमदेव को झुकना पड़ा और वेंकटराव को गिरफ़्तार कर सन् 1860 में ही कालापानी भेज दिया गया। ब्रिटिश अधिकारी जे. पिट केनेडी (1873) के अनुसार वेंकटराव गोंड एक महान विद्रोही थे। इन महान सेनानियों की शहादत के साथ ही बस्तर में ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ विद्रोह की लौ बुझ नहीं गयी, बल्कि वह आगे चलकर 1910 में महान आदिवासी क्रांति 'भूमकाल' रूपी ज्वाला बनकर प्रकट हुई, जो दावानल की तरह लगभग तीन-चौथाई बस्तर रियासत में फैलकर अत्याचारों के विरुद्ध रक्तक्रांति का एक नया गौरवपूर्ण इतिहास रच गयी। इस अभूतपूर्व रक्तक्रांति के नायक थे- गुण्डाधूर।

नेतानार निवासी गुण्डाधूर ऊपरी तौर पर एक सामान्य

धुरवा आदिवासी युवक होते हुए भी लोक मान्यता के अनुसार असामान्य शक्तियों के स्वामी थे। अदम्य विश्वास, अपार शारीरिक बल, दूरदर्शिता और दृढ़ निश्चय के कारण वे सहज ही किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेने में समर्थ थे। वे अनपढ़ थे, किन्तु अविवेकी नहीं थे। उनमें अद्‌भुत नेतृत्व-क्षमता थी। उनके एक इशारे पर लोग मरने-मारने पर तैयार रहते थे। दक्षिण बस्तर के माँझी-मुखियों में उनका बहुत आदर था। वे जन समस्याओं को लेकर अक्सर दशहरा के अवसर पर मुरिया दरबार में मुखर होते रहते थे। इतर समय में भी वे अपने क्षेत्र की छोटी-बड़ी समस्याओं से तो जूझते ही थे। गुण्डाधूर बेहद लोकप्रिय और अपने समय के एक सर्वमान्य आदिवासी नेता थे।

गुंडाधुर अपने सहयोगी क्रांतिकारियों के साथ

यह महज संयोग नहीं था कि सन् 1909 में दशहरे के अवसर पर ताड़ोकी में सम्पन्न आदिवासी महासभा में ब्रिटिश हुक़ूमत से नाराज़ बस्तर रियासत के आधे से अधिक माँझी-मुखियों ने सर्वसम्मति से गुण्डाधूर को अपना नेता माना था और अंग्रेज़ सरकार के ख़िलाफ़ प्रस्तावित महाविद्रोह 'भूमकाल' के संचालन का दायित्व उन्हें सौंप दिया था। उस सभा में उपस्थित बस्तर के पूर्व दीवान लाल कालीन्द्र सिंह और राजा की विमाता सुवर्ण कुँअरि ने भी गुण्डाधूर को नेतृत्व सौंपे जाने पर संतोष व्यक्त किया था। गुण्डाधूर उन सबके विश्वास पर खरे उतरे थे। उन्होंने जिस कौशल के साथ उस महान् रक्तक्रांति का संचालन किया, वह बस्तर के इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ बन गया है। आज भी बस्तर के गाँवों में गुण्डाधूर का नाम लेते ही बड़े-बूढ़ों की आँखों में चमक कौंध जाती है।

अपने काव्यनाटक 'गुण्डाधूर' के लिए तथ्य संकलन के दौरान जब मैं नेतानार, लामनी, उलनार और काकड़ाबेड़ा (कोंडागाँव) के कुछ लोगों के संपर्क में आया, तब मुझे अनुभव हुआ कि आदिवासियों के मन में गुण्डाधूर की छवि एक अवतारी पुरुष की है। किसी भी व्यक्ति की ऐसी छवि क्या यों ही बन पाती है? 'गुण्डाधूर' आदिवासियों के लिए जहाँ वीरता का प्रतीक थे, वहीं अंग्रेज अधिकारियों के लिए आतंक का पर्याय भी। उनकी सेना ने जंगल पर पाबंदी लगाने वाले वनकर्मियों और बेगार कराने वाले पुलिस के सिपाहियों (जिन्हें पाइक कहते थे) को पकड़-पकड़ कर चीर डाला था। पटवारियों की छातियों पर तीर के फलों से नक्शे खींचे थे, बच्चों को बलात पकड़कर स्कूल ले जाने और उन अबोधों को उलटा लटका कर मिर्च का धुआँ देने वाले अत्याचारी शिक्षकों को पेड़ों से बाँधकर उनके हाथ-पाँव और खोपड़ियों में कीलें ठोक दी थीं।

गुण्डाधूर की एक हुंकार पर लोग घरों में दुबक जाते थे। विशेषका 6 से 12 फरवरी 1910 के बीच जब जगदलपुर क्रांतिकारियों के कब्जे में था, आततायी सरकार के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए गुण्डाधूर साक्षात काल बनकर घूम रहे थे। जगदलपुरवासियों ने मौत का वैसा तांडव कभी नहीं देखा था। भूमकाल के लिये जो रणनीति बनायी गयी थी, वह अद्‌भुत थी। इस योजना को बनाने में लाल कालीन्द्र सिंह के सक्रिय सहयोग से इंकार नहीं किया जा सकता, परन्तु जिस सुनियोजित और गोपनीय ढंग से इस पर अमल किया गया, वह गुण्डाधूर के ही रण-कौशल का परिणाम था। ब्रिटिश चीफ कमिश्नर डि ब्रेट के चीफ सेक्रेटरी स्टैंडेन ने इस संबंध में लिखा है- ''विद्रोहियों के इरादों को कोई भाँप नहीं सका था। उन्हीं के बीच रहने वाले दीवान, सरकारी कर्मचारी और विदेशी भी नहीं समझ पाये कि भीतर ही भीतर क्या पक रहा है। उन्हें तो उसी दिन पता चला, जब एकाएक भूचाल आ गया था और वे हक्के-बक्के रह गये थे।''

गुण्डाधूर की योजना के अनुसार सबसे पहले आम की टहनियों में लाल मिर्चें बाँधकर विद्रोह की प्रतीक-'डारामिरी' को गाँव-गाँव घुमाया जाना था, ताकि सबको उस महाक्रांति की सूचना मिल सके। यह आदिवासियों की मौलिक सूझ थी। माँझी-मुखियों से कहा गया कि ''प्रत्येक घर से रसद और हथियार भी इकट्ठे करवायें, ताकि हर गाँव के घर-घर से लोग भावनात्मक रूप से एक हो सकें। विद्रोह के लिए रसद की पूर्ति बाज़ारों में शोषक व्यापारियों को लूटकर भी की जायेगी।''

विद्रोह की सूचना बस्तर से बाहर न जा सके इसके लिये योजना के अनुसार टेलीफोन लाइनें काट दी गयीं। पुलिस-थानों, स्कूल-भवनों, काँजीहौसों और अन्य सरकारी भवनों को आग लगायी गयी। सड़कों पर मोर्चेबन्दी करके कर्मचारियों-अधिकारियों

को पकड़कर उन्हें दण्डित किया दीवान पण्डा बैजनाथ मौक़ा पाकर बस्तर से भाग गया।

तत्कालीन बस्तर राज्य के अलग-अलग परगनों में विद्रोह के संचालन-सूत्र उन परगनों के माँझी-मुखियों को सौंपे गये थे। इसका परिणाम यह हुआ कि 2 फरवरी 1910 को पुसपाल बाज़ार की लूट से प्रारंभ यह विद्रोह एक साथ बस्तर के विभिन्न हिस्सों में फैल गया। 4 फरवरी को कूकानार बाज़ार में विद्रोही सामनाथ और बुंटू ने एक व्यापारी को मार डाला। 5 फरवरी को करंजी बाज़ार लूटा गया। भूमकाल के महानायक गुण्डाधूर के नेतृत्व की ख़ूबी यह थी कि स्वयं राजधानी जगदलपुर में क्रांति की बागडोर संभालने के बावजूद, व्यवस्था ऐसी कर रखी थी कि सभी टोलियों के नायक उनके सतत् संपर्क में रहे। यही कारण है कि पूरे भूमकाल के दौरान गुण्डाधूर की उपस्थिति अनेक स्थानों पर दर्ज़ हुई थी। वे समय-समय पर अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर उन क्षेत्रों के क्रांतिनायकों को आवश्यक दिशा-निर्देश देते रहे थे।

बाबू राव

6 फरवरी को जब दीवान के भोपालपटनम् की ओर से भाग जाने की सूचना मिली तो गुण्डाधूर फ़ौरन पहुँच गए थे और रातों-रात गीदम (कस्बा) पर कब्ज़ा करने के बाद 7 फरवरी 1910 को विद्रोहियों की एक गोपनीय बैठक लेकर आगे की योजना पर विचार किया था। विद्रोहियों ने दक्षिण और पश्चिम बस्तर में अंग्रेज सेनाओं पर कहर ढा दिया था। इसी दिन राजा रुद्रप्रताप देव द्वारा तार के माध्यम से रायपुर के अधिकारियों को विद्रोह की सूचना दी गयी। 9 फरवरी को कुआकोंडा में तीन सिपाहियों को मार दिया गया। 10 फरवरी को मारेंगा, तोकापाल और करंजी के स्कूल जलाये गये। 13 फरवरी को गीदम बाज़ार लूट कर वहाँ का स्कूल जला डाला।

अपेक्षाकृत शाँत और कलाप्रिय उत्तर बस्तर के मुरियों और माड़ियों में विद्रोह की भावना जगाना आसान काम नहीं था, परन्तु गुण्डाधूर की प्रेरणा से उनके विश्वासपात्र और मित्र और सहयोगी आयतू महरा ने घोटुलों को केन्द्र बनाकर युवाशक्ति को एकजुट किया था। आयतू ने यहाँ तक कहा कि गुण्डाधूर लिंगोपेन (देव) का अवतार है। चूँकि आयतू का संपर्क गुण्डाधूर के साथ-साथ लालबाबा (लाला कालीन्द्र सिंह) से भी था, इसलिए वनवासियों के बीच काफी सम्मान था। उसकी सक्रियता से विद्रोह कोण्डागाँव, केशकाल, अंतागढ़, नारायणपुर से लेकर अबूझमाड़ की पहाड़ियों तक जंगल की आग की तरह फैल गया था। दक्षिण में दंतेवाड़ा, कोंटा और भोपालपटनम् तक विद्रोह की लपटें थीं।

सन् 1910 की इस महान जनक्रांति में राजपरिवार के सदस्यों के अलावा कुँवर बहादुर सिंह, कुँवर अर्जुन सिंह और राजा रुद्रप्रताप देव के मामा मुकुन्ददेव माछमारा का सक्रिय योगदान गुण्डाधूर को मिला था। गुण्डाधूर ने अपनी संगठन-क्षमता का परिचय देते हुए नेतानार में पुन: सैन्यबल संगठित किया और जब ब्रिटिश फ़ौज उन्हें ढूँढती नेतानार पहुँची तो उसका डटकर मुकाबला किया था। इस युद्ध में आदिवासियों के तीर-कमानों के आगे अंग्रेजों की बंदूकें असहाय हो गयी थीं। सेना का पराभव देखकर कप्तान गेयर ने आत्मसमर्पण का निर्णय तक ले लिया था, परन्तु गुण्डाधूर के एक लालची सहयोगी सोनूमाँझी के गेयर का गुप्तचर बन जाने से उसका आत्मबल लौट आया था। गेयर ने एक षड़यन्त्र रचकर सोनूमाँझी के गाँव उलनार में एक उत्सव करवाया। सोनू माँझी ने नेतानार में अंग्रेज-फ़ौजों पर विजय का उत्सव बताकर सारे क्रांतिकारियों को आमंत्रित किया। 25 मार्च 1910 को सेमल कोनाड़ी (जिसे अब 'लड़ई कोनाड़ी' भी कहते हैं) में सब इकट्ठे हुए। महुए की शराब और लाँदे का इंतज़ाम किया गया। सबने खूब छककर खाया-पिया और नशे में धुत्त होकर पड़ गए। सोनू माँझी की सूचना पर ब्रिटिश फ़ौज आयी। सर्चलाइट के प्रकाश में क्रांतिकारियों के अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर उनमें आग लगा दी गयी। फिर सोये हुए क्रांतिकारियों पर चारों ओर से गोलियाँ बरसायी गयीं। बच्चे, स्त्रियाँ और वृद्धों सहित सैकड़ों लोग चीख भी नहीं पाये। गुण्डाधूर और उनके साथी डेबरीधूर ने लोगों को संघर्ष के लिये ख़ूब प्रेरित किया, परन्तु निहत्थे वनवासी गोलियों का सामना नहीं कर पाये। इस गोलीकाण्ड में कितने आदिवासी शहीद हुए इसकी सही संख्या कहीं नहीं मिलती। सरकारी रिकार्ड के अनुसार तो सिर्फ़ 21 लोग ही मारे गये और 100 से कुछ अधिक लोग घायल हुए थे।

इस गोलीकांण्ड से किसी प्रकार बच निकलकर गुण्डाधूर ने फिर से क्रांतिकारियों को जुटाया और 29 मार्च को आधी रात को

600 क्रांतिकारियों के साथ गेयर और उसकी सेना पर हमला किया। हालांकि तोपों के आगे तीर-धनुष अधिक समय तक टिक नहीं सके। 3 मई 1910 तक विद्रोह पूरी तरह दबा दिया गया था। डेबरीधूर, माड़िया माँझी आदि प्रमुख विद्रोहियों को जगदलपुर के गोल-बाज़ार में इमली के पेड़ों से लटकाकर सार्वजनिक रूप से फाँसी दी गयी, ताकि भविष्य में कोई विद्रोह का हौंसला न जुटा सके। गुण्डाधूर अंग्रेज सरकार के हाथ नहीं आये। उन पर 10 हज़ार रुपये का इनाम रखा गया था।

विद्रोह की असफलता के बाद गुण्डाधूर कहाँ रहे ? कब तक ज़िन्दा रहे ? कब और कहाँ उनका निधन हुआ ? यह आज तक खोज का विषय बना हुआ है। परंतु यह वीर बस्तर के जन-जन के दिल में एक कथानायक बनकर जीवित है- 'गुण्डाधूर चो लड़तो बेरा। खण्डा चो धार पड़तो बेरा। मुण्डी उपरे धड़ पड़े से। लड़ई लड़ून सरतो बेरा लहू चो मारे टार धड़ेसे।' यानी कि गुण्डाधूर के लड़ते समय खड्ग की धार पड़ते समय मुण्डों के ऊपर रुण्ड पड़ते हैं, लहू की मोटी धार बह चलती है।

आज़ादी के ये गुमनाम आदिवासी योद्धा इतिहास के पृष्ठों में भले ही जगह न पा सके हों, किंवदंती बनकर लोगों के दिलों में आज भी जीवित हैं।

- लेखक-जनजाति विषय के विद्वान साहित्यकार है।
ए-1, लोटस रो, स्प्रिंगवैली, कटारा हिल्स, भोपाल-462043(म.प्र.)
मो.: 8319163206

सम्मान . . .

मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग के प्रतिष्ठित सम्मानों की घोषणा

मध्यप्रदेश शासन साहित्य, संस्कृति, सिनेमा, सामाजिक समरसता, सद्भाव आदि बहुआयामी क्षेत्रों में उत्कृष्टता, सृजनात्मकता और बहुउल्लेखनीय योगदान के लिए देशभर में अग्रणी और प्रतिष्ठित है। मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग द्वारा इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रीय एवं राज्य सम्मान संस्कृति संचालनालय के अंतर्गत स्थापित किए गए है। वर्तमान में बहुआयामी विधाओं के क्षेत्र में 23 राष्ट्रीय एवं 9 राज्य सम्मान प्रदान किए जाते हैं।

वर्ष 2019 तथा वर्ष 2020 के लिये निम्नलिखित सम्मानों की बैठके विगत दिनों भोपाल सहित मुम्बई एवं दिल्ली में आयोजित की गई है। चयन समिति द्वारा उत्कृष्टता के आधार पर संस्था/कलाकार/लेखक/ साहित्यकार का चयन किया गया है। चयन समिति द्वारा सर्वसम्मत निर्णय प्रदान किया गया है, जो राज्य शासन के लिए बंधनकारी होगा। राज्य शासन द्वारा अंतिम निर्णय प्रदान किया गया है।

भोपाल के साहित्यकार, कलाकार हुए सम्मानित

राष्ट्रीय कबीर सम्मान

डॉ बिनय राजाराम
वर्ष 2019

श्री मनोज श्रीवास्तव
वर्ष 2020

शरदजोशी सम्मान

श्री विजय मनोहर तिवारी
वर्ष 2020

शिखर सम्मान-रूपंकर कलाएं

श्री देवी लाल पाटीदार
वर्ष 2019

शिखर सम्मान-नाटक

वैशाली गुप्ता
वर्ष 2019

शिखर सम्मान-नृत्य

श्रीमती अल्पना वाजपेयी
वर्ष 2020

शिखर सम्मान-संगीत

पंड़ित सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
वर्ष 2020

शिखर सम्मान-जनजातीय एंव लोक कलाएँ

श्रीमती पूर्णिमा चतुर्वेदी
वर्ष 2020

आलेख

सौन्दर्य दृष्टि के प्रतिमानः शालभंजिका और मोनालिसा

घनश्याम सक्सेना

क्या हर छविकार अपने छव्यांकन में अपने अंतरतम की ''मोहिनी मूरत'' देखता है, और क्या हर संगतराश मूर्तिकार अपनी मूर्तियों में अपनी ''मनोनुकूला'' का निवेश करता है ? यद्यपि शालभंजिका और मोनालिसा की अवधारणा में शायद ही कुछ कॉमन हो किन्तु छवि और शिल्प के प्रसंग में क्या उपरोक्त उक्ति प्रासंगिक है ? नहीं मालूम !

मोनालिसा विषयक जानकारियां बाक़ायदा लिपिबद्ध हैं। वह किसकी छवि है ? उसे किसने पेन्ट किया ? कब पेन्ट की गई ? वह क्यों विश्वविख्यात हो गई ? उसका तत्कालीन और वर्तमान कला-समाज कितना कला-चैतन्य और पारखी है ? मात्र छह शताब्दी की वयसवाली मोनालिसा की तुलना में सहस्राब्दियों वरिष्ठ शालभंजिकायें किसकी मनमोहिनी महबूबा थीं ? उन्हें किसने शिल्पांकित किया ? क्यों किया ? वह खंडित क्यों हुई ? अज्ञात और अल्पज्ञात क्यों रही- सदियों तक ? मोनालिसा के वारिसों की तुलना में क्या है शालभंजिकाओं के वारिसों का राष्ट्रीय चरित्र ? इतिहास और आख्यानों की भूलभुलैयों में क्यों नहीं खोजे जाने चाहिये इन सुलगते सवालों के सटीक जवाब ?

शुरु में ही उल्लेख किया जा चुका है कि मोनालिसा का इतिहास बाकायदा लिपिबद्ध है। इटली के घेरारडिनी परिवार की कुलवधू लिसा डेल गियोकोन्डो, फ्लोरेन्स और टसकेनी के धनाड्य सिल्क-व्यवसायी फ्रान्सेसको गियोकोन्डो की धर्मपत्नी थीं। लीसा उनका फर्स्ट नेम था। ''मोना'' उनके लिये आदरास्पद शब्द है जो अंग्रेज़ी के मेडम के समतुल्य और मेडोन्ना का संक्षिप्त है।

फ्लोरेन्टाइन लक्ष्मीपति फ्रान्सेसको ने जब अपने लिये एक आलीशान महल बनवाया और उसी समय उनके दूसरे पुत्र एन्ड्रिया ने जन्म लिया तो उसका उत्सव मनाने के लिये उन्होंने अपनी सुन्दरी पत्नी का पोट्रेट बनवाने का निश्चय किया। यह चित्र तत्कालीन सुविख्यात चित्रकार लियोनार्डो डाविन्सी ने संभवत: सन् 1503-1506में बनाया- यानी भारत में बाबर के आगमन के तेईस साल पहले। याद रहे कि लियोनार्डो ईसा मसीह से संबंधित ''द लास्ट सपर'' शीर्षक पेंटिंग के लिये भी विख्यात हैं। भारत में अजंता जैसे बहुरंगी गुफ़ाचित्र सहस्राब्दि पूर्व बन चुके थे। गौतम बुद्ध के अतिरिक्त इनके अन्य लौकिक प्रेरणास्रोत भी निश्चय ही रहे होंगे।

मोनालिसा की पेन्टिंग और इसके छविकार-कलाकार लियोनार्डो को अनेक रहस्यात्मक पर्तों के बीच से खोज निकाला गया है। यदि पुनर्जागरण काल (रिनेसां) के कला-इतिहासज्ञ जियोर्जियो बसारी ने लियोनार्डो डाविन्सी की जीवनी में जो कि सन् 1550 में, कलाकार की मृत्यु के इकतीस वर्ष बाद प्रकाशित हुई, इसका उल्लेख न किया होता तो बेरहम इतिहास ने इसे कबका बेदखल कर दिया होता। ''लियोनार्डो ने गियोकोन्डो की पत्नी मोनालिसा का चित्र बनाया... 1503-1506की अवधि से प्रारंभ करके संभवत: 1517 तक इसे बनाता ही रहा''- बसारी ने लिखा है। इसका कारण संभवत: यह था कि लियोनार्डो को फ्रांस के सम्राट फ्रांसिस ने सन् 1516में आमंत्रित किया, और तब वे इस अधूरे चित्र को फिनिश देने के लिये अपने साथ वहां ले गये। यह चित्र लियोनार्डो ने अपने सहायक सलाई को दे दिया जो सन् 1524 में उसके निधन के पश्चात उसके निजी सामान में मिला। यह चित्र लियोनार्डो ने ही बनाया है और यह मोनालिसा का ही है, इस तथ्य की पुष्टि सन् 2005 में जर्मनी की हाइडेलवर्ग यूनिवर्सिटी के एक शोध-उपक्रम से भी हुई जिसके नतीजतन लियोनार्डो के ही समकालीन एगोस्टिनो की एक टिप्पणी मिली जिसमें लियोनार्डो को ग्रीक कलाकार एपेलीज़ के समान निरूपित करते हुये लिखा था कि ''वे सन् 1503 में मोनालिसा नामक सुन्दरी का चित्र बनाने में लगे थे।''

क्या मोनालिसा वास्तव में एक अनिंद्य सुन्दरी थी ? शायद नहीं। अमेरिका की हर्वर्ड यूनिवर्सिटी की प्रो. मार्गेट लिविंगस्टोन का कहना है - ''वह अनिंद्य तो क्या औसत सुन्दरी भी नहीं रही होगी- चाहे पंद्रहवीं सदी के मापदंड ले लें या फिर इक्कीसवीं सदी के। किन्तु इतना ज़रूर है कि लियोनार्डो ने उसकी मुखाकृति में कोई हेराफेरी किये बग़ैर उसे निहायत ईमानदारी से ही पेंट किया है।'' एक कला-

समीक्षक आंद्र फेलिबियन ने भी यथार्थवादी चित्रण के लिये चित्रकार और चित्र दोनों की प्रशंसा की है। विक्टोरियन युग के कला-समीक्षकों ने लिखा है कि मोनालिसा तो रहस्य और रोमांस की प्रतिमूर्ति लगती है। ''वह तो खूबसूरती की स्फिंक्स है जो इतने रहस्यात्मक ढंग से मुस्कुराती है कि उसकी सतह और तह दोनों में दर्शकों को अद्भुत भावों-अनुभावों का साक्षात्कार हो जाता है''- वाल्टर पीटर ने 1869 में मोनालिसा को लेकर अपने निबंध में लिखा था। कुछ दर्शकों ने इस चित्र में सेक्सी उद्दीपन ढूडकर फ्रायडियन जोक्स भी मारी हैं। तब से ''मोनालिस मुस्कान'' एक मुहाविरा ही बन चुका है।

Monalisa

यक्षप्रश्न है कि मोनालिसा के इस चित्र की मुस्कान में ऐसा क्या था जिसने ''मोनालिसा-मुस्कान'' जैसे पाश्चात्य मुहाविरे को जन्म दे दिया? क्या यह चित्र मात्र मुस्कान के कारण एक गूढ़ार्थी भावप्रवण मुद्रा का यादगार चित्रण बन गया या फिर पुनर्जागरणकाल में इसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण इसका वर्जिन मेरी जैसा दिखना था जो कि ईसाई-संसार में ईसा मसीह की मां होने के कारण सनातन मातृत्व की प्रतीक मानी जाती हैं। इस चित्र की एक विशेषता यह भी है कि वह दर्शक की ओर ही देखता दिखाई देता है। मुस्कान क्या है ? वह एक अनुभाव की अभिव्यक्ति है। कोई व्यक्ति अधिक समय तक मुस्कुराता नहीं रह सकता। यह क्षणिक है। कौंध जाती है। अत: अपने चित्र में इसे स्थायी भाव के रूप में स्थान देने के लिये चित्रकार को खासा परिश्रम करना पड़ा होगा। अपना चित्र बनवाने वाले व्यक्ति को तो चित्रकार के समक्ष दीर्घकाल तक बैठना पड़ सकता है। किन्तु कोई भी बहुत देर तक मुस्कुराता नहीं रह सकता। अत: चित्रकार को मोनालिसा की मुस्कान को अपनी कला-दृष्टि में समोये-संजोये रखना पड़ा होगा। मोनालिसा के होठों के किनारे, आंखों की कोरें और दोनों बाजू फोल्ड करके बैठने का ढंग उसकी अमीराना शख्सियत का द्योतक है जिसमें हंसी की छोटी बहन मुस्कान बहुत फिट नहीं बैठती। उसका स्थायी भाव तो गांभीर्य ही लगता है। हमारे साहित्य में तो स्मित-हास्य का एक पूरा शास्त्र है। जब कोई मुस्कुराता है तो उसकी पूरी देहभाषा मुस्कुराती है और जब वह हंसता है: कछु आप हंसीं, कछु नैन हंसे, कछु नैनन बीच हंसो कजरा। मोनालिसा न तो मृगनयनी है और न उसकी आंखें ''अमिये हलाहल मद भरीं'' हैं। क्या मोनालिसा की देहभाषा उसकी मुस्कान से मैच करती है ?

एक कला-समीक्षक फ्रेंक ज़ोलनर का कथन है कि लियोनार्डो की कोई भी अन्यकृति, इस विधा के विकास पर मोनालिसा से अधिक प्रभाव नहीं डालेगी। यह पुनर्जागरण-काल की पोर्ट्रेट-कला का एक अद्वितीय प्रादर्श है, और शायद इसी वजह से इसे न केवल किसी शख्सियत के हूबहू चित्रण का प्रतिरूपन ही समझा जाता है बल्कि एक आदर्श की मूर्तिमत्ता भी है। मोनालिसा के इस चित्र की तमाम खूबियों पर विचार करते समय यह जानना भी ज़रूरी है कि पाश्चात्य-जगत में इसके अत्यधिक चर्चित और प्रदर्शित होने के बावजूद इसकी सुरक्षा में सेंध लगती रही है। फ्रांस के सम्राट लुइ चौदहवें के राज्यकाल में यह पेन्टिंग फ़ोनअेनब्लो महल में रखी रही, और फ्रांसीसी राज्यक्रांति तक वहीं रही। सन् 1757 में इसे स्थायी प्रदर्शन हेतु लोवरे नगर में रखा गया।

मोनालिसा का चित्रांकन श्वेत-श्याम है- कोई रंग-रोगन नहीं। लियोनार्डो ने स्वयं भी कहा था- ''सांसारिक दृश्यों में प्रकाश और छाया का विलास ही सर्वाधिक प्रभावशाली होता है।''

सैनिक-महानायक भी कभी-कभी कला प्रेमी होते हैं। हिटलर के बारे में बताते हैं कि वह अपने शुरुआती दिनों में आस्ट्रिया में पेंटिंग किया करता था। नेपोलियन बोनापार्ट भी कलाप्रेमी था। सो उसने मोनालिसा का चित्र अपने महल के शयनकक्ष में रखवा लिया। ''जंगजू नेपोलियन को भी अपनी ख़्वाबगाह में एक माहेपारा (चंद्रमुखी) की ज़रूरत थी''- मक़बूल फिदा हुसैन ने मज़ाक में कहा था। यह घटना सन् 1821 की है। लेकिन अभी तक यह पेन्टिंग लोकप्रिय नहीं हो पाई थी। कुछ फ्रांसीसी बुद्धिवादी जरूर इसे पुनर्जागरण-काल की देन मानते थे। इक्कीस अगस्त 1911 को पेन्टिंग चोरी हो गई और उसमें प्रख्यात कलाकार पेबलो पिकासो का नाम आया जो बाद को बरी हो गया। इसे वहीं के एक नौकर ने चुरा लिया था जिसका नाम विन्सेन्ज़ो पेरूग्गिया था। इस चोरी के पीछे इटालियन राष्ट्रवाद काम कर रहा था। इटली के विश्वविख्यात

चित्रकार लियोनार्डो डा विंसी ने जो मास्टरपीस चित्रांकन किया वह फ्रांस में क्यों रहे जबकि उसे इटली में ही रहना चाहिये। पेरूग्गिया की चोरी पकड़ी गयी। उसे फ्रांस में छह महीने का कारावास भोगना पड़ा जबकि इटली में उसे राष्ट्रवादी माना गया। सच है एक देश के अपराधी दूसरे देश में राष्ट्रवादी माने जाते हैं। चोरी की अवधि में इसकी छह प्रतियां बनाकर अमेरिका में बेचने का प्रयास किया गया। सेटरडे इविनिंग पोस्ट के पत्रकार कार्ल डेकर ने इसकी पूरी कहानी 1932 में प्रकाशित कर दी। बाद को कई बार इसे क्षति पहुंचाने की कोशिश की गई।

चोरी, क्षति पहुंचाने, नकल करने आदि के तमाम प्रयत्नों के बावजूद मोनालिसा की पेन्टिंग पांच सौ साल से बची हुई है। इसके कलाकार के पांचसौवें जन्मदिवस पर इसे प्रदर्शित किया गया। लोवरे म्यूज़ियम के संचालक का कथन है कि वहां 80 प्रतिशत लोग इसे ही देखना चाहते हैं। अत: सन् 2019 से क्यूसिस्टम लागू किया गया है और प्रत्येक ग्रुप इसे देखने के लिए केवल तीस सेकिन्ड ही ठहर सकता है। इसे टोक्यो और मास्को में भी प्रदर्शित किया जा चुका है। देश के बाहर भेजने के पहले इसके बीमा का अनुमान सौ मिलियन डॉलर का था जो 2019 में 660 मिलियन डॉलर का हो गया।

Shalbhanjika now in Gawalior Museum

●●●●●

जिस सौन्दर्य के ध्यान मात्र से तन-बदन में रक्त शिरायें नृत्य करने लगें वहीं से उठी है शालभंजिका की अवधारणा - शालभंजिका की प्रारंभिक अवधारणा की एक झलक लगभग 2100 वर्ष पूर्व निर्मित सांची-स्तूप (विदिशा से चार मील) के उत्तरी तोरण द्वार की वड़ेरियों (आर्कीट्रेव्स) पर मनोरम भावभंगी में अंकित वृक्षकाओं में मिलती हैं जो आम तथा अशोक वृक्ष की शाखाओं को थामे हुये हैं। पर्सी ब्राउन की पुस्तक इंडियन आर्कीटेक्चर (भाग एक) रोलेन्ड की पुस्तक आर्ट एंड आर्कीटेक्चर ऑफ़इंडिया तथा श्री वासुदेव शरण अग्रवाल लिखित भारतीय-कला में शालभंजिका की अवधारणा और अमल पर विस्तार और गहराई से चर्चा करते हुये इशारा किया गया है कि ''सांची की इन्हीं वृक्षिकाओं के अनुकरण पर बाद को शालभंजिका मूर्तियां उत्कीर्ण की गई।'' इनके प्रेरक संदर्भ बौद्ध-आख्यानों में भी है।

उदाहरणार्थ सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) की माताश्री मायादेवी प्रसव के समय लुम्बिनी के शाल-वनों से होकर गुज़र रही थी। वे, विश्राम हेतु वहां रुकी और एक शाल वृक्ष की डाली पकड़कर खड़ी हो गई। तभी सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का जन्म हो गया। इसी त्रिभंग मुद्रा में खड़ी उनकी छवि ने शालभंजिका का रूप ले लिया जो बौद्ध-संदर्भ में धार्मिक अन्यथा धर्मनिरपेक्ष है। वासुदेव शरणजी ने तो एक अन्य चैत्यग्रह (भाजा, महाराष्ट्र) की ऐसी मूर्तियों के विषय में स्पष्ट लिखा है कि ''यहां वृक्ष से मिथुन-मूर्तियों का जन्म उस उत्तर कुरु का प्रतीकात्मक अंकन है जहां स्त्री-पुरुषों के मिथुन चिर यौवन का ओर सर्व सुखों का उपभोग करते हैं और वहां के कल्पवृक्ष सब प्रकार की सुख-सामग्री का प्रसव करते हैं। ...शालभंजिका यहीं से जन्मी हो।''

शालभंजिका-संदर्भ ने मेरा मनोमंथन सर्वप्रथम सन् 1961 में किया जब मुझे एक शासकीय पत्रिका वनश्री का संपादक नियुक्त किया गया। हमें अपनी पत्रिका के इनर-कवर के लिये एक ऐसा प्रतीक चाहिये था जिसमें विज्ञान और रोमांस दोनों हों यानी जो वन-वृक्षों से जुड़ा हो और श्रृंगारिक महत्व का भी हो। वनश्री वन विभाग की पत्रिका थी। तत्कालीन मुख्य वन संरक्षक श्री के.पी. सागरीय वन विशेषज्ञ होने के साथ-साथ कलामर्मज्ञ भी थे। उन्होंने सांची के बहुआयामी शिल्पकला वाले तोरण द्वार में मूर्ति-अलंकरण स्वरूप शिल्पित एक ऐसी मूर्ति का चयन किया जो ऐसा लगता था मानो अभी उतरकर हमसे मुखातिब हो जायेगी। तीस वर्ष तक यह शालभंजिका वनश्री के इनर कवर की शोभा बढ़ाती रही।

क्या यह वृक्ष पूजक युग की प्रतीक थी ?

सांची के अतिरिक्त विदिशा जिले के ही ग्यारसपुर के एक मंदिर में शालभंजिका की मूर्ति थी जिसकी चर्चा इसी लेख में अन्यत्र की जायेगी। इन सभी में भाव-भंगिमा, देहयष्टि, मुद्रा, वस्त्राभूषण आदि को जिस गहराई और बारीकी से उत्कीर्ण किया गया है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इनके शिल्पी पाषाण से भी अधिक किसी और माध्यम में सिद्धहस्त-प्रवीण थे। क्या ये वे शिल्पी थे जो हाथी-दांत के शिल्प में पारंगत थे ? हो सकता है क्योंकि ये भव्य स्मारक

मौर्यवंश के पतन से लेकर शुंगवंश के अभ्युदय तक लगभग पांच शताब्दियों में निर्मित होते रहे। स्वयं सांची का स्तूप 250 ई.पू. (मौर्य युग) से लेकर 53 ई.पू. (शुंगकाल) तक बनता रहा। इसके सभी द्वारों के निर्माण में शताब्दियों का अंतराल था। हो सकता है कि दक्षिण भारत के हस्तिदंत-विशारद शिल्पियों ने यह निर्माण किया हो। यह बात दक्षिणी द्वार के एक लेख में उल्लेख है:

वे दिस केहि दन्त कारे हि रूपकम्म कदम। यह उद्धरण श्री हरिदत्त विद्यालंकर की प्रमाणिक 718पृष्ठीय पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (1972- पृ. 463) से लिया गया है। ''इस महास्तूप को सर्वप्रथम अशोक ने ईंटों से बनवाया... शिलामय रूप शुंग कालीन है... पहली सदी ई.पू. में हुआ... इसकी सूचना दक्षिण द्वार की एक बड़ेरीपर अंकित लेख से मिलती है... इसे आंध्रवंशीय राजा सातकर्णी के मुख्य स्थापति आनन्द ने दान में दिया..इसका निर्माण हाथी दांत का काम करने वालों ने किया...।''

शालभंजिका जैसी कालजयी प्रतिमाओं में यद्यपि शिल्पी की शिल्पकला का बिन्दु प्रमुख है किन्तु उससे भी पहले है शिल्पकार में अनुभूति की अभिव्यक्ति की प्रसव पीड़ा। मौर्य एवं शुंग आर्ट के लेखक श्री नीहाररंजनराय का कथन है कि मौर्य-कला तो केवल राज्याश्रय में पली किन्तु शुंग-कला लक्ष्मीपति श्रेष्ठिवर्ग से प्रेरित थी जिन्होंने अपने शिल्पियों को अपने मनोनुकूल श्रृंगार-प्रतीकों की अवधारणा दी। रोलेन्ड ने आर्ट एंड आर्कीटेक्चर ऑफ़ इंडिया में लिखा है कि इन पीन पयोधरा, प्रथुनितिम्बा एवं देहयष्टि-प्रधान अतिमहीन-वसना यक्षणियों, वृक्षकाओं अथवा शालभंजिकाओं के चित्रण का कारण भी विचारात्मक (कन्सेप्च्युअल) कला ही है। श्रीमंतों और शिल्पियों की यह पीढ़ी आदम के उद्यान से वर्जित फल चखने वालों की अग्रज तो निश्चय ही नहीं थी, अत: उसे एन्द्रियकता का पर्याप्त बोध था। प्रश्न उठता है कि अधिकांश शिल्पी अपना परिवार सुदूर दक्षिण भारत में छोड़कर मध्यभारत में कार्यरत थे, अत: क्या इनके मन में इनकी ''अनन्यहृदया, हृदयरमा और मनोनुकूला'' पत्नियां या प्रेमिकायें नहीं रही होंगी जिन्हें इन अनाम शिल्पकारों की छैनी ने रूपसि से रूपेतर करने का प्रयास किया। तब क्या ये शिल्पकार की स्वप्नसुन्दरियां थीं जिनमें उसने अदृश्य रागात्मक भावनाओं को मनमाफिक आकार दे दिया। इस कला-वैभव ने उनकी पीढ़ी को बुद्ध दर्शन के दुखवाद से तो मुक्ति दिला ही दी होगी। इन निर्मितियों के अंग-प्रत्यंगों की गढ़न देखकर आप यही कहने को बाध्य हो जाते हैं कि: हम कौन से अंग की बात करें अंग-अंग में गीतगोविन्द लिख्यो है।

इन सौन्दर्यासक्त, कलाकारों का प्रेरणास्रोत क्या था ? सौन्दर्यबोध ? सौन्दर्यदृष्टि ? सौन्दर्यरस में आकंठ सराबोर ? चिरंतन को रूपपाश में बांधने की सामर्थ्य ? सौन्दर्य को मात्र वैचारिकता से पदार्थवादी धरातल पर उतारने की उत्कंठा ? नश्वर देह के अमृत शैव-दर्शन की भारतीये सौन्दर्य-चेतना ? और इसका चरम ? देह में अवस्थित होते हुये भी देहभाव से मुक्ति ? देहधारी की देहभान से मुक्ति ? वशिष्ठ मुनि ने देवाधिदेव महादेव से प्रश्न किया था (ऋग्वेद): मृत्योर्मुक्तीय मामृतात अर्थात क्या देहत्याग (मृत्यु) के बाद ही मुक्ति है ? देहराग से देहविराग तक की मंजिल ? थोड़ा शालभंजिका से इतर दृष्टिपात करें तो खजुराहो की मिथुन-मूर्तियों को देखकर किसी शायर ने लिखा था।

मिलते हैं यां बदन से बदन इस अदा के साथ।
जैसे हो कोई आत्मा परमात्मा के साथ।।

शालभंजिका के विचार का सर्वांग वर्णन यू.एन. राय ने अपनी शोधपूर्ण पुस्तक ''शालभंजिका: मोटिफ़ इन संस्कृत लिटरेचर'' में किया है।

इस लेख के प्रारंभ में यह जिज्ञासात्मक वक्तव्य था कि मोनालिसा और शालभंजिका में शायद ही कुछ कॉमन हो। विदिशा जिले में ग्यारसपुर मंदिर की शालभंजिका ने उक्त वक्तव्य में संशोधन करने को बाध्य कर दिया है। दोनों में एक तत्व तो निश्चय ही कॉमन है और वह है उनकी मुस्कान-कूट मुस्कान यानी इन्ट्रीगिंग स्माइल। गूढ़ मुस्कान।

दसवीं सदी में निर्मित ग्यारसपुर के मंदिर की शालभंजिका (जो कि अब वहां नहीं है) सांची की शालभंजिका से एक सहस्राब्दि से ज्यादा जूनियर है। समर्थ पुराविद् श्री नारायण जी व्यास ने एक अनौपचारिक चर्चा में इशारा किया था कि ''ग्यारसपुर की शालभंजिका कहीं अलसकन्या तो नहीं है जो आलस्य-मुद्रा में मानो अंगड़ाई लेने को हो'':

नाज़ो अंदोज़ में, आज़ारो-सितम ढाने में
तुझसे दो हाथ ज़्यादा तेरी अंगड़ाई है।

खैर: तत्समय के एक पुरातत्व संचालक श्री एम.बी. गर्दे को अपने खोजबीन और एक्सकेवेशन अभियान के दौरान संभवत: 1933-34 में ग्यारसपुर मंदिर के भग्नावशेषों से, यह मूर्ति खंडित अवस्था में मिली थी। उस समय इसके शरीर के अवयव हाथ-पांव-सिर आदि टुकड़ों में थे। ''सौभाग्यवश इसका चेहरा बहुत कुछ सही- सलामत था। इसकी ठोड़ी और गरदन एक जगह से थोड़ी

चटक गई थी (क्रैक) जो इस मूर्ति को ठीक-ठाक करने के बाद अभी भी दिखती है। त्रिभंगमुद्रा की इस मूर्ति में ग्रीवा और कटिप्रदेश में मोड़ होने के कारण यह अंग्रेज़ी के अक्षर के S आकार की है। दसवीं सदी की यह शालभंजिका वर्तमान में ग्वालियर के गूजरी महल संग्रहालय में मेटेलिक बैरियर के पीछे से अपनी गूढ़ मुस्कुराहट बिखेर रही है''- विद्वान लेखिका स्नेहा श्रीवास्तव ने लिखा है। ग्यारसपुर मंदिर के हिन्डोला तोरण द्वार पर ऐसी बहुत सी छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। एन्द्रिकता से लबालब ऐसे अलौकिक नारी सौन्दर्य को सुरसुन्दरी मोटिफ़ कहा जाता है। इनमें रूपगर्विता, केशसज्जा, कंदुकक्रीड़ा आदि अनेक भंगिमायें हैं। शालभंजिका संभवत: सुरसुन्दरी प्रतीक का ही एक संस्करण है।

यद्यपि शालभंजिका के ये प्रतीक ईसापूर्व की अनेक निर्मितियों में मिलते हैं किन्तु नवीं शताब्दी के बाद से इस मूर्तिकला को सैद्धांन्तिक रूप से मान्यता मिलने लगी। इसी समय की प्राचीन पुस्तक शिल्पप्रकाशन-लिखित, के अनुसार - ''जैसे पत्नी के बिना घर और नारी के बिना आनंद निरर्थक है उसी प्रकार सुरसुन्दरी-प्रतीकों के अभाव में कोई भी भव्य निर्मिति नीरस है''। संभवत: ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर किसी अनाम शिल्पी ने ग्यारसपुर-मंदिर की इस कालजयी कृति में प्राणतत्व फूंक दिये। इसकी तमाम गहराइयों और गोलाइयों सहित आवरग्लास (रेतघड़ी) जैसी कमनीय आकृति देखते ही बनती है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी उत्तेजक ऊर्जा ने इसकी भोंह-कमान की प्रत्यंचा खींच दी है और इसके अर्धोन्मीलित नेत्रों में कोई अंतरंग गूढ़ार्थ भर दिया है। क्या वह कोई प्रोषित-पतिका नायका है जो रेशमी यादों की रागात्मकता में तल्लीन है ? इसके सिर पर लंबाकार रेखाओं द्वारा इसका केशविन्यास रेखांकित है। पीछे अलंकृत जूड़ा बांधा गया है। कंठ रेखा को स्पर्श करती एकावली, फिर एक और माला और फिर तीसरी हिरण्यमाला उसके वक्षस्थल की गोलाइयों को छूती हुई शोभायमान है। बेल-बूटे अंकित एक पारदर्शी वस्त्र से उसके पृष्ठभाग की कटिरेखा साफ-साफ दृष्टव्य है। वस्त्रों, अलंकारों, केशविन्यास आदि को जिस दक्षता से प्रदर्शित किया गया है वह साफ़ बताता है कि तत्कालीन भारतीय मूर्तिकला किन बुलंदियों पर थी।

मोनालिसा की पेन्टिंग की भांति ही इस मूर्ति को भी कड़ी सुरक्षा में रखा गया है। यह भी फ्रांस और ब्रिटेन सहित अनेक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आकर्षण रही है। सन् 1985 में इसका मूल्य साठ लाख रुपये आंका गया था। फिर भी अपनी मार्केटिंग के मामले में यह अद्वितीय मूर्ति, मोनालिसा जैसी भाग्यशाली प्रतीत नहीं होती। लगभग 700 वर्ष तक यह कला वैभव विधर्मी सत्ता के अंधयुग में गुमनाम रहा। मोनालिसा का छविकार विख्यात है। शालभंजिका के अनाम शिल्पी अज्ञात ही रह गये। आधुनिक पुराविदों द्वारा रूचि लेने के पूर्व तो ऐसा लगता था कि इन गुमनाम शिल्पियों को भवभूति के निम्नांकित श्लोक (मालती माधव) की शरण में जाना होगा:8

उत्पत्स्य तेहि मम कोऽपि समान धर्मा
कालो अह्यं निरवधि: विपुला च पृथ्वी।।

''मेरा जैसा समान धर्मा यानी मेरी कृति का पारखी भले ही कोई उत्पन्न न हुआ हो किन्तु काल निरावधि और पृथ्वी विपुल है यानी कभी न कभी कहीं न कहीं कोई पारखी-पीढ़ी तो जन्मेगी।''

यह हमारी राष्ट्रीय विरासत है? क्या मोनालिसा का तत्कालीन कला-समाज हमारी शालभंजिका के तत्कालीन कलासमाज की तुलना में अधिक कला चैतन्य और गुणग्राही था ? कलामर्मज्ञ श्री प्रयाग शुक्ल जी लिखते हैं - ''वॉन गॉग अपने समय का सर्वश्रेष्ठ कलाकार था किन्तु तबका कला-समाज नहीं।'' शालभंजिका तो अतुलनीय है। तब क्या बेहतर विरासत को खोने वाले हमारे जैसे वारिस कमतर होते हैं वर्ना हमारा कोहेनूर हीरा ब्रिटिश ताज में बंदी न होता ?

- लेखक-वरिष्ठ पत्रकार है।
संपर्क: 9893094221

पुस्तक - समीक्षा

'कला समय' पत्रिका में कला, संस्कृति, साहित्य, इतिहास पुरातत्व, लोक साहित्य, पर्यटन, गीत, ग़ज़ल, कविता इत्यादि विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित की जाती है। प्रकाशनार्थ समीक्षा के साथ पुस्तक की एक प्रति भेजना आवश्यक है।

- संपादक

आलेख

अमृत महोत्सव वर्ष-2021

सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट
'रसरंग'

अमृत महोत्सव में संगीतकारों का योगदान बहुत ही परोक्ष या कहें अति सूक्ष्म है जिसे समझना या उसका आंकलन करना कठिन है। प्रथमत: स्वतंत्रता का पचहत्तरवां वर्ष अमृत महोत्सव के रूप में सम्पूर्ण भारत में मनाया जा रहा है। प्रत्येक स्तर पर स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसरों को स्मरण किया जा रहा है। चाहे वह व्यक्तिगत हो, सामाजिक हो, जनजातीय हो या किसी कारणवश विस्मृत हो गया हो आदि-आदि सभी को यथायोग्य सम्मान एवं समाज में यथोचित स्थान देकर उनकी स्मृतियों को स्थायित्व प्रदान करने का हरसंभव प्रयास किया जा रहा है जो आवश्यक भी है एवं कर्त्तव्य परायण भी। संगीतज्ञों के सूक्ष्म योगदान को उजागर करने का प्रयास इस लेख में है।

यह सत्य है कि संगीतज्ञों का एक भी उदाहरण मेरे अध्ययन में नहीं आया जिससे स्वतंत्रता के संदर्भ में उनके प्रत्यक्ष योगदन का वर्णन किया जा सके। फिर भी उनका योगदान अवश्य है। भले ही संगीतज्ञों ने प्रत्यक्ष रूप से आंदोलन या विरोध न किया हो परन्तु अपनी विद्या (संगीत) को पूर्णरूपेण संरक्षित किया। यही उनका विशेष योगदान है। इसका कारण विदेशियों को संगीत शिक्षा के लिये आज भारत आना पड़ता है।

इस संदर्भ में मेरे आध्यात्मिक गुरुजी परम श्रद्धेय, 108 श्री गणपति जी महाराज, (भांडेरी फाटक दतिया) लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के भाषण का अंश यदा-कदा कहते थे- ''लोकमान्य तिलक बोलता नहीं था... आग उगलता था- आग...। उसका भाषण सुनकर जनता का खून खौल जाता था।'' वे आगे कहते - ''समाज के प्रत्येक वर्ग को अपनी बुद्धि सामर्थ्य के अनुसार अपने स्तर पर कार्य करते हुए समाज की सहायता करना एवं संगठित होकर विदेशी शासन की समाज विरोधी नीतियों का सामना करना चाहिये। भारतीय संस्कृति, परम्परा, पारिवारिक संस्कार, कला आदि को सुरक्षित रखना एवं सहेजना भी हमारा कर्तव्य है। चूंकि इस विशाल शासन प्रणाली से कोई भी अकेले नहीं लड़ सकता, जेल नहीं जा सकता, आंदोलन में शामिल नहीं हो सकता। परंतु अपने स्तर पर स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग अवश्य दे सकता है। अत: अपनी कला, संस्कृति, रीति-रिवाज, सामाजिक संस्कार आदि को सुरक्षित रखना भी उतना ही आवश्यक है जितना आंदोलन में भाग लेना या क्रांतिकारियों की परोक्ष रूप से सहायता करना''। ऐसी विषम परिस्थितियों में संगीतकार ही ऐसा प्राणी है जो समाज में होने वाले आंदोलन, दंगा-फसाद आदि से दूर ही रहा। साधारणत: संगीतकार लड़ाई-झगड़ों से दूर ही रहता है। उनमें शामिल नहीं होता। परन्तु अपने इल्म (गुण) में कभी पीछे नहीं रहा, जटिल से जटिल एवं गूढ़ रहस्यों की गहराई मापने में अग्रसर रहा। अपने गुण के माध्यम से अपनी श्रेष्ठता प्रत्येक युग में सिद्ध करता रहा है। इसी आधार पर संगीतज्ञ विभिन्न राजे-रजवाड़ों के दरबारों में सिरमौर रहे एवं अपने गुण को सहेजने में पूर्ण रूप से सजग रहे।

संगीत जगत में एक धारणा व्याप्त है कि संगीतज्ञ अपनी विद्या अपनी विद्या, परिवार के सदस्य को ही सौंपता है। यह धारणा निराधार है। वर्तमान संगीत जगत में जितने भी संगीत-घराने प्रचार में हैं वे सभी शिष्यों के द्वारा ही प्रचार में है। फिर चाहे ग्वालियर का संगीत घराना हो या अन्य कोई भी। सभी घराने शिष्यों के द्वारा ही प्रचार में हैं। उनके आदि पुरुष या रक्त संबंधी नहीं के बराबर है। उनके आदि पुरुष या रक्त संबंधों नहीं के बराबर हैं। अर्थात् संगीतज्ञों ने मुक्त हृदय से संगीत विद्या का दान किया यह प्रमाणित होता है। शिष्यों ने भी अपनी परम्परा या घराने का ईमानदारी एवं निष्ठा के साथ प्रचार प्रसार किया। लेखक यह कहना चाहता है कि संगीतज्ञों ने अपनी संगीत-विद्या विदेशियों को कभी नहीं सिखाई, जो पश्चिम से आये थे। यद्यपि विभिन्न राजा-महाराजाओं के दरबारी गायक/वादकों ने समय-समय पर उनका भरपूर मनोरंजन अवश्य किया। इसके विपरीत ये विदेशी भारत वर्ष की बहुमूल्य वस्तुओं को जितना ले जा सकते थे, ले गये। परन्तु संगीत उनकी पहुँच से पूर्ण रूपेण बचा रहा। संगीतविधा न ले जा सके और सीख

भी नहीं पाये। इसका श्रेय भारतीय संगीतकारों को जाता है। उन्होंने अपना संगीत पूरी तरह से सुरक्षित रखा। यहाँ तक कि उन भारतियों से भी बचाकर रखा जिनसे संगीत बिखरने की संभावना थी।

संगीतज्ञों के (अपनी विधा को सुरक्षित रखने में) तीन बिंदुओं में विशेष महत्वपूर्ण है-

1. अपने राग स्वरूप, बंदिशों (ध्रुपद-धमार, ख्याल-तराना, त्रिवट, टप्पा आदि) की सुरक्षा।
2. आवाज के क्रमिक विकास की तकनीक- यह तकनीक वर्तमान में दुर्लभ है। इस विषय पर कुछ साहित्य अवश्य मिलता है। परन्तु यह विषय प्रायोगिक है, प्रत्यक्ष रूप से ही यह तकनीक गले के विकास में उपयोगी होती है। अन्यथा विभिन्न प्रकार के विकार आवाज में आ जाते हैं। संगीतकार जाने-अनजाने ही सही यह तकनीक सुरक्षित रखे हैं।
3. अनुशासन- संगीतकार, छात्र-छात्राओं (शिष्यों) में अनुशासन के बीज संस्कारित करते हैं। संगीत-शिक्षा के समय, गुणीजनों के बीच में उठते बैठते हुए, मैहफिल में श्रोता के रूप में आदि ऐसे संस्कार हैं जो गुरु के सान्निध्य में रहते हुए समझ में आते हैं। ये संस्कार समाज को भी प्रभावित करते हैं। समाज में अनुशासन का पाठ भी संगीतज्ञों द्वारा परोक्ष रूप से प्रचारित किया जाता है।

अत: विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए संगीतज्ञों ने अपनी परम्परा एवं विरासत को सहेजकर सुरक्षित रखा, यह सूक्ष्म योगदान है जिसे अमृत-महोत्सव में भुलाया नहीं जा सकता।

-लेखक-वरिष्ठ शास्त्रीय गायक है।
97-आनंद भवन, सर्वधर्म 'सी' सैक्टर
कोलार मार्ग, भोपाल (म.प्र.)-462042
मो.: 9425673106

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति, साहित्य एवं समसामयिक विषयों के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

संस्मरण

निमाड़ में स्वतंत्रता संग्राम के ध्वजवाहक

कुमार कार्तिकेय

भारत की स्वतंत्रता के 75वें वर्ष के उत्सवी वातावरण के साथ ही उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के संस्मरण मेरे स्मृतिपटल पर पुन: उभरने लगे जो मैंने अपने बचपन में कई बार सुने थे। अस्सी और नब्बे के दशक में स्कूलों में लगने वाली लम्बी-लम्बी छुट्टियों में ननिहाल खण्डवा जाते थे, तब खेलकूद करने के साथ ही कई नई बातें भी जानने को मिलती थीं। दादा (रामनारायणजी उपाध्याय) और बाबूजी (शिवनारायणजी उपाध्याय) से संत सिंगाजी और स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी घटनाओं को जानने और उन्हें बार-बार सुनने में खास रुचि रहती थी। साथ ही दादा का अक्सर भोपाल आना होता ही था, तब भी मैं और दोनों बहनें उनसे लम्बी चर्चाएँ करते थे। दादा निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के संघर्ष के बारे में बताते थे। दादा की महात्मा गाँधी आदि महान विभूतियों से भेंट, सेनानियों को अंग्रेजी शासन द्वारा दी जाने वाली कठोर यातनाओं और उस समय के वातावरण का वर्णन सुनकर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते थे।

मध्यप्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में चले स्वतंत्रता आन्दोलन में अनेकों सेनानियों ने भागीदारी की और कईयों ने अंधेरी कोठरियों में यातनाएँ सहन की। कई सेनानियों ने आन्दोलन में सक्रिय योगदान करने के साथ ही सामाजिक सुधार की दिशा में भी कार्य किया। अपने गाँव और शहर से ही समाज को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने के लिए कार्य किया गया। सेनानियों ने स्वप्रेरणा और अंतर्मन से उद्वेलित होकर कार्य प्रारंभ किया। इन सभी महान सेनानियों के विषय में लिखना तो स्थानाभाव के कारण संभव नहीं है। यद्यपि तीन महान विभूतियों के संस्मरण प्रस्तुत हैं। संस्मरण लेखन के लिए इन तीन विभूतियों का चयन किस आधार पर किया गया, इस आधार की रूपरेखा बनाने की योग्यता तो मेरे में नहीं है। यद्यपि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष के लिए तीन विभिन्न कार्यशैलियाँ अपनाने के आधार पर इन तीन विभूतियों के संस्मरण प्रस्तुत है। गाँधीजी से मिले मंत्र पर सदा चलने वाले दादा (रामनारायणजी उपाध्याय) की स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के विषय में एक पृथक संस्मरण दिया जा रहा है। अत: उनके विषय में प्रस्तुत लेख में अधिक उल्लेख नहीं है।

प्रारंभ करते हैं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी मोठाजी (बड़े भाई) यानी चम्पालालजी गुर्जर के योगदान के साथ। इनके उदात्त हृदय और उदार विचारों के बारे में दादा के साथ ही मेरी माँ से भी सुना है। तत्कालीनजातिगत भेदभावपूर्ण समाज की खासियत थी सामाजिक बहिष्कार करना। सामाजिक बहिष्कार के भय से कई जागरुक लोग समाज की कुरीतियों के दूर करने की दिशा में बढ़ाए गए अपने कदम वापस ले लेते थे। निमाड़ में स्वतंत्रता आन्दोलन और सामाजिक सुधार के लिए निर्भीकता से लड़ने वालों के लिए प्रकाश स्तंभ की तरह थे चम्पालालजी गुर्जर। दादा ने बताया कि उन जैसे व्यक्तित्व बिरले ही होते हैं।

सन् 1908 में जन्मे चंपालाल भाई की उम्र 20-22 साल थी, तब उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। पूरे परिवार के संचालन की जिम्मेदारी उनके कंधों पर ही आ गई थी। पूरे परिवार की जिम्मेदारी का उन्होंने कुशलता से निर्वहन करते हुए भी निर्भीक जीवन जिया। पूरे गाँव में सामाजिक सुधार की क्रान्ति की चिन्गारी जलाई। साथ ही स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी भी की।

दादा का विवाह निमाड़ के बोरगाँव, असीरगढ़ के मध्य गाँव कुमठी के साध परिवार में हुआ था। दादा कहते थे, उस वनक्षेत्र के गाँव में भी गाँधी की आत्मा बसती थी। मैं जब भी कुमठी जाता था, मोठाभाई याने चम्पालाल गुर्जर से बिना मिले नहीं आता था। दादा कहते थे चम्पालाल भाई जैसे लोगों के कारण ही धर्म और मानवता जीवित है। दादा बताते थे कि एक घटना ने चम्पालाल भाई का जीवन ही बदल दिया। एक बार वे खेत से घर लौट रहे थे, तो देखा कि एक गरीब मिट्टी के घड़े में नाले के गंदे पानी पर से हथेली से कचरा हटा-हटा कर भर रहा था। उन्होंने रुककर पूछा, 'इ काई करी रह्योज'। (यह क्या कर रहे हो) पानी भरने वाले ने उत्तर दिया - 'पेणऽ खऽ पाणी भरी रह्योज' (पीने के लिए पानी भर रहा हूँ)।

चम्पालाल भाई ने कहा यह तो गंदा पानी है, कैसे पीयोगे। तो उसने कहा, हम अछूत हैं, हमारे लिए अच्छे पानी के कुएँ कहाँ हैं? चम्पालालभाई ने उसका घड़ा अपने हाथ में लिया और उसकी भावटी (भुजा) पकड़कर अपने आँगन के कुएँ के पास लेकर आ गये। फिर उसको बाल्टी देते हुए अपने आँगन के कुएँ से पानी खींचकर घड़ा भरने के लिए कहा। वह व्यक्ति डर से काँपने लगा। समझाने पर जब उसने बाल्टी पानी खींचकर घड़ा भर लिया, तब चम्पालाल भाई ने उससे कहा, 'आज से तुम्हारी बस्ती के लोग मेरे आँगन के कुएँ से पानी भरेंगे।' गाँव में यह बात फैलने पर समाज के प्रमुख लोगों ने चम्पालाल भाई को चेतावनी दी कि ''हम सब तुम्हारा बहिष्कार कर देंगे।'' चम्पालाल भाई ने कहा, 'मुझे बहिष्कार की परवाह नहीं। ये सब लोग मेरे आँगन के कुएँ से ही पानी भरेंगे।' उनका सामाजिक बहिष्कार शुरु हो गया, परंतु उन्होंने हार नहीं मानी। धीरे-धीरे कुछ वर्षों में सब सामान्य हो गया। गाँव की इस घटना के बाद चम्पालाल भाई भी गाँधीजी से मिलने गए। गाँधीजी ने उनसे कहा, 'गाँव की सेवा करो, गाँव में ही विश्व है।' चम्पालाल भाई को गाँधीजी के आन्दोलन के सिलसिले में कई बार जेल की सजा भी हुई।

पं भास्करराव चवरे
स्वतंत्रता संग्राम सेनानी - पूर्वी निमाड़ खण्डवा (म प्र)

सामाजिक सुधारों और लोकप्रियता के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संसदीय राजनीतिक प्रणाली में आगे बढ़ने के कई अवसर उन्हें उपलब्ध थे। लेकिन मोठाजी अपने कार्यक्षेत्र यानी सामाजिक समरसता की प्रगति से संतुष्ट थे। वे उसी सामाजिक सुधार की धारा को समय के साथ और अधिक सुदृढ़ करना चाहते थे। मेरी माँ, डॉ सुमनजी चौरे की बड़ी माँ (बड़ी बाई) का मायका मतलब दादा की ससुराल ग्राम कुमठी का ही है, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया है। बड़ी बाई के साथ माँ का कई बार कुमठी जाना होता था। माँ जब भी कुमठी जाती थीं, तो मोठाजी से अवश्य मिलती थीं। मेरे लिए यह गर्व का विषय है कि मेरी माँ के विवाहोत्सव में भी कई स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के साथ ही मोठाजी, भास्कररावजी चौरे और पगारे दादा जैसे महान लोग भी आये थे। माँ भी मोठाजी के विषय में बताती हैं। वे सुनाती हैं कि खेती के कामकाज के साथ ही मोठाजी लोगों का प्राथमिक उपचार और औषधि भी करते थे। उस समय चिकित्सकों की संख्या बहुत कम थी और अन्दरूनी क्षेत्रों में तो चिकित्सक उपलब्ध ही नहीं थे। वे उपचार नि:शुल्क उपचार करते थे। शुल्क लेने से बहुत मना करने के बाद भी यदि कभी कोई संपन्न व्यक्ति पैसे देता था, तो मोठाजी उस धन को एक डिब्बे में रख देते थे। फिर उस धन का उपयोग गरीबों के उपचार और उनके लिए औषधियाँ खरीदने में करते थे। वे भी उन नि:श्छल स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों में से एक थे, जो स्वतंत्र भारत में भी समाज के मूक सेवक बने रहे।

दादा और साथ ही मेरी माँ भी एक और सेनानी की कई बार चर्चा करते थे। उनको दी गई यातनाओं और सजाओं के बारे में जानकर हमारा मन अंग्रेजों के प्रति रोष से भर जाता था। वे महान विभूति थे भास्कररावजी चौरे। खण्डवा में हमारे घर 'साहित्य कुटीर' के सामने से ही पत्थर वाली गली से उनके घर का रास्ता जाता था। वो ग्राम भैंसावा के रहने वाले थे और बाद में खण्डवा के इस घर में किराए से रहने आ गए थे। बहुत छोटे-से जीर्ण-शीर्ण घर की दूसरी मंजिल पर रहते थे। सँकरे से जीने से ऊपर जाने पर एक छोटे से कमरे में टाट की आड़ से एक हिस्सा अलग किया गया था जो कि चौका था, उसमें टीन के कुछ पीपों में आटा-दाल, नमक आदि थे। कमरे में वकालत की फाइलें थीं। वहीं पर दरी और बिस्तर थे। यही उनका कार्यालय था। स्वतंत्रता के बाद वकालत करते थे। गरीब जरुरतमंदो के मुकदमे नि: शुल्क लड़ते थे। खण्डवा के पास के गाँव में उनकी छोटी सी खेती थी। उनकी पत्नी और बेटी वहीं रहते थे। कोई कल्पना भी नहीं सकता कि इतनी सादगी से अभावों के बीच रहने वाले भास्करजी से शक्तिशाली अंग्रेज सरकार कितनी भयग्रस्त थी। भास्कररावजी हिन्दुस्तानी लाल सेना के सैनिक थे। ये सेना फौजी प्रकार का संगठन था जिसे प्रजातांत्रिक तरीके से बनाया गया था। महात्मा गाँधी के व्यक्तिगत सत्याग्रह के निर्णय की घोषणा के पहले ही हिन्दुस्तानी लाल सेना ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरु कर दिया था। बाद में स्वयं गाँधीजी ने लाल सेना के सैनिकों को व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए चुना था। अगस्त आन्दोलन के पहले लाल सेना को समाप्त करके सत्याग्रह में सैनिक शामिल हो गए थे। लेकिन तब तक अंग्रेजों ने लाल सेना को खतरनाक मानकर अवैध घोषित करके उसके कार्यालय सील कर दिए थे और सैनिकों की गिरफ्तारी के वारंट निकाल दिए थे। आचार्य

दाण्डेकरजी, बागड़ीजी और काश्मीरीजी भूमिगत हो गए थे। इन्हीं की अगुवाई में हिन्दुस्तानी लाल सेना का संगठन किया गया था। आन्दोलन पुर्नसंगठित करने के लिए बम्बई में हुई बैठक के बाद सैनिकों के लिए रिवॉल्वर, स्टैनगन, रायफल और कारतूस दिए गए। इनको सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी चौरेजी को दी गई थी।

नागपुर में चौरेजी को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन पुलिस दल के बीच से ही चौरेजी ने हथियारों का थैला गुप्त रूप से अपने एक साथी के माध्यम से सुरक्षित निकाल दिया। संगठन और हथियारों के बारे में जानकारी लेने के लिए चौरेजी को अमानुषिक शारीरिक और मानसिक यातनाएँ दी गईं। चारों ओर से चौरेजी को घेरकर डंडों और रायफलों से पिटाई करना तो नियमित यातना थी। चौरेजी ने भोजन त्याग दिया क्योंकि उन्हें संदेह था कि भोजन में नशीला पदार्थ देकर उनसे रहस्य खुलवाए जा सकते हैं। चौरेजी को लगातार जगाए रखने के लिए तीन पालियों में पुलिस कर्मियों की ड्युटी लगती थी, ताकि थकावट और भूख के कारण वे गुप्त बातें बता दें। आखिरकार कोर्ट में मामला जाने के बाद उन्हें जेल भेजा गया। 5–5 साल की तीन सजाएँ एक साथ चलीं। लाल सेना के सैनिक होने के कारण चौरेजी के परिवार को भी पुलिस परेशान करती थी। देश के लिए उनकी पत्नी का समर्पण भी वन्दनीय था। उनकी पत्नी सुहाग संबंधी सारे चिन्ह छोड़कर सफेद साड़ी में अपनी पहचान छिपाकर गाँव–गाँव घूमतीं रहती थीं। लोगों के बीच अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विचार जाग्रत करती रहती थीं। भास्कररावजी चौरे जैसे सहनशील और धैर्यवान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी से निमाड़ की धरती और पावन हो गई।

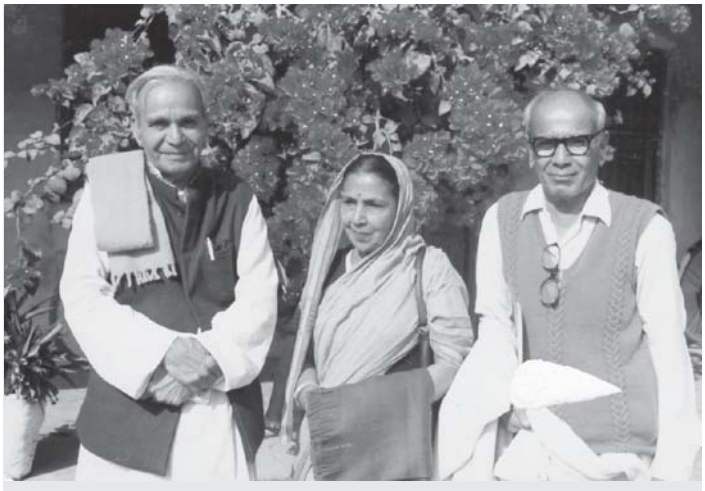

बाईं ओर श्री सुकुमार जी पगारे और गुलाबी स्वेटर में दादा रामनारायण जी उपाध्याय। बीच मे श्रीमती सरस पगारे जी

इस संस्मरण की धारा के तीसरे महानायक हैं सुकुमारजी पगारे। आपका बचपन मेरे ननिहाल के परिवार के साथ कालमुखी ग्राम में बीता फिर आप इटारसी चले गई थे और बहुत बाद में होशंगाबाद में रहने लगे थे। मेरा सौभाग्य रहा कि कई बार मैंने उनके दर्शन किए। वे कई बार भोपाल हमारे घर आते थे और हम भी उनके दर्शन करने होशंगाबाद जाते थे। वे भी किराए के घर में ही रहते थे। हम लोग स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े कई प्रकार के संस्मरण उनसे सुनते थे। सेवाग्राम में पगारे दादा गाँधीजी से मिले और सहकारिता के प्रसार के विषय में अपने विचार उन्होंने गाँधीजी को सुनाए। गाँधीजी ने लिखकर सेवाग्राम के निवासियों को पगारे दादा के विचारों को सुनने और समझने के लिए कहा। पगारे दादा गाँधीजी के रचनात्मक और आन्दोलनात्मक कार्यों से जुड़े रहे। नेताजी सुभाषचंद्र बोस जैसे कई नेताओं से उन्होंने कई बार निर्देशन लिया और इटारसी में ऐसे सेनानियों के भाषण लोगों को जागरुक करने के लिए करवाए। उन्होंने भी स्वतंत्रता संग्राम के लिए कई बार जेल की सजा भोगी। स्वतंत्रता से पहले ही संसदीय लोकतंत्र की दिशा में देश बढ़ने लगा था। 1946 में पगारे दादा को इटारसी विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ने के लिए उतारा गया। उनका निर्वाचन निर्विरोध हुआ। फिर वे समाजवादी दल में आ गए। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजी की प्रेरणा से गाँधीजी की समाधि पर दस वर्षों तक आदिवासियों की सेवा करने का संकल्प लिया। वे इंफाल जाकर नागाओं के बीच राष्ट्रीयता के प्रचार का कार्य करते रहे।

निमाड़ के स्वतंत्रता संग्राम के इन तीनों महानायकों के संस्मरणों से इस संग्राम की तीनों प्रमुख धाराओं के दर्शन हो जाते हैं। मोठाजी जहाँ स्वप्रेरणा से समाज सुधार के कार्यों के माध्यम से इस संग्राम से जुड़े वहीं लाल सेना के बहादुर सैनिक भास्कररावजी चौरे की कार्यशैली में क्रान्तिकारियों की पूरी छवि थी। साथ ही पगारे दादा गाँधीजी के आन्दोलन के सभी तरीकों का पालन करते हुए संग्राम में भागीदारी कर रहे थे।

प्रत्येक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एक महान और प्रेरणादायी व्यक्तित्व का धनी था। हर गाँव में सेनानियों के टोल बन रहे थे। स्वतंत्रता आन्दोलन के गाँव–गाँव तक पहुँचने से अंग्रेजी शासन के पैर उखड़ने लगे। मातृभूमि को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने के लिए सीमित संसाधनों के माध्यम से विभिन्न चुनौतियों का सामना हर सेनानी कर रहा था। उनके परिवारजनों ने भी कम कष्ट सहन नहीं

किए। स्वतंत्र भारत में भले ही हमने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को शासकीय तौर पर परिभाषित कर लिया हो, लेकिन इन महान विभूतियों को परिभाषा में बाँधना, उनके समर्पण और त्याग के साथ अन्याय करने से कम नहीं था। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने स्वतंत्र भारत में भी जनसेवा के मार्ग को चुना। अपने प्रयत्नों के माध्यम से वे नई पीढ़ी के भारत को तैयार करने के लिए कार्य करने लगे।

सभी सेनानी मातृभूमि को विदेशी शासक की दासता से स्वतंत्र करवाने के लिए ही अधिनायकवादी शक्ति से लड़ रहे थे। एकमात्र उद्देश्य देश को स्वतंत्रता दिलाना ही था और अपने इस संकल्पपूर्ति के बाद वे पूर्ण संतुष्ट थे और स्वतंत्रता संग्राम के माध्यम से जो सामाजिक परिवर्तन वे ला सके उसे भी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि की दिशा में देखते थे।

मातृभूमि को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाना ही उनके संग्राम का एकमात्र लक्ष्य था। स्वतंत्र भारत के लोगों, संस्थाओं और सरकारों से उन्होंने किसी भी तरह का प्रतिफल नहीं चाहा। जरुरतमंद लोगों की सेवा और उनके उत्थान की दिशा में वे निरंतर कार्य करते रहे। जिन गरीब जरूरतमंदों की सेवा वे करते थे, उन्हीं लोगों की तरह आडम्बरहीन जीवन वे सेनानी जीते थे। हर जरुरतमंद अपना काम पूरा होने की आकाँक्षा लिए विश्वास के साथ इन सेनानियों के पास आता था।

आर्थिक अभावों के बीच गृहस्थी चलाना और जनसेवा करना इन सेनानियों के लिए बेहद चुनौतीपूर्ण रहा। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का त्यागमय, सरल और संतोषी जीवन उनके व्यक्तित्व का एक और सशक्त पक्ष है। हर एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का जीवन हम सभी के लिए सदैव प्रेरणादायी रहेगा।

स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों को कोटि-कोटि प्रणाम

वन्दे मातरम्

- 301, प्रथमेश विला, प्लॉट 28, सेक्टर 18,
मानसरोवर, कामोठे, नवी मुंबई 410209
मो.: 9819549984, kumarkartikey22@gmail.com

पत्रिकाओं का संसार

प्रतिष्ठित पत्रिका 'अक्षरा' में कला समय की चर्चा...

कला समय के दो संग्रहणीय विशेषांक

-जवाहर कर्नावट

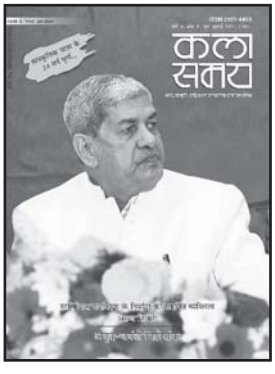

'कला समय' पत्रिका ने अपनी प्रकाशन यात्रा के 24 वर्ष पूर्ण कर संपूर्ण कला जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बना ली है। 'कला समय' के अनेक विशेषांक अब कला एवं सांस्कृतिक जगत की धरोहर बन चुके हैं। हाल में प्रकाशित 'कला जगत' के दो विशेषांकों की भी व्यापक चर्चा हुई है। कला समय का जून-जुलाई 2021 अंक साहित्यिक पर्यावरण के निर्माण को समर्पित व्यक्तित्व श्री अरुण तिवारी के अमृत जयंती विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। 176 पृष्ठीय विशेषांक में तिवारी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों को प्रख्यात साहित्यकारों, समीक्षकों, पत्रकारों आदि ने अपनी लेखनी से बखूबी प्रस्तुत किया है। श्री धनंजय वर्मा, श्री कमलकिशोर गोयनका, श्री लीलाधर मंडलोई, श्री महेश दर्पण, श्री सूर्यकांत नागर, श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, श्री गिरीश पंकज आदि ने श्री तिवारी की साहित्यिक पत्रकारिता, सामाजिक सरोकारों एवं उनके अप्रतिम व्यक्तित्व को व्याख्यायित कर इस अंक को संग्रहणीय बना दिया है। इसी प्रकार अगस्त-सितंबर 2021 अंक प्रसिद्ध चित्रकार प्रो. राजाराम स्मरण विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। चित्रकार, संपादक, साहित्यकार आलोचक, शब्द साधक प्रो. राजाराम के देश भर में फैले मित्र लेखक, तथा शिष्य शिक्षकों ने अपने रचनात्मक सहयोग से इस अंक को प्रतिष्ठा प्रदान की है। इसके अलावा इस विशेषांक में प्रो. राजाराम द्वारा प्रमुख कला विषयों पर लिखित उनके आलेखों को भी शामिल किया गया है। विश्व कविता शीर्षक से राजाराम जी की कविताएँ और रंग वीथि में राजाराम जी के जीवनवृत्त के कुछ छायाचित्रों को भी स्थान दिया गया है। संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास ने अपनी गहन कलात्मक दृष्टि से कला जगत में श्री राजाराम के योगदान को इस विशेषांक के माध्यम से प्रस्तुत कर भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

लेखक - निदेशक, हिन्दी भवन, भोपाल है।

आलेख

स्वाधीनता, राष्ट्र धर्म और भारत

शशिकान्त लिमये

''मानवता मानव के संग एक खून का रंग'' यही है स्वाधीनता का सच्चा सुख जो राष्ट्र धर्म के प्रति निष्ठावान् और परिश्रमवान् मानव समुदाय को सुखी और समृद्ध बनाता है। राष्ट्र को सुखी रखने का एकमात्र उपाय यही है कि अच्छे नागरिक बनकर अपने कर्तव्यों का पालन करो, मैं हमेशा राष्ट्र धर्म को सर्वोपरि मानता हूँ अपने देश की माटी से सभी को प्रेम करना चाहिये। बहुत से सिरफिरे लोग स्वतंत्रता के पश्चात् के दिनों में आन्दोलन रत होकर देश की एकता में बिना कारण ग्रहण लगाकर प्रजा की दैनिक दिनचर्या को अव्यवस्थित करने का दुस्साहस करते हैं। जो कभी भी देश हित में नहीं है। यदि हम अकारण खेतों में आग लगायेंगे तो भूख की आग शांत नहीं होगी, यदि घरों की तोड़फोड़ करेंगे तो रहेंगे कहाँ? यदि मारकाट करेंगे तो जन-जन का जीना दूभर हो जायेगा। हमारी सारी सम्पत्ति हमारी होने केसाथ-साथ हमारे देश की धरोहर है। देश पृथ्वी का भाग है और पृथ्वी हमारी विश्व की एकमात्र मानव सहित सम्पत्ति है। आदर्श राष्ट्र की संकल्पना ये विश्वशांति का मार्ग प्रशस्त होता है। संत ज्ञानेश्वर ने इस संकल्पना को अपने एक ही श्लोक में स्पष्ट किया है,

''हे विश्वची माझे घर/ ऐसी जयाची मती स्थिर/किंबहुना चराचर/ आपणची जाला।''

जिस मानव में यह सोच बनेगी कि यह सारा विश्व ही मेरा घर है, यह सारा चराचर जगत केवल मेरे लिये ही बना है जिसका मैं अणुमात्र हूँ, जिसकी सुरक्षा, सम्मान और आदर्श जीवन की संकल्पना में मेरा सहयोग अथवा योगदान सदा बना रहेगा। वह विश्व का सर्वश्रेष्ठ मनुष्य होगा। ऐसी श्रेष्ठता केवल ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' जैसे वैदिक आचार में ही प्राप्त होगी। भारत की श्रेष्ठता सदा ही ''सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय'' की भावना से ही समझ आती है। यही बुद्धिमता और विचारों से परिपूर्ण मानव का महामान व समुद्र ही आदर्श भारत का स्वप्न होगा। यदि विश्वव्यापी बनना है तो हमेशा के लिये व्यक्तिगत स्वार्थ, अहंकार और दुराचरण के नागवाश के बंधनों को सदैव त्यागना होगा। जब तक स्वार्थ लोलुपता रहेगी, मानव को षड्रिपुओं का देश सहना पड़ेगा।

यह सारा विश्व, महानता के आदर्शों से सदैव महकता रहा है। विश्व के कई महापुरुष अपने सद्गुणों के कारण जन जन के हृदय पटल पर अंकित होकर ईश्वरत्व को प्राप्त कर सके। यह गुण भारत की माटी में होने के कारण इसकी छवि प्राचीनकाल से ही विश्व गुरु बनकर विश्व बन्धुत्व की भावना को फैलाने की रही है।

प्राचीन काल में साधनों की कमी थी, प्रचार माध्यमों का अत्यन्त अभाव था परन्तु गाथाओं की आपसी चर्चाओं के कारण अनेकों राजा, ऋषि, संत और साहित्य प्रणेता विश्व में लोकप्रिय हुए। यही इस माटी की सुगंध है जो विश्व के कोने कोने में फैलकर उसे उर्जावान बनाती है।

आज के समय में, विज्ञान ने प्रचार के अत्याधुनिक साधन प्रदान कर मानव की बुद्धि को प्रगल्भ और समृद्ध बना दिया है। हर व्यक्ति इस तंत्र का उपयोग कर हजारों साल जीने की होड़ में लगा हुआ है। परन्तु चंद वर्ष के जीवन में वह अपनी इस मंशा को पूर्ण करने में विफल होने के कारण, सत्ता, पद लोलुपता और धन की लालसा के साथ छपास की प्यास बुझाने के लिए निरंतर दौड़ लगा रहा है। जो एक अंधी दौड़ है जो मृत्यु के आवरण के ओढ़ लेने के बाद ही समाप्त होती है। प्रत्येक व्यक्ति प्रयास में असफल होकर हाथ मलता रह जाता है।

राष्ट्र धर्म, निस्वार्थ स्वयं सिद्धता का एकमात्र मार्ग है जो इस मार्ग का अनुशरण करते हैं वह चाहे अच्छाई के प्रतीक हो या बुराई के प्रतीक राष्ट्रधर्म के प्रति प्रतिबद्ध होकर अजर अमर हो जाते हैं। राष्ट्र धर्म मर्यादा की सीख देता है जिसके साथ निस्वार्थ धरती की सेवा करने वाले व्यक्ति के रूप में प्रतिपादित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिये। तभी सच्चे अर्थों में हम राष्ट्र सेवक कहलाने योग्य होंगे।

हमारा इतिहास हमेशा अस्तित्व के संघर्ष की कहानियों से भरा पड़ा है। रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथ जो कि धर्म ग्रंथों में

आदर्श माने जाते हैं। वह भी युद्ध की भयावह हानियों और दुष्परिणामों से आगाह तो करते हैं परन्तु छल कपट और दंभ से परिपूर्ण मानव समाज सदा ही युद्ध संघर्ष में ही हल खोजने में लगा हुआ है। इसके लिये मर्यादा की सीमा उल्लंघन कर नफरत और वैमनस्य की जड़ों को खाद पानी देने का कार्य भी किया जाता है जो जायज नहीं लगता। प्राचीन युद्धों में भी मर्यादाओं का उल्लंघन हुआ है फिर भी किसी हद तक मर्यादाओं का पालन भी किया है। इसके अप्रतीम उदाहरण महाभारत और रामायण में देखने को मिलते हैं।

रामेश्वरम् की स्थापना युद्ध के लिये की गयी थी परन्तु रावण भूतनाम दशग्रीव महापंडित और शिवभक्त थे राम द्वारा पोरोहित्य के लिये ऋषियों के आग्रह पर बुलाये जाने पर स्वयं उपस्थित होकर, शिवलिंग की प्राण प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न कराने का आदर्श स्थापित किया। जिस मर्यादा पुरुषोत्तम राम का शत्रु इतना विचारवान् और सहृदय था तो रावण के प्रति भी एक आस्था का भाव उत्पन्न अवश्य होता है जो राम को देवत्व प्रदान करता है। महाभारत भी युद्धकाल में रात्रि के समय कौरव पाण्डवों के परस्पर कुशलक्षेम की कहानियों से परिपूर्ण है।

उस काल में युद्ध भी अपने आदर्श स्थापित करते थे जो अंततोगत्वा धर्मयुद्ध कहलाये जिन्हें कालान्तर में अधर्म पर धर्म की विजय कहा गया।

राष्ट्र धर्म में वैचारिक मतभेद को मान्यता है परन्तु अपनी बात को सही मानकर आलोचना को राष्ट्रधर्म स्वीकार नहीं करता। यदि विचारों में मतभेद है तो समालोचना से सारसार को एकत्र कर राष्ट्र धर्म के अमृत से देश को मजबूत करना श्रेयस्कर है। मतभेदों को मनभेद में परिवर्तन करना श्रेयस्कर नहीं होगा इससे सभी का नुकसान है।

प्राचीन काल में परम्परा थी कि शत्रु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। यह व्यावहारिक रूप में अमानवीय था, क्योंकि युद्ध में हारने वाला अपने प्राणों की आहुती देता था अथवा पकड़े जाने पर उसे मृत्यु दण्ड देकर उसका सर कलम कर दिया जाता था। अधिकतर यदि उसे मृत्युदण्ड नहीं दिया है तो कालकोठरी में मरने के लिये छोड़ दिया जाता था। यह अपमान युद्ध में मृत्यु का वरण करने से भी भयानक था।

परिस्थितियाँ आज परिवर्तित है यह परिवर्तन स्वाभाविक है, सारा विश्व आज मानव जीवन को संवारने में अपना हित समझता है, युद्धों के इतिहास ने समझा दिया है कि युद्ध के बदले में शान्ति से हल निकालने से मानवीय समुद्र को आघात नहीं लगेगा। बीसवीं शताब्दी में हीरोशिमा नागासाकी में युद्ध में हुए भीषण परिणामों ने विश्वशांति के मार्ग को प्रशस्त किया है, आधुनिकता की होड़ में चल रहे पृथ्वी के विदोहन से भी मानव समाज चिंताग्रस्त अवश्य है परन्तु सचेत नहीं। सृष्टि परिवर्तन को तो स्वीकार करेगी परन्तु विदोहन से महामान व समुद्र भी सूख जायेगा जिसे जीवन चाहिये वह मातृभूमि से प्यार अवश्य करे और परिवेश को स्वच्छता के साथ हरा भरा रखने में सहयोग करेगा। सृष्टि के सारे विधान राष्ट्र धर्म के साथ होते हैं। मानव के शरीर के रक्त का रंग लाल है और लालिमा ही सूर्योदय से पूर्व आल्हाद और सुन्दरता का रंग बिखेरती है। जो जीवन का मूलाधार है। हमें इस मूलाधार से जुड़कर संगठित सृष्टि का गठन करना है।

इसलिये स्वाधीनता के इस पर्व में, स्वार्थपरता का त्यागकर सामाजिक न्याय के साथ सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय की भावना से वसुधैव कुटुम्बकम की आधारशिला रखनी होगी। यही भावना भारत की महानता की महिमा को गौरवान्वित करती है। विश्व में अनेकों धर्म हैं उनका चिन्तन एक ही है, भाषा एवं विचारों का फर्क अवश्य है परन्तु पंचतत्वात्मक शरीर के साथ आष्टांग योग को पालन करने की प्रेरणा अवश्य देते हैं। इस सनातन सत्य को कोई भी मनुष्य अस्वीकार नहीं कर सकता। यही कारण है कि राष्ट्र धर्म सर्वोपरि होकर समग्र है जिसमें जोड़ने और एकाकार होने की भावना व्याप्त है। एक सुन्दर वस्तु का निर्माण करना महज कठिन कार्य है परन्तु उसे नष्ट करना आसान है, क्षण भंगु रहे। आज हमारी सृष्टि ईश्वर द्वारा दी गयी वह मूल्यवान धरोहर है, जो मानव की लम्बी तपश्चर्या का उत्तम फल है। जिसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है।

निहित स्वार्थी तत्व अपने स्वार्थ के लिये वैमनस्य और विद्वेष की भावना से ग्रसित होकर इस स्वर्गमय सृष्टि को नष्ट करने में विश्व का हित समझते हैं उन्हें पुरुषार्थ से रोकना होगा। जो केवल राष्ट्रधर्म का पालन करने से ही संभव होगा। प्रत्येक व्यक्ति महत्वकांक्षी है पर राष्ट्र को महत्वाकांक्षा पर बली नहीं होने देना है। सच में धरतीपुत्र मानव को राष्ट्र धर्म अपनाकर सुखी, समृद्ध और उन्मुक्त गगन से परिपूर्ण भारत का निर्माण करने का कार्य सम्पन्न करना है। यही संकल्प लेकर राष्ट्र धर्म को ग्रहण करें। जिसके हित में समर्पण भावना से राष्ट्र की सेवा करें।

'जय स्वराज्य जय भारत'

– 105 डी.के. हनी होम्स, कोलार रोड, भोपाल

■

आलेख

संस्कृति स्वाधीनता संग्राम की महानायिका : रानी अहिल्याबाई होल्कर

विजय जोशी

निर्मल मन जन सो मोहि पावा
मोहि कपट छल छिद्र न भावा

सृष्टि के उदयकाल में ही भगवान के ही साथ शैतान का भी अवतरण हुआ, जो उसके सन्मार्ग से कुमार्ग पथ का पथिक बनने का प्रयोजन बना। एडम से लेकर ईव, आदम से हव्वा या फिर इंद्र से विश्वमित्र किसी भी धर्म का प्रारंभिक इतिहास देख लीजिये। यह सत्य तथा तथ्य अनादि काल से आज तक हर जगह मौजूद हैं मानव जीवन का सबसे बड़ा प्रयोजन ही है आंतरिक या बाह्य स्वाधीनता हेतु संग्राम। यह तो हुई पहली बात।

दूसरी यह कि अच्छी बुरी की परिभाषा का बखान भी कुछ यूं ही है कि जो सन्मार्ग, सेवा, समर्पण का प्रतीक है वह कहलाएगा सुर और इसके सर्वथा विपरीत जो स्वार्थ, शोषण का होगा संवाहक वह कहलाएगा असुर।

वैदिक इतिहास में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण युग युगांतर के इतिहास में वर्णित है और सर्वविदित है, जो सिलसिलेवार कुछ इस प्रकार है और विषय की सही विवेचना प्रस्तुत करता है।

1) सतयुग : इस काल में संग्राम सुर एवं आसुरी दो संस्कृतियों के मध्य था, जिसमें अंतत: सुर अर्थात देव पक्ष विजयी हुआ।

2) त्रेता युग : कालांतर में यह संग्राम दो संस्कृतियों से आगे बढ़कर दो देशों तक प्रवाहित हो गया।

3) द्वापर युग : इस युग के आते आते यह कलह परिवार के अंदर तक प्रविष्ट हो गया।

4) कलियुग : और वर्तमान युग तो पतन की पराकाष्ठा का युग है। न तो सकारात्मक सोच, न संस्कार, न मूल्य और न ही कोई सिद्धांत।

कलियुग में ही अनेक धर्मों का उदय हुआ समाज में शांति की स्थापना के उद्देश्य को लेकर, किंतु हुआ क्या ? धर्म के नाम पर स्वामित्व स्थापित करने के मोह ने आक्रांताओं की लालसा की धार तेज कर दी। वे दिग दिगंत तक फैल गए संस्कृति संहारक का स्वरूप धारण कर। फिर भारत भूमि जो धन, धान्य, सुख, संपत्ति से परिपूर्ण थी भला कैसे अछूती रह सकती थी। आक्रांताओं के अत्याचारों की साक्षी बनना इसकी नियति बन गई। क्रूर, निर्दयी, लूले, लंगड़े आततायी के हाथों दिल्ली तक सात बार लूटी गई बराय मेहरबानी तत्कालीन कायर कौम के।

ऐसे संक्रमण काल में कुछ ऐसे व्यक्तित्वों का पदार्पण भी हुआ जिन्होंने न केवल हमारी धरोहरों को सहेजने के दुष्कर कार्यों को अंजाम दिया, बल्कि पूर्व में क्षतिग्रस्त की गई धरोहरों के जीर्णोद्धार का बीड़ा उठाते हुए उसे सफलता के शिखर तक सफलतापूर्वक पहुंचाया। विध्वंस को सृजन में परिवर्तित करने का न केवल प्रण किया अपितु उस दौर के संस्कृति स्वाधीनता संग्राम में विजय अभियान के संवाहक बनकर उभरे।

उन्हीं में से एक विभूति रहीं हैं मालव प्रदेश में होल्कर वंश की महारानी अहिल्याबाई, जिन्होंने सांस्कृतिक राजदूत की भूमिका धारण कर नारी होते हुए भी वैधव्य का बाना उतार कर न केवल नारी जाति की प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित किया, बल्कि सुदूर क्षेत्र स्थित मंदिरों के पुररुद्धार का प्रण लेकर उन्हें फिर से स्थापित किया। सोमनाथ तथा काशी विश्वनाथ का जीर्णोद्धार इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, धन, वैभव, विलास से सर्वथा परे एक सहज, सरल निर्मलमना जिसकी कल्पना रामचरित मानस में यूं की गई है :

काम क्रोध मद मान न मोहा
लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा
जिनके हृदय दंभ न ही माया
तिन्ह में हृदय बसहु रघुराया

वर्तमान युग में अहिल्या एक अद्भुत उदाहरण है। इतनी ऊंची पदवी पर रहकर भी जिस राग दरबारी संस्कृति को परे रख किस तरह उन्होंने राज कार्य किया होगा उसके मात्र एक प्रसंग में छुपा हुआ है एक बहुत बड़ा संदेश :

प्रशंसा से परहेज :

मालवा महारानी अहिल्याबाई होल्कर अपनी सादगी, सरलता व समाज सेवा के लिए इतिहास प्रसिद्ध हैं। एक बार उनका

दरबार लगा हुआ था। सभी दरबारी अपने-अपने स्थानों पर विराजमान थे। पिछले पांच वर्षों में महारानी ने न केवल अपने पति की मृत्यु का आघात सहकर साहस का परिचय दिया था अपितु राज्य का शासन भी कुशलतापूर्वक चलाकर जन-जन की प्रशंसा अर्जित की थी। एकाएक राजकवि खड़े हुए और महारानी से उनके सम्मान में लिखी पुस्तक के कुछ अंश पढ़ने की स्वीकृति मांगी, जो उन्हें तुरंत मिल गई। कविताएं सुनकर दरबारी झूम उठे।

तब महारानी प्रसन्न मुद्रा में बोलीं- महामंत्री! राजकवि को प्रभावपूर्ण भाषा में कविताएं लिखने के लिए पुरस्कृत किया जाए परंतु यह पुस्तक समीप की नदी में प्रवाहित कर दी जाए।

महारानी का निर्णय सुनकर सभी दरबारी चकित रह गए। पुस्तक को नदी में बहा देने की बात किसी की समझ में न आई।

महामंत्री साहस कर के बोले- इतनी अच्छी पुस्तक को प्रवाहित क्यों किया जा रहा है? लोग इसे पढ़कर आपके गुणों से प्रभावित होंगे। सभी राजकवि का साधुवाद भी करेंगे।

महारानी ने उत्तर दिया- प्रिय सभाजनों, मैं भी राजकवि की विद्वता की प्रशंसा करती हूं, परंतु मैं नहीं चाहती कि मेरी प्रशंसा लिखित रूप में प्रजा को मिले। मैं साधारण नारी हूँ और मैंने यदि कुछ अच्छा काम किया है, तो वो मेरा कर्तव्य था और समय की आवश्यकता।

सभी सभाजन महारानी की सरलता और श्रेष्ठता का गुणगान करने लगे।

वर्तमान परिदृश्य :

अब इस प्रसंग की तुलना करते हुए अवलोकन कीजिये आज के राजनैतिक परिवेश की। और हमारे आज के प्रचार प्रसार प्रिय स्वार्थी लोगों की मानसिकता देखिये, जिन्हें सेवा जैसे पावन पवित्र प्रयोजन को भी सुख, सुविधा का संबल बना खुद सपरिवार संपन्नता के रथ पर आरूढ़ हो देश एवं जनमानस को लूटने से भी कतई परहेज नहीं।

शोहरत की भूख हमको कहाँ ले के आ गयी
हम मोहतरम हुए भी तो किरदार बेचकर

समापन :

आने वाले युग में शायद ही कोई इस बात पर विश्वास कर सकेगा कि एक अकूत संपत्ति की स्वामिनी ने नर्मदा तट स्थित महेश्वर जैसे ग्रामीण क्षेत्र में गोबर लिपे फर्श पर बैठक अपना राज दरबार चलाया होगा। माँ नर्मदा के तट पर बनारस सदृश्य घाटों का निर्माण करवा कर शिवभक्त अहिल्या ने अपने शासन काल में सत्यं शिवं सुंदरम् की परिकल्पना को साकार कर दिया। अपने राज्य को न केवल विदेशी आक्रांताओं से बचाया, अपितु सहेजते हुए संवार भी दिया। आज का पूरा मालवा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इतने बड़े साम्राज्य की साम्राज्ञी का इतना सादगीपूर्ण आचरण आज के दौर में तो कहा ही जाएगा विचित्र किंतु सत्य।

- लेखक- पूर्व ग्रुप महाप्रबंधक, भेल है

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें!

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

मालवा के भित्तिचित्रों पर एक सर्वांगीण कार्य

पुस्तक विवरण -

शीर्षक	–	मालवा के भित्तिचित्र
लेखक	–	नर्मदाप्रसाद उपाध्याय
प्रकाशन वर्ष	–	2018
मूल्य	–	1200/- (बारह सौ मात्र)
प्रकाशक	–	निदेशक, आदिवासी लोक कला विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल (मध्यप्रदेश भारत), फोन- 0755-2661640

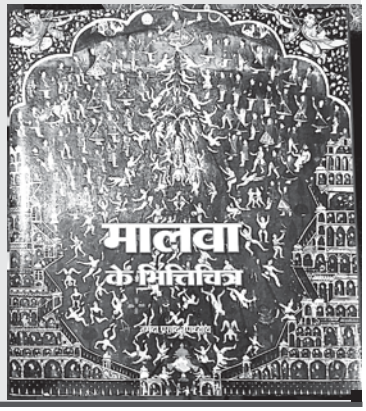

मालवा के भित्तिचित्रों पर एक सर्वांगीण कार्य। यह नर्मदाप्रसाद उपाध्याय के कई वर्षों के अथक परिश्रम और अध्ययन का परिणाम है। इस पुस्तक के द्वारा उपाध्याय जी काशीप्रसाद जायसवाल जैसे पंडितों की श्रेणी में आ गये हैं, जिन्होंने विश्वविद्यालयों की व्यवस्था से अलग होते हुए भी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व पर अंताराष्ट्रिय स्तर पर उदाहरणीय कार्य किया।

-आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

Dear Narmadaji:

I have seen both the books, Malwa ke Bhittichitr and Bundelkhand ke Bhittichitr and write to complement you on your excellent research and presentation. This work was badly needed as the paintings of Central India have been badly neglected by art historians, especially in the West. The term Malwa painting has been used very loosely and there is confusion about its origin and development. Your books do shed light on this problem.

I would request you to create English translations of these book so that it can reach a wider audience both in India and abroad.

This would be greatly appreciated by those of us who want to appreciate and understand this beautiful but neglected part of Indian art history.

Kind regards,

-Prof. Harsha V. Dehejia
Adjunct Professor, College of the Humanities
Carleton Univesirty, Ottawa, ON. Canada.

Asok Das to Me Sun. Oct. 31, 8:32 pm

Dear Narmada Prasad

I ought to have written to you long back, but I couldn't do that for a variety of reasons. Primarily, this is for our being away to Mumbai for "medical excursion". Luckily, we have passed through all that are now back to our Santiniketan home. Your volumes are large and a person like me who is not that fluent in Hindi it took some additional time to go through the text and the illustrations. Still, I must admit that I would take more time to look at the visuals and absorb their high quality and appreciate their place in the social and cultural lives of their creators.

Your books, Malwa ke Bhittihitra and Bundelkhand ke Bhittichitra are storehouses of extremely valuable information and compendiums of pictures of wall paintings mostly unknown and unpublished. I simply cannot imagine how you could do this. In the olden days the ASI regularly published Memoirs of cities, regions, and excavated sites. These were mostly cooperative works done by large teams over a prolonged period. In your case you have done these almost singlehanded and without taking much time. I simply wonder at your energy, enthusiasm and your deep interest in the subject.

Though printed on art paper and strong binding and jacket, and containing such a profusion of pictures, these are priced so unbelievably low. This would definitely help the average reader, student, and researcher.

My only suggestion to you is to include a detailed index, and to print the titles in the bibiliography in English for the books written in that language, when you go for a second edition.

With our very best wishes to Anjana and you

- Asokda

भित्ति चित्रो के मार्फत मानव विकास की कहानी

-डॉ. प्रताप राव कदम

गति, प्रवाह जीवन का पर्याय है, जड़ता -ठहराव में काहे का जीवन। सतत प्रवाह - मय पानी पत्थर पर अपनी स्मृति-अंकित कर जाता है। गुफा मानव की यहाँ तक की यात्रा शब्द-रंग-चित्र की भी यात्रा है। इनके मार्फत आप उस समय से, इतिहास से साक्षात्कार कर सकते है। इतिहास - दृष्टि और इतिहास बोध को आंक कर, आम फहम से विशिष्ट तक, रंक से राजा तक, सृजन से संहार तक, ध्वनि से संचार के आधुनिकतम साधनो से इस युग के बारे में धारणा बना सकते है, उसे समझ सकते है। स्वतंत्रता के पुरोधा, राष्ट्रवादी प्रखर कवि माखनलाल चतुर्वेदी हो या दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला जब जेल में रहे तो अपनी मन: स्थिति को उस जेल की दीवार पर उन्होने उकेरा जो उस वक्त की राष्ट्र की भावना समझने का एक माध्यम बन गया है। पत्थर पर उकेरे चित्र जीवन का स्पंदन कराते है समय-प्रवाह में से जीवन को अवशेष ढूंढ लाते है, वे कला मनीषी, भीम बैठका को उद्घाटक डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर हो या कला - मर्मज्ञ लेखक निबंधकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय हो । चित्रांकन परंपरा आदिकाल से रही है। इसके आधार पर मनुष्यता की विकास-यात्रा, विविधता और एतिहासिकता के बारे मे प्रमाणिकता के साथ कहा जा सकता है। भित्ति चित्रांकन परंपरा के विशेषज्ञ नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने ''मालवा के भित्तिचित्र'' (शोध संदर्भ ग्रंथ) के द्वारा इसी प्रमाणिकता को बार-बार रेखांकित किया है। बकौल पुस्तक संपादक अशोक मिश्र- ''भित्ति चित्रांकन की परंपरा हमारे देश में आदिम काल से रही है, इसके अनेक पुरा-प्रमाण उपलब्ध है। भित्ति चित्रो में प्रकृति, पौराणिक और स्थानीय देवता अनेकानेक काल्पनिक संसार के प्रतीक, विशेष उद्देश्यो और कार्यो को प्रकट करने वाले अभिप्रायो को अंकित किया जाता रहा है। ये सभी चित्रांकन प्रकृति, आख्यान्न और घटना को कई बार समृध्द और विस्तार प्रदान करने से प्रतीत होते है। म.प्र. में भित्ति चित्रो की ऐतिहासिकता और विविधता के क्षेत्र में अब तक प्रमाणित कार्य का अभाव था।'' जाहिर है नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की यह पुस्तक ''मालवा के भित्तिचित्र'' इस अभाव, कमी को न केवल पूर्ण करती है वरन् मालवा अंचल की इस संबंध में समृध्दता का बखान भी करती है।

भित्तिचित्र, गुफाचित्र, शैलचित्र, आदिमचित्र किसी भी नाम से संबोधित करे, ये मानवीय मन में समाए सौंदर्य की अभिव्यक्ति है, जो रंगो रेखाओं के माध्यम से व्यक्त होती है, इस अभिव्यक्ति का साथ आदिकाल से सभ्यता के उद्भव-विकास तक बना रहा। ताड़पत्रो, भोजपत्रो, आवास-स्थलो, से लेकर कागज और केनवास पर रंगो और रेखाओं का मिलन होता रहा और विकास यात्रा अग्रसर होती रही। भित्तिचित्र परंपरा की समग्र व्याख्या करते हुए नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, इसके वैश्विक परिदृश्य पर भी नज़र डालते है और भारतीय संदर्भ में उसकी व्याख्या करते है। इस विषय के विभिन्न विद्वानो की नज़र से भित्ति चित्रो को देखते सहोदारण, उपाध्याय जी कहते है कि गुफाचित्र अथवा शैल चित्र पूरे विश्व में पाए जाते है। इनका इतिहास विविधतापूर्ण और समृध्द है। प्रागेतिहासिक गुफाचित्र सुलावेसी (इण्डोनेशिया) काओवार्ट, नियोक्स के अलावा मिस्त्र, रोम व मेसोपोटामिया में भी मिले है। कला इतिहासकारो के अनुसार इनका इतिहास लगभग चालीस हजार वर्ष पुराना है। जहां-जहां से गुफाचित्र मिले है, वहां-वहां की सभ्यता को इन चित्रो में चित्रित किया गया है। शिकार के दृश्य विशेष रूप से इन शैलचित्रो में चित्रित किए गए है। भित्ति चित्रो के विषय उस काल के मानव की उहा-पोह, सोच को भी चित्रित करते है। इन विषयो के बारे में भी नर्मदा प्रसाद उपाध्याय कहते है- शिकार, जानवर, पशु अंकन, समूह, पारिवारिक जीवन, धार्मिक अनुष्ठान, घुड़सवार, अंतिम संस्कार के दृश्य इन शैलचित्रो में है दरसअल गुफामानव की विकास मात्रा भी तो यही है- शुरूआत में वह वृक्षो की छाल और पशुओ की खाल से अपने शरीर को ढांकता था, जानवरो का शिकार करता था वही उदरपूर्ति के साधन थे। फिर अग्नि से परिचय हुआ, खेती से भी, पशु पालन शुरू हुआ, पहिये का अविष्कार याने गति से परिचय भी इसी दौरान हुआ, नदियों के किनारे समूह में रहना शुरू किया, पारिवारिक जीवन... फिर सिलसिला चल पड़ा और इन्ही सब को अंकित किया इन्ही चित्रो के माध्यम से।

''मालवा के भित्तिचित्र'' संदर्भ ग्रंथ है, इस दिशा में शोध करने वाले शोधार्थियो के लिये एक जरूरी ग्रंथ, इसमें मालवा की ऐतिहासिक भित्तिचित्रो के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत पड़ताल की है नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने। वैसे देश में पंजाब में भी मालवा अंचल है।

पंजाब की पांच दरियाओं में से एक सतलज के दक्षिण में जो इलाका आता है वह मालवा कहलाता है। पंजाब के तीन इलाको माजा दोउबा मालवा में से सबसे बड़ा इलाका मालवा ही है। उपाध्याय जी ने सप्रमाण इसकी पुष्टि भी की है कि मालवगण पंजाब से चलकर प्रथम शताब्दी ईसापूर्व अवंती और उसके आसपास के क्षेत्र में बस गए थे। मालव जाति एक प्राचीन जाति थी जो आधुनिक पंजाब में निवास करती थी, लुधियाना, जीन्द पटियाला नाभा ये पंजाब के मालवा क्षेत्र में ही है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के अध्ययन का शोध क्षेत्र मध्य प्रदेश के पश्चिम में स्थित पठार से है। जो मालवांचल के नाम से जाना जाता है, वे आपका परिचय इसकी ऐतिहासिकता से तो करवाते ही है इसकी नदियो में कल-कल करते जल से, इनमे किनारे किनारे चलते वे मालवा के पुरापाषाण, मध्यपाषाण, अपरपाषाण, लघुपाषाण, नवपाषाण संस्कृतियो से भी मुलाकात कराते है, मालवा की ताम्राश्मयुगीन संस्कृति की जानकारी भी देते है और पुराण संदर्भ - प्रसंगो के मार्फत भी मालवांचल से भेंट कराते है, इन भित्तिचित्रो, रंग रेखाओ में आप रम जाओ तो ये आपसे संवाद भी करते है, कान में फुसफुसाते भी है कि राज - महलो, हरम, षडयंत्रो के बावजूद ये अपने समय को कलाकारो के मार्फत उकेरते रहे, इतिहास भरा पड़ा है इस तरह के षडयंत्र के किस्सो से उपाध्याय जी ने भी अपनी शोध सृजन यात्रा में इतिहास के इस स्याह पक्ष कि ओर ध्यान खींचा है बंकलम नर्मदा प्रसाद उपाध्याय-महाभारत युध्द के बाद वीतहौत्र पूर्वी मालवा पर (विंध्य प्रदेश) शासन करते थे तथा इनका युध्द अवंतियो के साथ होता रहता था। वीतहोत्र शासको ने अवंतियो को पराजित कर इस राज्य पर अधिकार किया तथा वीतहोत्र शासको की बीस पीढ़ियाँ अवंती पर शासन करती रही। इसके अंतिम शासक रिपुंजय को उसके मंत्री पुल्कि ने मरवा डाला और अपने पुत्र प्रद्योत को, जिसे अपने क्रोध के कारण चण्ड प्रद्योत भी कहा जाता है, शासक बना दिया। यह घटना ईसा पूर्व छटवी सदी की है। वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की कहानी भी इसी काल की है जिसके संबंध में कालिदास ने अपने काव्य ग्रंथ 'मेघदूतम' में उज्जयिनी के संदर्भ में उल्लेख किया है। ऐसे ही षडयंत्र का शिकार सिंहली शासक कालाशौक भी हुए। उपाध्याय जी कहते है- मगध के राजा शिशुनाग ने अवंती पर अधिकार कर लिया और मालवा मगध साम्राज्य का अंग बन गया। शिशुनाग ने उज्जयिनी पर 40 वर्ष तक राज किया, उसके पश्चात उसका पुत्र काकवर्ण सिंहासन पर बैठा। सिंहली परंपरा में कालाशौक को उसका उत्तराधिकारी माना गया जिसने 22 वर्ष शासन किया पर बाद में उसके मंत्री ने उसकी हत्या कर दी। ऐसा ही मगध शासक वृहद्रथ के साथ भी हुआ। वृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने कर दी। षडयंत्र हत्या अपहरणो के बाद भी, राजा रजवाड़ो के महल और हरम के किस्सो के बाद भी 'कला', विशेष रूप से चित्रांकन कला कलाकार मन को उकेरती रही, चित्रांकन की समृध्द परंपरा मालवा में न केवल अपने पैर जमाती रही उसका प्रसार भी होता रहा। उस समय को ग्रंथ भी इसकी पुष्टि करते है कि उस समय में चित्रकला में दक्ष ऐसे आचार्य होते थे जो चित्रकला की दीक्षा देते थे। गृह भित्तियो पर देवी-देवताओ के सुन्दर चित्र बनाए जाते थे, मंदिरो की छतों, भित्तियो आदि पर भी धार्मिक चित्र बनाये जाते थे, चित्रकला में दक्ष स्त्रियाँ मनोविनोद के लिए भी चित्र बनाती थी। उस काल में ललित कलाओ के क्षेत्र में हुए कार्यो का तफ्सील से कला पारखी उपाध्याय जी ने अपने इस ग्रंथ में उल्लेख किया है मसलन 'पादताडितकम' ग्रंथ का उल्लेख करते उपाध्याय जी इस बात को सप्रमाण रेखांकित करते है कि इस ग्रंथ में चित्राचार्य शिव स्वामी का जिक्र है जिनके बनाए चित्र न केवल आकर्षक होते बल्कि रंगो का संयोजन भी अलग से ध्यान खींचता है गुप्तकाल की भी इन्ही विशेषताओं का जिक्र आपने किया है। ''समरांगण सूत्रधार'' ग्रंथ के मार्फत भोज काल में ललित कलाओं के क्षेत्र में हुए कार्य का जिक्र करते उपाध्याय जी रामकृष्णदास जी को उद्धृत करते कहते है कि रामकृष्णदास का मानना है कि भित्ति चित्रो की परंपरा का अंतिम काल ग्यारहवी सदी में था जब राजा भोज के भतीजे उदयादित्य ने भित्तिचित्र कराया था। इस संदर्भ ग्रंथ कि खासियत यह भी है कि रंग-रेखाओं से आप संवाद कर सकते है। इसके साथ ही आप इतिहास से भी रूबरू होते है और उन स्थलो पर आप ठिठक जाते है जहां विश्वास छला गया, जहां इंसानियत शर्मसार हुई। इतिहास में उन क्षणो के भी आपको उपाध्याय जी साक्षी बनाते है जहां प्रेम परवान चढा, थोड़ी अबेर उन स्थलो पर उन क्षणो को आप जीना चाहते है, बाज - बहादुर रूपमती का प्रसंग इसी तरह से आता है- सन् 1555 में मलिक बायजीद ने अपने भाई दौलत खां से उज्जयिनी छीन ली तथा बाज बहादूर की उपाधि धारण कर पूरे प्रांत पर शासन करने लगा। उसने अपनी राजधानी मांडव गढ को बनाया। बाजबहादुर प्रख्यात संगीतज्ञ था तथा वह अपने समय की सुप्रसिध्द नृत्यांगना धरमपूरी निवासी रूपमती पर आसक्त हो गया और दोनो मांडवगढ में रहने लगे। इतिहास की इमारते आज भी इन दोनो के प्रेम की गवाही देती हैं यह युगल मुगल, दकनी, राजस्थानी और पहाड़ी शैलियो के चितेरो की प्रेरणा बना, जिन्होने इनके मनभावन लघुचित्र बनाए। ये लघुचित्र भारत सहित विश्व के

विभिन्न संग्रहलायो तथा व्यक्तिगत संग्रहो में संरक्षित है। मध्यप्रदेश के सांस्कृतिक जनपदो में से एक मालवा के लोक–जीवन में लोक–चित्रो की समृद्ध परंपरा है इनका ऐतिहासिक पुरातात्विक महत्व हैं यह बहुत बिखरा–बिखरा भी है इसे सूत्रधार की तरह जोड़ने का महत्वपूर्ण शोध–आधारित कार्य, समय और श्रम–साध्य कार्य नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जैसे इस विषय के अध्येता के ही सामर्थ्य की बात है जिनकी पकड़ साहित्य संस्कृति, लोक – जीवन, लोक–चित्र के साथ – साथ इतिहास पर भी है तभी तो वह भितिचित्रों के पुरातात्विक वैभव को बखानते जहांगीर – नूरजहां का भी जिक्र करते हैं और उन आदिम कबीलों का भी जो कलात्मक संस्कारों से लबरेज थे। जहांगीर यहां नूरजहां के साथ आया और महीनों रहा। उसने यहां की प्राकृतिक शोभा के चित्र भी गोवर्धन नामक चितरे से बनवाये, जिसे वे साथ लाये थे। दशपुर या मंदसौर शिवना नदी के तट पर है, जहां गुप्तकालीन पशुपतिनाथ प्रतिष्ठित है। मालवा के सुल्तान ने ईस्वी सन् 1405 में 12 दरवाजों वाला एक किला भी बनवाया था। यहां के संग्रहालय में सुंदर मूर्तियाँ है, जिनमें ज्यादातर हिंगलाजगढ़ की है। मालवांचल में फैले विभिन्न जनपद जिनमें भौगोलिक दूरिया तो हैं समय–काल में भी अंतर हैं राजा– रजवाड़ो बादशाह नवाबों की सनक के किस्से भी है। उनके मार्फत अपने विषय की सप्रमाण व्याख्या उपाध्याय जी ने की है। मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है बी.आर चौपड़ा जब महाभारत पर सीरियल बना रहे थे तो संवाद लेखन का काम राही मासूम रजा को सोंपा, पहले तो रजा जी ने मना कर दिया, पर गंगा – जमुनी संस्कृति के खातिर संवाद लिखने को तैयार हो गये, आज वे संवाद घर–घर मे बोले जाते है, जबान पर चढ़ गये है, पर मैं दूसरी बात कह रहा हूँ। महाभारत की कथा बहुत बिखरी– बिखरी है भूगोल के हिसाब से भी, समय के हिसाब से भी, चरित्र भी बहुत बिखरे – बिखरे है। इसे कथा–सूत्र में बांधना कठिन काम था तो रजा साहब ने सलाह दी एक सूत्रधार की जो सबको एक कथा में पिरोता है, महाभारत सीरियल में यह काम ''समय'' करता है। गोया समय जैसे कोई चरित्र हो, वही दुविधा भित्तिचित्रो को समेटने की और वे एक सूत्रधार की तरह यह करते जाते है सफलतापूर्वक और वैश्विक मानदंड पर एक शोध ग्रंथ सामने आता है।

भित्तिचित्र परंपरा की भी वे न केवल शास्त्रीय व्याख्या करते है वैश्विक नजरिये से भी देखते है और भारतीय नजरिये से भी या यूं कहे भारतीय नजरिये को वैश्विक धरातल पर परखते है – चित्र मानवीय मन में समाए सौंदर्य की ऐसी अभिव्यक्ति है जो रंगो और रेखाओं के माध्यम से दृश्यमान होती है। भित्ति चित्र की परिभाषा को राय कृष्णदासजी ने ''भारत की चित्रकला'' में इस तरह से व्यक्त किया है – किसी एक तल (सतह) पर जो सम हो– यह समता खमदार भी हो सकती है (जैसे कुंभ आदि का बाहरी भाग और कटोरी, रकाबी आदि का भीतरी भाग एवं लदावदार फटव आदि) पानी, तेल किंवा किसी अन्य माध्यम में गीले अथवा सूखे एक व एकाधिक रंग की रेखा एवं रंगामेजी द्वारा किसी रमणीय आकृति के अंकन को और उसी प्रसंग में निम्नोन्नत तथा एकाधिकत तल और पहलू (देशकाल) दरसाने को चित्रण कहते है और ऐसी प्रस्तुत वस्तु को चित्र। उक्त आधारभूत सतह मुख्यत: भित्ति (दीवार, भीत) पत्थर, काठ, पकाई या कच्ची मिट्टी के पात्र व फलक, हाथीदांत, चमड़ा, कपड़ा, तालपात्र व कागद होती है।'' गुफाचित्र, शैलचित्र आदिमचित्र, भित्ति चित्र के फरक को भी वे स्पष्ट करते है। मध्य–प्रदेश में प्रागेतिहासिक शैलचित्रो की व्याख्या भी विस्तृत रूप से उपाध्याय जी करते है कि म.प्र. के शैलचित्रो की सबसे पहले खोज अंग्रेज विद्वान हंटर तथा डी. एच गार्डन ने पंचमढी तथा होशंगाबाद अंचलो में की। डॉ. एस.के. पांडे प्रो. शंकर तिवारी, प्रो. के.डी. वाजपेयी, डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के योगदान को भी प्रमुखता से रेखांकित किया है। भीमबैठका के खोजकर्ता प्रख्यात इतिहासवाद डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर के अनुसार शैलचित्रो में स्त्रियां, ग्राम, गृह सज्जा, शिकार, शहद एकत्र करना, शस्त्र–संघर्ष, सागर, बाघ, मगर के चित्र मानव विकास की कहानी भी कहते है। उपाध्याय जी ही कहते है– इतिहास केवल अक्षरो के माध्यम अपने में समाए युगो की गाथा नही कहता बल्कि वह उस रचनात्मकता की कहानी भी कहता है जो शिल्प, स्थापत्य और चित्रकला जैसे कला के तमाम अनुशासनो में इन युगो में अभिव्यक्त होती है। मालवा के भित्ति चित्र शोध–परक, ऐतिहासिक कार्य है पुस्तक में दुर्लभ चित्रो को भी प्रकाशित किया है जो विषय को समझने में मदद ही नही करते उस काल को भी साकार करते है। इतिहास, इतिहास बोध और इतिहास दृष्टि इन तीनो मामलो में उपाध्याय जी सम्पन्न है , इस शोध–संदर्भ ग्रंथ से यह बात और भी प्रमाणित हो जाती है । भाषा–चित्रण के मामले में ,बांध कर रख लेने में, विषय का राई–रत्ती खुलासा करने में समग्रता में उसे देखने में उपाध्याय जी का कोई सानी नहीं। उन्होने एक बड़े काम को अमली जामा पहनाया है।

– 11, शकुन नगर, खंडवा, 450001
मो.नं. 8718057089

■

पुस्तक समीक्षा

बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र

– अशोक वाजपेयी

पुस्तक विवरण –

शीर्षक – बुंदेलखंड के भित्तिचित्र
लेखक – नर्मदाप्रसाद उपाध्याय
प्रकाशन वर्ष – 2021
मूल्य – 1200/– (बारह सौ मात्र)
प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल (मध्यप्रदेश भारत), फोन– 0755–2661640

मैं मूलत: सागर का रहनेवाला हूं : पहली–दूसरी कक्षा तक तो सागर की एक तहसील खुरई में पढ़ता था। उसके बाद सागर शहर में बीए तक की पढ़ाई की और फिर सागर छूट गया। पर उस दौरान जब मैं वहां था, मुझे इसका कोई पता नहीं था कि सागर जिले के कई क़स्बों में भित्ति चित्रों की अपार सम्पदा है। यह पता चला जब हाल में ही में कलाविद् और अन्वेषक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की नयी विशाल पुस्तक 'बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र' मुझे उपाध्याय जी के सौजन्य से मिली. छ: सौ पृष्ठों से अधिक की इस पुस्तक में सागर ज़िले के भित्तिचित्रों पर विपुल सामग्री और रंगीन छायाचित्र 100 पृष्ठों में है. उन्होंने यह कार्य बहुतों की प्रेरणा से किया जिनमें से जगदीश मित्तल और हर्ष दहेजिया मेरे परिचित रहे हैं। आदिवासी लोक कला एवं बोली अकादेमी और मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर अच्छा काम किया है।

उपाध्याय जी ने अपनी छोटी सी भूमिका में लिखा है : 'यह कृति एक छोटे से पथ के निर्माण का प्रयास है. पथ इसलिए नहीं होते कि उन पर पांव चलकर गन्तव्य तक पहुंच जायें, बल्कि वे इसलिए होते हैं कि पांवों के चलने का संस्कार कभी समाप्त न हो, वे कभी स्थिर न रहें, जड़ न हो जायें।' दरअसल उपाध्याय जी ने जो कार्य किया है वह ऐतिहासिक और अभूतपूर्व है। इन चित्रों को, जिनमें कई अब धूमिल पड़ गये हैं, देखकर यह बात मन में कौंधती है कि भारत पहले भी कितना विकेन्द्रित था और उसके छोटे–छोटे रजवाड़ों में कितना सजग कलाबोध सक्रिय और व्याप्त था। अपने सागर के दिनों में कई बार राहतगढ़ रहली, गढ़पहरा और गढ़ा कोटा गया था पर मुझे इस विपुल कला सम्पंदा का, उसकी विविधता का, उसमें प्रगट कला–कौशल, परिपक्वता, रंगों की अद्भुत छटाओं आदि की कोई जानकारी नहीं थी। मुझे इस पुस्तक में संकलित चित्रों की बानगी अपने अचेत उत्तराधिकार को समझने का उत्साह देती है।

इस भित्ति चित्रों को संरक्षित करने के किसी सरकारी प्रयत्न का मुझे पता नहीं। यह स्पष्ट है कि इस कला–सम्पदा को बचाने के लिए नयी तकनालजी और विधियों का सावधानी और संवेदनशीलता के साथ उपयोग जल्दी ही होना चाहिये। ऐसे किसी प्रोजेक्ट को उपाध्याय जी के निर्देशन और उनकी सलाह से कार्यान्वित करना चाहिये।

–सत्याग्रह ब्लॉग में

बुन्देलखण्ड ऐसी बुलन्द भूमि है जहाँ शौर्य और शब्द एक साथ सार्थक होते हैं।

– रमेश दवे

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय एक ऐसे साधना–जीवी एवं विचार–जीवी रचनाकार हैं जिन्हें इतिहास गा–गा कर आमंत्रित करता है, शिल्प और चित्र अपने मौन के शब्दों की ध्वनि को सारे संसार को सुनाने का आग्रह करते हैं। नर्मदा जी ने जब मालवा के भित्ति–चित्रों के मौन

को स्वर दिए तो मालवा का कबीरी-इकतारा गूँज उठा, अब वे बुन्देलखण्ड की ईसुरी-काया में प्रवेश कर पत्थरों के भित्ति-चित्रों की भाषा का लोक-संगीत रच रहे हैं जिसका प्रमाण है उनकी सद्य: प्रकाशित कला-कृति 'बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र'। 'बुन्देलों हरबोलों से हमने सुनी कहानी थी' ये शब्द-गीत तो देश की ऊर्जा और शौर्य बने थे सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झाँसी की रानी' में, और शब्दों का वह तेज सारे देश में व्याप्त हो गया था। कवि भूषण ने जब इसी बुन्देलखण्ड को अपनी काव्य-भूमि बनाया तो स्वयं बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल ने भूषण की पालकी को कंधा दिया था-ऐसी कथा प्रचलित है। बुन्देलखण्ड देश की वीरभूमि है ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार राजस्थान की हल्दीघाटी और हरियाणा का पानीपत। तलवारों की भूमि से तूलिका, कटार की भूमि से कला और काव्य और ईसुरी की फाग-भूमि से शिल्प का राग, ये सब-एक जगह एक-मुश्त प्रस्तुत कर नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने हमारी सुप्त स्मृतियों को इतिहास-चेतना के साथ जाग्रत कर दिया है।

बुन्देलखण्ड ऐसी बुलन्द भूमि है जहाँ शौर्य और शब्द एक साथ सार्थक होते हैं। यही तो वह क्षेत्र है जहाँ खजुराहो के विश्व-विख्यात दुर्लभ प्रस्तर-शिल्प के कालजयी मंदिर हैं, मालवा-बुन्देलखण्ड की मिश्रित संस्कृति का प्रतीक पुरातत्व वैभव से भरपूर विदिशा जिले के शिल्प हैं जिन्हें साँची, उदयगिरि, उदयपुरका, उदयेश्वर शिव मंदिर, ग्यारसपुर एवं हेरोडोरस का स्तंभ आदि देखकर जानते है कि बुन्देलखण्ड ऐसा जनपद है जिसने पत्थरों को मनुष्य और देवता एक साथ बना दिया।

नर्मदा प्रसाद जी ने अपने प्रारंभिक 'निवेदन' में जिन इतिहास-विभूतियों और साहित्यकारों का कृतज्ञ-भाव से स्मरण किया है, वे विभूतियाँ हमारी स्मृति भी हैं, इतिहास भी हैं और हमारी लोक-चेतना की प्रेरणा भी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, वृन्दावन लाल वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि का साहित्यिक अवदान उत्तर प्रदेश और खासकर बुन्देलखण्ड तक सीमित न होकर, देशव्यापी है। इनके अलावा जिन पुरातत्ववेत्ताओं, इतिहासविदों और शिल्पज्ञों का उल्लेख 'निवेदन' में उपाध्याय जी ने किया है, यदि उन सब पर साहित्य-इतिहास-पुरातत्व और शिल्प का एक संयुक्त ग्रंथ तैयार किया जाए तो उन व्यक्तित्वों के अवदान को कीर्ति-कलित किया जा सकता है।

अब इस भित्ति-चित्र-ग्रंथ की काया में प्रवेश कर चित्रों का भित्ति पर लिखा महाकाव्य पढ़े, भित्ति-भाषा के मौन को मनुष्य भाषा में मुखर करें और नर्मदा जी के इस कलात्मक श्रम से उद्भूत ग्रंथ में अवगाहन करें। भारत ऐसा देश है जहाँ अनेक कलाएँ एक साथ अलग-अलग समय में रची गई और उनका उत्खनन, अन्वेषण और विवरण लोक-जीवन की स्मृति बन गया, भारतीय कला का गौरव बन गया। हम फ्रांस में एक आईफल टॉवर और वर्साय पेलेस देखकर मुग्ध हो जाते हैं, इटली में टेढ़ी मीनार (प्लीनिंग टॉवर) और कोलोजियम देखकर वहाँ के पुरातत्व का कमाल बखानते है; इराक का हेंगिग गार्डन, मिस्त्र के पिरामिड, इंग्लेण्ड का लंदन ब्रिज, यूरोप के युद्ध-दुर्ग आदि के स्थापत्य से अभिभूत होकर यूरोप-अमरीका के इतिहासकारों को तो बडे गर्व से स्वीकारते है; क्या भारत का पुरातत्व वैभव, भित्ति-चित्र, (विशाल किले पर 'फोर्ट्स ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक कल्याण चक्रवर्ती, आईएएस ने लिखी है।) आदि देखकर हम वैसा गर्व क्यों नहीं करते है? हम कला-कृतियों को भी विचारधारा की वरदी पहना देते हैं। प्राचीन भारत यदि इतिहास-दृष्टि से देखा जाए तो हमारा भारत कलाओं और काव्य का भारत ही तो है।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने इस कला वैभव की ऐश्वर्य-लीला 'बुन्देलखण्ड के भित्ति-चित्र' ग्रंथ में इतनी आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की है कि जैसे ग्रंथ स्वयं एक कलात्मक भित्ति बन गया है। मालवा के भित्तिचित्र में लगभग एक हज़ार चित्र थे, जैन चित्रावली में भी अनेक चित्र लगभग 200 से अधिक है; और अब 'बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र' जिनकी संख्या भी एक हजार से अधिक है और जो आकर्षक रंगों के मूल स्वरूप में आर्ट पेपर पर प्रदर्शित हैं जो चित्रों के साथ केप्शन देकर चित्र की छवि प्रकट करते हैं लेकिन उन पर नर्मदा जी का विवरण दो प्रकार से महत्वपूर्ण है-एक तो उनकी ऐतिहासिकता और दूसरा वह भाषा-शैली जो इन चित्रों के अनुरूप है। भाषा विज्ञान में जिसे भाषाई पंजी यानी लिंग्विस्टिक रजिस्टर कहा जाता है, उस रजिस्टर का भी लेखक ने दो प्रकार से प्रयोग किया है- एक है ऐतिहासिक, पुराऐतिहासिक और पेंटिंग्ज़ की शब्दावली और दूसरा साहित्य-सृजन की ललित शब्दावली। किसी भी विषय को लिखने के लिए लेखक का भाषा चेतस होना आवश्यक है अर्थात् हम इंजीनियरिंग की शब्दावली से मेडिकल शोधों, सूचनाओं का वर्णन नहीं कर सकते, वैसे ही पेंटिंग्ज़ की शब्दावली उपयोग में न लाकर यदि हम खेल के मैदान या किचन की शब्दावली का उपयोग करेंगे तो पेंटिंग की आत्मा ही नष्ट हो जाएगी। नर्मदा जी ने इस भाषायी-चेतना का इस्तेमाल किया है, इस कारण भित्ति चित्रों की यह प्रस्तुति मात्र दर्शनीय ही नहीं, पठनीय भी हो गई है। वह साहित्य और कला का अनूठा संगम है। नर्मदा जी की

एक पुस्तक है 'भारतीय कला के अन्तर-सम्बन्ध'। बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्र और मालवा के चित्रों में ये अन्तर-संबंध मुखरित हो उठे हैं।

यदि ग्रंथ की सामग्री या कांटेण्ट को देखें तो सर्वप्रथम मध्य प्रदेश के एक ऐसे छोटे जिले का वर्णन है जो किसी समय केवल एक तहसील का जिला था और ग्वालियर जैसी बड़ी रियासत का छोटा-सा पड़ौसी था (अब भी है)। दतिया ज़िला दो बातों के लिए प्रसिद्ध रहा है- एक तो पीताम्बरा की सिद्ध पीठ और दूसरा विश्व विजयी गामा पहलवान की व्यायाम-भूमि। (जो पाकिस्तान चला गया था।) भित्ति-चित्रों का आम लोगों, छात्रों, शोधार्थियों को संभवतया कम ही परिचय था। नर्मदा जी ने दतिया के भित्ति चित्रों, महलों, दुर्ग, स्मारकों आदि को जिस व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किया है, उससे तो लगता है कि ग्वालियर जिले के पुरातत्व, मूर्तिशिला और स्थापत्य की तुलना में दतिया कलाक्षेत्र में अधिक समृद्ध है। भारत में छोटे छोटे कस्बों, गॉवों से लेकर नगरों तक पुरातत्व-वैभव बिखरा पड़ा है, चाहिए उनकी खोज एवं शोध के लिए किसी पुरावेत्ता वाकणकर एवं नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की।

ग्रंथ की अनुकमणिका में दतिया, निवाड़ी, टीकमगढ़, छतरपुर, सागर, दमोह, पन्ना, सतना, ग्वालियर की जिलावार भित्ति-चित्रों की विवरण-सहित प्रस्तुति है, वहीं छह परिशिष्टों में बुन्देलखण्ड का परिप्रेक्ष्य देकर, बुन्देलखण्ड के इतिहास के साथ वहाँ का भूगोल एवं भू-राजनीति का भी विवरण है। खजुराहो जिसे बुन्देलखण्ड के कवि अंविका प्रसाद दिव्य जी ने अपनी पुस्तक में 'खजुराहा' कहा है और माना है कि यह नाम अधिक सही और अर्थसंगत है। ओरछा के जिस जनपद में जो एक समय टीकमगढ़ के राजा की राजधानी था और वहाँ हिन्दी के रीतिकालीन कवि दरबार में सम्मान के साथ रहे, राय-प्रवीण जिनकी कथा बुन्देली मानस पर आज भी अंकित है, महाकवि केशव और वहाँ की छतरियाँ इन सब का सचित्र एवं कलात्मक संयोजन, विवरण, यह प्रमाणित करता है कि यदि एक लेखक की इतिहास-चेतना, कला-चेतना, पुरा-स्मृति और कल्पनाशील दृष्टि क्रियाशील, शोधपरक एवं सर्जनात्मक है, तो वही नर्मदा जी की तरह देश के अन्य क्षेत्रों से भी ऐसी सामग्री खोजकर उसको प्रस्तुत कर सकता है। इस कार्य में विशेष रूप से लोक-समृद्ध ज्ञान और शोधपरक सर्जनात्मकता आवश्यक है जिसका एक सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है नर्मदा जी का यह ग्रंथ 'बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्र' दतिया के भित्ति-चित्र वैभव को देखकर लगता है कि तत्कालीन राजा-महाराजा भले ही सामंती-संस्कार और अपनी जीवन प्रणाली के कारण कुछ हद तक बदनाम रहे हों, लेकिन उन्होंने संगीत, नृत्य, स्थापत्य और कलाओं का जो उन्मेष रचा, वह आज न केवल उनकी बल्कि वहाँ के लोक जीवन की प्रतिभाओं की अजेय अमर स्मृति है जिसे बुन्देलखण्ड की रियासतों में उसी प्रकार देखा, समझा और सराहा जा सकता हैं जिस प्रकार अजन्ता, बाध, एलोरा, दक्षिण भारत के भित्ति एवं शैल-चित्रों को सराहा जाता है। दतिया में चन्देल शासकों से लेकर अनेक ऐतिहासिक वर्णन तो हैं ही लेकिन नर्मदा जी ने रामायण-महाभारत काल एवं हमारी पूरी पुरा संस्कृति एवं इतिहास की स्मृतियों के साथ भी दतिया को जोड़ दिया है। मध्य प्रदेश का बुन्देलखण्ड क्षेत्र इतना कला-सम्पन्न है, यह देखकर लगता है कि इस समृद्ध सांस्कृतिक कलाकर्म को लोक-व्यापी कला के रूप में यदि स्कूल से विश्वविद्यालय तक के पाठ्यक्रमों में अतिरिक्त पूरक पठनीय सामग्री के रूप में शामिल किया जाए तो हमारी पीढ़ियाँ आधुनिकता के साथ हमारे पुरातन के प्रति भी आमुख हो सकती है। दतिया दुर्ग, दतिया के राजवंश, दतिया की पूरी टोपोग्राफी के साथ वहाँ का जनपदीय इतिहास कलाओं एवं विशेष रूप से भित्ति-चित्रों के माध्यम से इतने मनोरम दृश्यों और स्मृतियों के साथ प्रस्तुत कर लेखक ने दतिया को विस्मृति की अदृश्य कारावास से मुक्त कर, दृश्य एवं सार्थक कर दिया है वरना एक इतना समृद्ध जनपद केवल पीतांबरा पीठ की शक्तिपीठ बनकर ही श्रद्धालुओं का तीर्थ बना रहता और इतिहास अपने मौन में जीता रहता। इसके लिए नर्मदा प्रसाद जी का श्रम और कलाभिरूचि अभिनंदनीय एवं प्रेरक है।

दतिया का न केवल चित्रांकन, स्थापत्य एवं शिल्प बल्कि वहाँ की संगीत और राग परंपरा के उल्लेख के बाद जब हम 'निवाडी' (ओरछा) में प्रवेश करते हैं तो लगता है कि हम राम राजा और कृष्ण कला को भव्य लोक में एक साथ खड़े खड़े निहार रहे हैं वह सौन्दर्य, जो ओरछा में भित्ति से लेकर छत तक छाया हुआ है और शोधार्थियों को आमंत्रित करता है कि वह भित्तिचित्रों की भाषा का अध्ययन कर उस लीला-लोक की एक ऐसी गाथा लिखें कि ओरछा न केवल लोक जीवन में बल्कि पूरे विश्व में अपनी कलाओं के साथ आलोकित हो उठे। बुन्देली राज की यह चित्र-भूमि देखकर लगता है कि यदि राम राजा अयोध्या से प्रस्थान कर ओरछा में प्रतिष्ठित हुए तो यह बुन्देली कला का ही अदृश्य आमंत्रण रहा होगा। ओरछा का जहाँगीर महल, कृष्ण मंदिर जिसके एक गवाक्ष से सूर्य की प्रथम रश्मि कृष्ण के मुख पर आभासित होती है और फिर वह बड़ा सा कक्ष या हाल जिसमें भित्ति-चित्रों का अद्भुत संसार है एवं वहाँ की

छतरियाँ ये सब देखकर लगता है कि हमारे पूर्वजों का कलाबोध एवं समर्पण कितना अद्भुत था। ओरछा एक सम्पूर्ण महाकाव्य है भित्ति पर लिखी चित्र भाषा का जिसे नर्मदा जी ने अत्यन्त ही आत्मीय भाव से उजागर कर बुन्देली संस्कृति का कलायोग प्रत्यक्ष कर दिया है।

टीकामगढ़ और ओरछा परस्पर जुड़े हुए हैं। टीकमगढ़ राज्य देश का पहला तत्कालीन राज्य था जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा घोषित कर सम्पूर्ण राजकाज हिन्दी में करना अनिवार्य कर दिया था। इसी प्रकार वहाँ के पुरातत्व के साथ वहाँ की हॉकी टीम भी प्रसिद्ध रही। वहाँ की छतरियाँ महल एवं भित्ति-शिल्प-चित्रों को देख लगता है कि बुन्देलखण्ड के एक राज्य की राजधानी जहाँ केशव, बिहारी एवं छत्रसाल के प्रिय कवि भूषण, ईसुरी आदि की ध्वनि से गुंजित है, वहीं वहाँ से ही ध्यानचंद, रूपसिंह जैसे विश्वविख्यात हॉकी के जादूगरों का भी अनेक टुर्नामेण्ट में खेल के साथ उदय और उत्कर्ष हुआ। जहाँ निवाड़ी के भित्ति-चित्रों में प्रकृति, पेड़, पशु-पक्षी और मानवचित्र हैं वहीं टीकमगढ़ में भी वहाँ के महल अटारी, जुगल निवास आदि का विवरण पठनीय है। यहाँ एक क्षेपक और है कि टीकमगढ़ में एक विस्मृत ऐसा 'बॉटल-हाउस' है जिसे तत्कालीन राजा ने शराब की खाली बोतलों को दीवार में चुनवा कर बनवाया था। मैंने जब उसे देखा तो स्थानीय लोगों ने उसमें घास भर रखी थी। यद्यपि वह कोई पुरामहत्व का स्थान नहीं माना जाता फिर भी एक राजा के उस मनोविज्ञान को वो दर्शाता है जो बोतलों के शिल्प की रचना करवाता है।

छतरपुर अर्थात छत्रसाल-राज्य और न केवल छत्रसाल बल्कि विश्व विख्यात खजुराहो के मंदिर जिनकी एक एक मूर्तिछवि पर सारे संसार का स्थापत्य निछावर दिया जा सकता है। उड़ीसा का कोणार्क एवं मध्य प्रदेश का खजुराहो देखकर लगता है कि कलाकारों ने जो आश्चर्य रचा है वह विश्व के सात आश्चर्यों से भी अधिक बड़ा आश्चर्य है। छतरपुर, सागर, दमोह, पन्ना, सतना, ग्वालियर इन सब पर लिखना अर्थात् एक पूरे पृथक ग्रंथ को लिखना होगा। छतरपुर के द्वार-चित्र, सागर क्षेत्र मे व्याप्त भित्ति-कला, दमोह का शिल्प और मंदिर (एक नया जैन मंदिर भी चर्चा में है), पन्ना के महल और विशेष कर तालाब के आसपास की

छतरियाँ, वहाँ की प्राकृतिक छटा आदि तो प्रसिद्ध हैं ही मगर वहाँ के लोग बताते है कि किसी समय पन्ना का टीक (सागौन) बर्मा (म्यांमार) के टीक के समान माना जाता था और वहाँ के 'पन्ना टायगर' को तो बंगाल टायगर से भी अधिक सुन्दर माना जाता था। खैर यह तो क्षेपक है लेकिन पन्ना पुरातत्व-नगरी के साथ, हीरे की उत्खनन भूमि के साथ प्रभु प्राणनाथ की तीर्थभूमि भी है। पन्ना और आसपास के क्षेत्र में पसरा शिल्प एवं भित्ति-चित्रण वहाँ की लोक-संस्कृति का जीवित साक्ष्य है।

सतना इसलिए भी प्रसिद्ध है कि उससे लगे मैहर की शारदा देवी का शक्तिपीठ एक तीर्थस्थल है। (विषयांताक करते हुए नर्मदा जी से एक छोटा-सा प्रश्न है कि अधिकांश देवी शक्तियों के मंदिर पर्वतों पर ही क्यों है चाहे विष्णोदेवी हो, शारदा देवी या देवास मालवा की चामुण्डा पहाड़ी के देवी मंदिर हो (जिनके बारे में अंग्रेज कथाकार एवं देवास राज्य के राजकर्मी ई.एम. फार्सटर ने 'पेसेज टु इंडिया' नामक विश्व प्रसिद्ध उपन्यास लिखा है।) सतना तो औद्योगिक नगर बन गया है जो पूर्व रीवा राज्य के आधीन रहा है। सतना का महत्व इसलिए भी है कि उसी से लगा हुआ चित्रकूट है जो म.प्र. और उत्तर प्रदेश का कॉमन या साझा तीर्थस्थल है। सतना का महत्व मैहर के कारण के साथ उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की संगीत-स्थायी के रूप में भी है। इस ग्रंथ के अन्दर से लगता है जैसे नर्मदा प्रसाद जी से हमारा अतीत आनंद कुमार स्वामी, रायकृष्ण दास, हजारी प्रसाद जी, विद्यानिवास मिश्र, वाकणकर आदि को साथ खड़ा होकर नर्मदा जी का प्रशंसा-गान कर रहा है। और उन्हें उनके इतने भव्य ग्रंथ पर साधुवाद दे रहा हो।

बुन्देलखण्ड में ग्वालियर का कुछ ही भाग माना जाता है। शेष को जो ब्रज भूमि माना जाता है और कहा जाता है कि गोहर वह कस्बा है जहाँ वृन्दावन के नंदबाबा की गायें चरने आ जाती थीं और इसलिए उसका नाम 'गोहर' और गायों के आने की सीमा पड़ा। ग्वालियर के किले मरू महल, मृगनयनी कथा, तेली का मंदिर एवं किले के आसपास भित्ति शिल्प का अद्भुत दृश्य किले की कलात्मकता से परिचय कराते हैं। रवैर, सतना, ग्वालियर, छतरपुर, सागर, दमोह इनके स्थापत्य एवं चित्र-दृश्यों के वर्णन के लिए तो एक पृथक आलेख आवश्यक होगा।

बुन्देलखण्ड प्रायः अपनी वीरता, बुन्देलों-हरबोलों और पराक्रमी राजाओं के रूप में ही जाना जाता रहा है। बुन्देली-भूमि कला भूमि भी हैं, जो आल्हा-उदल की शौर्य-गाथा से हर बारिश में गुंजित होती है, ऐसी भूमि के कलात्मक उत्कर्ष की महागाथा चित्रों, भित्ति चित्रों, स्मारकों, छतरियों, मंदिरों, द्वारों, किलों, कुओं-बावड़ियों एवं घरेलू चित्रांकनों के माध्यम से ग्रंथ-रूप में प्रत्यक्ष और प्रकाशित कर देना, मामूली काम नहीं है। नर्मदा प्रसाद जी ने इस कार्य के लिए श्रम और संघर्ष दोनों किया, पंडित-पुजारी, महंतो को छायाचित्र लेने के लिए आग्रहपूर्वक निवेदन किया, (जैसा स्वयं

चर्चा में उन्होंने बताया), रेहान और स्वयं लेखक ने फोटोग्राफ उतारे वे अमूल्य निधि बन गए। पुरातत्व का एक अर्थ यह भी है कि वह पुराना पड़ कर धरती में समा जाए और फिर कोई नर्मदा प्रसाद, वाकणकर, मोहम्मद खान आदि पुरावेत्ता, इतिहासज्ञ या जिज्ञासु पुराविद उनकी खोज करें, उनका उत्खनन करें। बुन्देलखण्ड के ये भित्तिचित्र, म्यूरल्स, शिल्प-कला, स्थापत्य, कुछ मिनिचेचर भी और नाना प्रकार के ऐसे पुराकला के प्रतीक जब इस ग्रंथ में समाहित किए गए तो लगा यदि हमारा आधुनिक या नूतन ज्ञान-विज्ञान के अन्वेषण का युग है तो हमारा पुरातत्व, पुरा-शिल्प एवं कला, हमारे पूर्वजों की अद्वितीय लोक-प्रज्ञा से उद्भूत राग-वृत्ति का परिचायक है। हम इतिहास केवल युद्धों या सम्राटों, साम्राज्यों के नाम पर लिखित दस्तावेजों और पुस्तकों से तो पढ़ते हैं, लेकिन नर्मदा जी जैसे सर्वसमर्पित जिज्ञासु, अन्वेषक और स्मृति एवं इतिहास संवेदना से सराबोर व्यक्तित्व के कृतित्व से भी पढ़ें, कलाओं की रंग-लिपि में भी पढ़े, पूर्वजों की कला-रूचियों एवं अवदान में भी पढ़े। यह ग्रंथ हमें प्रेरित करता है कि हम केवल यूरोप, अमेरिका, एशिया-पश्चिम, एशिया आदि के कला-कर्म को देख या पढ़कर गदगद न हों, बल्कि अपना खजुराहो पढ़े, साँची पढ़े, अजन्ता-एलोरा पढ़े, दक्षिण के गोपुरम पढ़े, अपने शैल-शिल्प एवं चित्रों को पढ़े और साथ ही उन समस्त लोक-कलाओं चोक, पुरावे माँडने को पढ़े जो किसी आर्ट-स्कूल के पेन्टरों और मूर्तिकारों की सजावट वाली कला न होकर लोक-प्रज्ञा की जीवित एवं जीवंत प्रतिमाएँ हैं। यहाँ विष्णु पुराण के श्लोक की एक पंक्ति याद आती है-

''गायन्ति देवाः किल गीतकाति
धन्यास्तुते भारत-भूमि भागे।''

दतिया का भित्ति-चित्र एवं शिल्प वैभव निवाड़ी निथौटा ओरछा टीकमगढ़ के मोहगढ़, बल्देवगढ़, छतरपुर के अलीपुर, खजुराहो, सागर के शाहगढ़, खुरई, राहतगढ़, पटनागंज; दमोह के बरी कनोटा और पन्ना अजयगढ़, सतना में चित्रकूट ग्वालियर के दुर्ग, मानमहल, गुजरी महल, तेली का मंदिर और बुर्जों के बीच का मूर्तिशिल्प, पूरे बुन्देली क्षेत्र की भित्ति-कला रायप्रवीण की सौन्दर्य भूमि जो कहने को गणिका थी लेकिन उसका कलाप्रेम, तथा वे छतरियाँ जो पूर्वजों के स्मारक बनकर सदियों से पूर्वजों की छाया बनी हुई हैं, सबको उपाध्याय जी की मनीषा ने जिस प्रकार से उद्घाटित-उद्भासित किया है, उसे हम केवल ग्रंथ ही नहीं बल्कि कलाओं की ग्रंथ-भूमि भी कह सकते हैं। इस श्रम साध्य समर्पण के प्रति यदि हम कृतज्ञ नहीं होते तो यह हमारे इतिहास और स्मृति की अवमानना के समान होगा। समरसेट माम ने कहा था अतीत कितना भी अप्रासंगिक लगे मगर उसकी स्मृति सदा मधुर होती है। इसी प्रकार चीनी दार्शनिक कंफ्यूशस ने भी कहा था कि यदि किसी जाति को अपना दिव्य भविष्य और कौम की महानता को जानना है तो उसके अतीत को जाने। हम लियोना र्दो बिम्ची, माइकल एंजिलो, वान गाग, बाटसेली, रेमब्रेंडेट, पिकासो का नाम यदि गर्व से लेते है तो उन अनाम कलाकारों को याद करे जिनकी स्मृति नर्मदा जी ने रच दी है।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय अपनी सेवा निवृत्ति के बाद भी जिस तन्मयता से जो काम कर रहे है; वह एक और इतिहास की ऐसी रचना है जो ज्ञान-सम्मत, विज्ञान-सम्मत और कला सम्मत है। ये सम्पूर्ण चित्रावली ऐसी लगती है जैसे चित्रों में सरस्वती की वीणा झंकृत हो रही हो। ग्रंथ में चित्र दृश्य है लेकिन उनकी आंतरिक रचना में संगीत निहित है, वे बाह्य-रूप से चित्र-रंग हैं, लेकिन आंतरिक का अन्तरंग भी हैं। ग्रंथ का आकार वैसे तो बहुत बड़ा है क्योंकि चित्रों का आर्ट-पेपर पर प्रकाशन के साथ विवरण भी है। यदि नर्मदा जी अपने अन्वेषण, श्रम, संघर्ष, सहयोग एवं लोकमत के साथ विस्तृत विवरण देते तो न केवल चित्रों बल्कि नर्मदा जी के व्यक्तित्व की भी ग्रंथ छवि प्रत्यक्ष हो जाती, वैसे संक्षिप्त निवेदन में औपचारिकतावश उन्होंने कुछ कहा तो अवश्य है लेकिन यह अपूर्ण या अपर्याप्त-सा लगता है।

एक बात और स्पष्ट करना आवश्यक है। आचार्य हजारी प्रसाद जी, विद्यानिवास जी, कुबेरनाथ राय, एवं अनेक ललित निबंधकार एवं संस्कृति कर्मी अपनी विद्वता की छाप छोड़ते हैं लेकिन उनमें से किसी का भी ललित निबंधों को छोड़कर ऐसा काम नहीं है जो ललित निबंध के सहगामी कर्म के रूप में उपाध्याय जी ने पूर्वजों की कलासत्ता को स्थापित करने के लिए किया है। जब साहित्य और कला का संगम एक साथ होता है तो हमारी सांस्कृतिक ध्वनियाँ विश्वव्यापी होती हैं। इसे अतिशयोक्ति के रूप में न लिया जाए, लेकिन नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का यह कार्य पूर्वजों के प्रति उनकी कृतज्ञता तो है ही साथ ही समकालीनों के लिए प्रेरणा भी। ग्रंथ का इतना मंत्रमुग्ध कर देने वाला प्रकाशन मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला और बोली विकास अकादमी (म.प्र. संस्कृति परिषद) अनवरत प्रकाशन श्लाघनीय एवं प्रेरक है। इस कार्य के लेखक प्रकाशक और समस्त सहयोगी बधाई के पात्र है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय सदा रहे ''चरैवेति, चरैवेति''।

■

बुंदेलखंड का समृद्ध कला-फलक

जवाहर चौधरी

मध्यप्रदेश भारत का हृदय है। तीन लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र वाला मध्यप्रदेश देश का राजस्थान के बाद दूसरा बड़ा राज्य है। भारत के केंद्र में होने के कारण समय की हर हलचल के निशान यहाँ की भूमि पर मौजूद हैं। मौर्यकाल से लगा कर मराठा शासकों तक और उसके बाद ब्रिटिश शासन सहित मध्यप्रदेश की माटी विभिन्न सत्ताओं की साक्षी रही है। लगभग साढ़े चार सौ वर्ष यहाँ मुगल शासन भी रहा। मुगलों के पतन के बाद इसके अधिकांश भाग पर मराठा शासन स्थापित हुआ। आजादी मिलने के बाद 1950 में नए सीमांकन के साथ मध्यप्रदेश का निर्माण हुआ। सन् 2000 में छत्तीसगढ़ एक अलग राज्य बनाया गया और वर्तमान मध्यप्रदेश स्वरुप में आया।

मध्यप्रदेश की वैभवशाली भूमि पहाड़ों, जंगलों, नदियों, समृद्ध ऐतिहासिक विरासत और सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता व लोक कलाओं से दीप्त है। यही वजह है कि समय समय पर जिज्ञासु विद्वजन शोधकार्य के लिए मध्यप्रदेश को प्राथमिकता देते रहे हैं । भारतीय कला-अध्येताओं को यहाँ एक विशाल फलक पर अनेक कालखंडों में समृद्ध वास्तुशिल्प, भित्तिचित्र, लोक-कलाएँ, साहित्य आदि को देखने समझने का मौका मिलता है. हाल ही में निबंधकार और संस्कृतिविद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् की आदिवासी लोक कला एवं विकास अकादेमी के लिए बुंदेलखंड के भित्तिचित्रों को लेकर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है।

उनका शोध ग्रन्थ ''**बुंदेलखंड के भित्तिचित्र**'' शीर्षक से अकादेमी ने प्रकाशित किया है . भारतीय कला के क्षेत्र में श्री उपाध्याय का लेखन व शोध देश में बहुत गंभीरता से देखा जाता है। भारतीय चित्रांकन परंपरा,जैन चित्रांकन परंपरा, मालवा के भित्तिचित्र, राजस्थान की चित्रशैलियाँ, भरतरी का श्रृंगार शतक, भारतीय कला दृष्टि : हिमालय से हरिद्वार, भारतीय कला के अंतर्संबंध, मिनिएचर पेंटिंग को लेकर 'द कंसेप्ट ऑफ़ पोट्रैट', कान्हेरी गीत गोविन्द : पेंटिंग्स इन कान्हेरी स्टाइल, द कलर्स फ्रेगरेंस, पेंटिंग इन बुंदेलखंड,आदि चित्रकला पर उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं। इसके अलावा साहित्य व कला के विभिन्न अनुशासनों के अंतर्संबंधों, सौंदर्यशास्त्र व हिंदी साहित्य की निबंध विधा पर केन्द्रित अनेक पुस्तकें प्रकाशित व प्रकाशनाधीन हैं। श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने हिंदी-अंग्रेजी की अनेक पुस्तकों का संपादन भी किया है तथा उनके ललित निबंध के अनेक संग्रह प्रकाशित हैं। श्री उपाध्याय राज्य और राष्ट्रीय स्तर के अनेक सम्मानों यथा, राष्ट्रीय शरद जोशी सम्मान, कलाभूषण सम्मान, नरेश मेहता वांग्मय सम्मान, आदि से सम्मानित है। आपको चार्ल्स इण्डिया वालेस ट्रस्ट लंदन, शिमेंगर लेडर जर्मनी और धर्मपाल शोधपीठ से फेलोशिप भी प्राप्त हुई है।

आज उनका मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् से हाल ही में प्रकाशित शोध ग्रन्थ ''बुंदेलखंड के भित्तिचित्र'' पाठकों के सम्मुख है .टेबल बुक साइज़ में छः सौ से अधिक पृष्ठों की इस पुस्तक में छः परिशिष्ट और नौ अध्यायों में शोध सामग्री का विस्तार है। मध्यप्रदेश के अंतर्गत आने वाले बुंदेलखंड के सर्वेक्षण और दस्तावेजीकरण क्षेत्रों में ग्वालियर के पिछोर, दतिया, निवाड़ी, ओरछा, लिधौरा, मोहनगढ़, जतारा, टीकमगढ़, पपौराजी, बल्देवगढ़, धुबेला,अलीपुरा, छतरपुर, खजुराहो, धुवारा, शाहगढ़, खुरई, पिठौरियाजी, गढ़पहरा,राहतगढ़, सागर, रहली, गढ़ाकोटा, दमोह, बरी कनौरा, हटा, अजयगढ़, पन्ना, और चित्रकूट हैं। इन जगहों पर ऐतिहासिक महत्व के महल, मंदिर और बाड़े, लोक कलाओं के संरक्षित केंद्र, इमारतें,गुफाओं आदि को अध्ययन के दायरे में लिया गया है। पुस्तक में चित्रकला की भव्यता के दर्शन कराते सैकड़ों सुन्दर चित्र हैं जो पाठक के मन में पर्यटन की जिज्ञासा पैदा करते हैं। साथ ही यह भी ध्यान आता है कि हमारी शालेय शिक्षा व्यवस्था में ऐसे प्रयास नहीं हुए कि नयी पीढ़ी को इस मूल्यवान धरोहर का परिचय मिलता।

पुस्तक का पहला अध्याय दतिया पर है। इतिहास विशेषज्ञ श्री केशवचंद्र मिश्र के हवाले से बताया गया है कि बुंदेलखंड शब्द सर्वप्रथम 1335-40 ईसवी के बीच अस्तित्व में आया जब चंदेलों के बाद बुंदेले इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। ऐतिहासिक विवरण के अलावा इस क्षेत्र को लेकर कुछ महत्वपूर्ण पौराणिक सन्दर्भ भी हैं जिनका जिक्र पुस्तक करती है। दतिया दुर्ग के विषय में सारवान विवरण और सुन्दर चित्र संयोजित हैं। राजा भवानी सिंह के कक्ष में बने भित्तिचित्र के फोटोग्राफ और उनका सूक्ष्म विवरण है। राजा पारीच्छत की समाधि के व्यक्ति चित्र और राग रागिनियों से प्रेरित चित्रों को एक अलग परिशिष्ट में बताया गया है। महाराजा विजय बहादुर की छतरी,

महाराजा भवानी सिंह की छतरी, गोसाइयोंकी छतरी, अवधबिहारी जी का मंदिर, वीरसिंह महल आदि के विषय में विस्तृत चर्चा है। इस अध्याय में चार सौ से अधिक फोटोग्राफ दिए गए हैं जो दतिया की ऐतिहासिक सांस्कृतिक विरासत और जनजीवन को समझने में मदद करते हैं। इसी तरह निवाड़ी अध्याय में भी बुन्देली राज्य ओरछा को चित्रित किया गया है। यहाँ लम्बे समय तक चंदेल राजाओं का शासन रहा जो कलाप्रेमी थे। खजुराहो के विश्वप्रसिद्ध मंदिर इसके साक्ष्य हैं। भगवान राम की मूर्तियों को लेकर विस्तृत जानकारी दी गई है। वीरसिंह जूदेव का शासन काल और उसके बाद तेईस वर्षीय हरदौल जू का प्रसंग जिसमें राजनैतिक षड्यंत्र के तहत उनके चरित्र पर लांछन लगाने की कोशिश की गयी। भाभी के सम्मान की रक्षा करते हुए उन्होंने जानते हुए जहर मिला भोजन ग्रहण किया। उनके देहांत पर नौ सौ बुंदेला वीरों ने अपनी जान दे दी थी। हरदौल जू आज भी आसपास के अंचलों में भगवान की तरह पूजे जाते हैं।

ओरछा के महलों अट्टालिकाओं में बहुत सुन्दर चित्रण आज कला की धरोहर है जिसके सैकड़ों फोटोग्राफ यहाँ दिए हुए हैं। श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने हर फोटो को कला की बारीकी के साथ समझाया है। यहाँ ज्यादातर चित्रांकन साफ हैं और कहीं से भी क्षतिग्रस्त नहीं हैं। वीरसिंह जूदेव जहाँगीर के अच्छे मित्र थे। उन्होंने मित्र के सम्मान में जहाँगीर महल बनवाया था जो ओरछा की बहुत सुन्दर इमारत है . यहाँ जहाँगीर एक दिन रुका था . इसी तरह राय प्रवीण महल, राम राजा मंदिर, चतुर्भुज मंदिर, लक्ष्मी मंदिर, शिव मंदिर, और बेतवा के किनारे महाराजा यशवंत सिंह की छतरी और उनके अन्दर के भित्तिचित्रों को सैकड़ों फोटोग्राफ के माध्यम से बताने का सफल प्रयास किया गया है।

टीकमगढ़ से 42 किलोमीटर दूर लिधौरा बसा हुआ है। यहाँ तीन मंदिरों के भित्तिचित्रों को महत्वपूर्ण माने गए हैं। ये हैं श्री लक्ष्मण जू मंदिर, बड़ा मंदिर और तीसरा भगतराम मंदिर हैं जो अब नष्ट हो गया है। ओरछा की अष्टगढ़ियाँ चिरगांव, बिजना, तोड़ीफतेहपुर, घुरवई, बंकापहारी, कारी, पसारी और टहरौली हैं जो राजा रायसिंह के आठ पुत्रों में बंटी जागीरें हैं। सागर जिले में टीकमगढ़ भी एक ऐतिहासिक महत्व का स्थान है। आल्हा, उदल और मलखान चंदेलों के वीर सरदार थे जिनके नाम से अनेक कथाएं आज भी प्रचलित हैं। यहाँ के रामनिवास मंदिर और जुगल निवास परिसर में भित्तिचित्र देखने को मिलते हैं . पुस्तक में दिये सुन्दर फोटोग्राफ देख कर इन्हें समझा जा सकता है।

टीकमगढ़ से 35 किलोमीटर दूर मोहनगढ़ है। इसके किले की भित्तियों में रामलीला का अंकन है। पास ही जतारा नाम का प्राचीन नगर है। शेरशाह सूरी के पुत्र ने जतारा पर अधिकार कर इसका नाम इस्लामाबाद रख दिया था। बाद में ओरछा नरेश भारतीचन्द ने अफगानों को खदेड़ कर इसका नाम पुन: जतारा रखा। यहाँ शासकों ने जलाशय, मंदिरों और घाटों का निर्माण कराया। टीकमगढ़ से 26 किलोमीटर दूर बल्देवगढ़ है इसका दुर्ग अब खंडहर हो चुका है। पपौराजी जैन संप्रदाय का एक प्रमुख तीर्थ है। यहाँ 108 मंदिर हैं जो इसकी विशेषता माने जाते हैं। ग्वालियर और झाँसी से लगे छतरपुर की सीमा उत्तरप्रदेश से भी जुड़ी हुई हैं। बुंदेला राजा छत्रसाल इसके संस्थापक माने जाते हैं। निकट ही खजुराहो स्थित है जो मंदिरों और शिल्प के लिए विश्वप्रसिद्ध है। पुस्तक में खजुराहो पर अलग से परिशिष्ट दिया गया है। छतरपुर के राजमहल, किला और जैन मंदिर महत्वपूर्ण भारतीय वास्तुकला की सुन्दर रचनाएँ हैं। सागर जिले में शाहगढ़, पिठौरिया जी,खुरई, गढ़पहरा, राहतगढ़, गढ़ाकोटा पटनागंज और रहली आते हैं। मंदिरों, भवनों, इमारतों में भित्तिचित्रों की सुन्दर श्रंखला यहाँ देखने को मिलती है।

दमोह प्राचीन नगर है जहाँ गोंड राजाओं का शासन था। बरी कनोरा दमोह जिले का एक गाँव है जो अब उजाड़ है। यहाँ चंदेलों का एक मंदिर और शाही कोठी हुआ करती थी। इसी तरह पन्ना भी एक प्राचीन नगर है। इसका उल्लेख विष्णुपुराण और पद्मपुराण में भी मिलता है। पन्ना मंदिरों के लिए भी विशेष महत्व रखता है। चालीस किलोमीटर दूर अजयगढ़ है जो महल के लिए जाना जाता है। चित्रकूट एक ऐतिहासिक-धार्मिक महत्व का स्थान है। इसका आधा भाग उत्तरप्रदेश में है। यहाँ अनेक मंदिर हैं जिनमें बहुत सुन्दर भित्तिचित्र हैं. ग्वालियर जिले के पिछोर में एक गढ़ी है जिसमें कुछ भित्तिचित्र दिखाई देते हैं। पुस्तक में इन पर भी चर्चा है . छ: परिशिष्ट के अंतर्गत शैलचित्र व भित्तिचित्र परंपरा, खजुराहो के मंदिर, ओरछा के शासक, रायप्रवीण, महाकवि केशव और मरण की जीवंत स्मृति यानी छतरी पर विशिष्ट आलेख हैं।

इस शोध ग्रन्थ से गुजरते हुए मध्यप्रदेश के प्राय: उपेक्षित कला फलक को खुलते देखने का सुख मिलता है। श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय की भाषा साहित्यिक है किन्तु सरल है। विषय को जितनी सहजता और तरलता से वे पाठक के मानस तक पहुंचा देते हैं ये उनकी साहित्यिक साधना का सुफल है। पुस्तक बहुत परिश्रम और समय ले कर लिखी गयी है। उतने ही मनोयोग और उदारता से मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् ने इसे छापा भी है। ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ पाठकों के निजी पुस्तकालय में होना चाहिए,संभवत: इस

बात का ध्यान रखते हुए अकादमी ने इसका मूल्य मात्र बारह सौ रुपये रखा है। पूरी पुस्तक ग्लेसी पेपर पर छपी है। प्रिंटिंग दोषरहित है। उम्मीद है मध्यप्रदेश के जागरूक व कला के प्रति संवेदनशील नागरिक इस काम को देख कर संतुष्ट होंगे।

– बी एच 26, सुखलिया, भारत माता मंदिर के पास, इंदौर – 452010,
फोन: –9406701670

बुंदेलखंड के भित्तिचित्र– नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

– प्रोफेसर भवानी शंकर शर्मा

बुंदेलखंड के भित्तिचित्र पुस्तक के कवर को देखकर ही आभास हो जाता है की नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने बुंदेलखंड की समृद्ध भित्ति चित्रण परंपरा को जानने समझने और उसका रसास्वादन करने के द्वार खोल दिए हैं। जैसे–जैसे पृष्ठ पलटते जाते हैं आकर्षण बढ़ता जाता है। विविध चित्रों के बाहुल्य ने और सुंदर प्रस्तुतीकरण इस पुस्तक को विशिष्ट बनाया है।

बुंदेलखंड के कलाकारों ने अजंता बाघ व अन्य गौरवशाली भित्ति चित्र परंपरा की पारंपरिक तकनीक से महलों मंदिरों व अन्य स्थापत्य की भित्तियों पर धार्मिक चित्र, श्रृंगार, आखेट प्रकृति चित्रण, युद्ध, राज दरबार, साहित्य व अन्य विषयों व अलंकरण से समृद्ध किया।

बुंदेलखंड के भित्ति चित्रों में इतिहास ,साहित्य, दर्शन, कला व सौंदर्य शास्त्र की पंचमुखी धारा के कलात्मक प्रभाव को आत्मसात कर उपाध्याय जी ने बुंदेलखंड की कला को समझने की नई दृष्टि दी है। इसमें तत्कालिक समाज की विभिन्न धाराएं अनेक प्राचीन व अर्वाचीन ग्रंथों के संदर्भों द्वारा भित्ति चित्रों के अपने विवेचन को अलंकृत किया हैं । यह सत्य है कि मूक चित्रों के गीत स्वर व लय को सुनने और समझने के लिए संवेदनशीलता सहृदयता व कलाकृतियों से संवाद करने की क्षमता आवश्यक है। अपने इन्हीं गुणों के कारण नर्मदा प्रसाद इन चित्रों से संवाद कर सके और उन्हें बुंदेलखंड के चित्रों ने उद्वेलित किया इस पुस्तक के लेखन के लिए।

अपनी भौगोलिक ,ऐतिहासिक ,साहित्यपरक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक चेतना व अपनी विशिष्ट कला दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य को संपन्न किया।

लोक से ललित कला तक वर्षों से बुंदेलखंड की सांस्कृतिक विरासत से रूबरू होते हुए मनीषी नर्मदा प्रसाद ने यह महसूस किया कि इस अंचल की विरासत का दस्तावेजी करण किया जाना आवश्यक है । लेखक ने इस अंचल के वयोवृद्ध इतिहासकारों व अन्य जानकार विद्वानों से संपर्क कर छोटे से छोटे स्थान पर जाकर छायांकन वह जानकारी एकत्रित करने का कठिन प्रयास किया। उनका प्रयास यही रहा कि कोई भी स्थल सर्वेक्षण, शोध व दस्तावेजीकरण से छूट न जाए ।

डॉ उपाध्याय ने प्रमुख स्थलों के साथ छोटे–छोटे स्थलों के उपलब्ध स्थापत्य, चित्रों, भित्ति चित्रों व संबंधित स्थलों के इतिहास पर भी प्रकाश डाला । उपलब्ध जानकारी के आधार पर नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने भित्ति चित्रों के विवेचन में वैदिक, पुराणों, रामायण ,महाभारत, विभिन्न लोक कथाओं तथा समसामयिक साहित्य और उस समय के कवि ,लेखकों , शासकों, इतिहासकारों के संदर्भ ग्रंथों, शिलालेखों को चित्रों की विवेचना का आधार बनाया। जिससे कलाकार का मंतव्य ज्ञात हो सके और हम चित्रों से संवाद कर सकें उनका भावार्थ समझ सके। चित्र संयोजन व सौंदर्य मापदंडों को आधार बनाकर चित्र मर्म की सुंदर विवेचना कर हमें रस अनुभूति कराई । ललित कला के सभी अनुशासनो चित्र, भित्ति चित्र, शिल्प, स्थापत्य व हस्तकला स्वरूपों की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक परंपराओं का आपने प्रभावकारी ढंग से विवेचन किया है । बुंदेलखंड के चित्रों में कोटा बूंदी जयपुर एवं मुगल शैली का प्रभाव भी उन्होंने स्पष्ट किया।

कलाकृति के मर्म को समझने के लिए लेखक ने अनेक कवियों के दोहो व छंदों का दिलचस्प संदर्भ दिया है। बिहारी के दोहों से स्पष्ट किया है ....जिसका अर्थ ..दो चित वाली नायिका से न हिलते न चलते न हंसते और न झुकते बनता है । वह चित्र को देखकर चित्र वत हो जाती है। ...नायिका की छवि बनाने के लिए अनेक गर्वीले चित्रकार तत्पर हुए, लेकिन उस सुंदर नायिका की छवि बनाने में जगत के यह निष्णात चित्रकार सफल नहीं हो सके। बिहारी की अभिव्यक्ति से उस समय के बुंदेलखंड में चित्रकला के अनुशासन का कितना महत्व रहा होगा अच्छे से जाना जा सकता है।

बुंदेलखंड में ओरछा व दतिया बुंदेलखंड चित्रांकन शैली के चित्रों व भित्ति चित्रों के प्रमुख केंद्र रहे। राज दरबार ,युद्ध,

रामायण, महाभारत, विष्णु अवतार, कृष्ण लीला, राग माला, बारहमासा, भागवत, कवि प्रिया, रसिकप्रिया, बिहारी सतसई तथा रसराज, समसामयिक व अन्य विषयों के आधार पर अनेक चित्र बने। अनेकों स्थापत्य विविध आकर्षक अलंकरण से भी अलंकृत हैं जिनका विस्तृत सर्वेक्षण, शोध एवं विवेचन पुस्तक में प्रस्तुत किया है ।

''इतिहास की जगमगाती स्मृति राय प्रवीण या प्रवीण राय भी कहते हैं। राय प्रवीण कथाओं में जीवित है और ओरछा के लक्ष्मी महल की दीवारों पर किए गए उनके अंकन में मानो वह प्राणवान हो उठी है । ओरछा के भग्न प्रवीण राय को फर्श पर यदि ध्यान से सुने तो कहीं उसकी घुंघरू की ध्वनि से गुथी पदचाप सुनाई देती है, तो कहीं इस महल की दीवारों पर अंकित चित्रों में वह नृत्य मुद्रा दिखाई देती है।'' जिसे अपने समय के इंद्रजीत को भी जीत लिया था। राय प्रवीण की कथा व ऐसे अनेक संदर्भ द्वारा उपाध्याय जी ने पुस्तक को और अधिक रसमय बना दिया है

डॉक्टर नर्मदाप्रसाद ने भित्ति चित्र पद्धति की जानकारी हेतु विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्र, अभिलाशित्तार्थ चिंतामणि, नारद शिल्प ,शिल्प रत्न, चिंतामणि मानसार व समरांगण सूत्रधार आदि ग्रंथों मैं भित्ति चित्रण की प्रक्रिया रंग सामग्री के तैयार करने की विधि के संबंध में भी विस्तृत चर्चा की है। चित्र में आने वाली सामग्री औजार व चित्र में प्रचलित शब्दों का विवरण भी प्रस्तुत किया है। उपरोक्त प्राप्त साहित्य का तुलनात्मक विवरण भी दिया है।

भित्ति चित्र के भारतीय व मध्य प्रदेश के परिदृश्य पर चर्चा करते हुए वैश्विक परिदृश्य पर भी प्रकाश डाला है ।

साथ में अनेक ऐतिहासिक चित्रों के कंजर्वेशन में की गई कमियों को भी उजागर किया है जिससे मूल कृति के रंग रेखांकन संयोजन व चित्र सौंदर्य प्रभावित हुआ। इससे भविष्य में होने वाली गलतियों को सुधारा जा सकता है ।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने अपनी समग्र कला दृष्टि से बुंदेलखंड के भित्ति चित्रों के अनछुए पक्षों को उजागर किया है ।
यह पुस्तक आने वाली पीढ़ी को भित्ति चित्रों की समृद्ध परंपरा के ज्ञान के साथ-साथ नए नए सर्वेक्षण शोध और दस्तावेजीकरण के नए कीर्तिमान स्थापित करने के लिए प्रेरित करेगी।

मनीषी नर्मदा प्रसाद उपाध्याय इस सुंदर पुस्तक के प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

लोक स्मृति के आलोक में - ''बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्र'' ग्रन्थ

-ललित शर्मा 'इतिहासकार'

जाने-माने इतिहासकार और कला मर्मज्ञ श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय (इन्दौर-मालवा) भारतीय हिन्दी एवं कला की उस आर्ष परम्परा के संवाहक है जिसमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रायकृष्णदास, पं. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ जैसे प्रभृति विद्वान रहे है। श्री उपाध्याय के अनेक कला ग्रन्थ ऐसे खोजी ग्रन्थ है जो उपेक्षित और अप्रकाशित, अदेय तथा निर्जीव की जीवन गाथा को सजीव रूप में रचते है। वे उनमें कला परम्परा और इतिहास के मूल तत्वों का अन्तर तल तक अन्वेषण करते है। उनमें लोक की कला, संस्कृति का पुर्नजाग्रत आलोक होता है जो आज के दौर में जानना संस्कृति साधकों के लिए आवश्यक है।

हाल ही में श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय का सद्य: प्रकाशित एवं सुबोध कला ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्र' हमारे समक्ष है। इसमें बुन्देलखण्ड के विस्तृत छोटे-बड़े भाग दतिया, ओरछा, मोहनगढ़, टीकमगढ़, राहतगढ़, सागर, गढ़पहरा, दमोह, अलीपुरा, खजुराहों, चित्रकूट, अजयगढ़, सतना में जो चित्रांकन कला के तत्व मौजूद है उन सभी का ऐतिहासिक एवं चित्रमय अनुशीलन इस सुबोधग्रन्थ में समाहित किया है। बुन्देलखण्ड में कला की इस विस्तृत परम्परा में लोक चित्र, मांडना, भित्ति पर अंकन, चौक में अंकन आदि बहुतायत से है। इनका श्री उपाध्याय ने सम्यक शोध पूर्ण परिचय विवेच्य ग्रन्थ में दिया है। श्री उपाध्याय ने इन चित्रों में पुरातत्व, इतिहास के साथ तत्कालीन शासकों की अभिरूची, संस्कृति व धर्म की मान्यताओं को गहनता से परखा है। अत: वे इस ग्रन्थ में बुन्देलखण्ड का सांगोपांग विवरण प्रस्तुत करते है। इसके आगे वे विवेच्य भू-भाग के सीमांकन के विभिन्न स्थानों की भित्ति चित्रांकन परम्परा को देखते है। इस परम्परा के उद्भव, विकास एवं वर्तमान स्थिति पर भी उन्होंने विशद प्रकाश डाला है।

बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक परिचय देते हुए वे लिखते है कि - 'बुन्देलखण्ड' शब्द सर्वप्रथम सन् 1335-40 ई0 के मध्य तब आया जब चन्देलों के पश्चात् इस क्षेत्र में बुन्देले प्रविष्ठ हुए। इस क्षेत्र के अनेक स्थलों के नाम यथा चित्रकूट, कालंजर, जालोन आदि का उल्लेख अनेक पुराणों में आया है जिससे इनकी प्राचीनता प्रतिपादित होती है। बुन्देलखण्ड का भू-भाग इतिहास में मौर्य, शुंग, नाग, सहित

गुप्तों के अधिकार में रहा। विवेच्य क्षेत्र में उनके प्रमाण भी मिले है। चन्देलों का इस क्षेत्र में बड़ा प्रभाव रहा। 13वीं सदी में खिलजी व अन्य मुगल शासकों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण कर यहाँ काफी क्षति पहुंचाई। बुन्देले शासकों ने अपनी वीरता के कारण इस क्षेत्र को पराभव से बचाया तथा अनेक सांस्कृतिक नगरीय व्यवस्था स्थापित की।

बुन्देलखण्ड में दतिया प्रसिद्ध स्थान है। लेखक ने इसका कलागत अध्ययन करते हुए रेखांकित किया कि यहाँ की चित्रशैली लघुशैली के लिये विश्व में ख्याति प्राप्त है। रागमाला सहित भागवत व कवि, रसिक, बिहारी के आधार पर बने चित्र यहाँ परम्परागत रूप में हैं। यहाँ अनेक स्वनामधन्य चित्रकार हुए हैं जिन्होंने यहाँ के भित्ति चित्रों के निर्माण में अपना जीवन समर्पित किया है। इन चित्रों में भावप्रणता, धर्म एवं दर्शन की अनुपमेय अभिव्यक्ति है। यहाँ के महलों की भित्तियों पर 19वीं सदी के कृष्णलीला, दरबारी, अवतार आदि के मनमोहक चित्र है। दतिया में राजा पारीच्छत की समाधि व अन्य छतरियों पर रागरागिनी के चित्रों का आकल्पन है। यहाँ का राजा भवानीसिंह का कक्ष भित्ति चित्रण की दृष्टि से अत्युत्तम है जिसमें कला की बुन्देली एवं मुगल कलम का प्रभाव है। लेखक श्री उपाध्याय ने इन सभी का वर्णन सुक्ष्म रूप से किया है। उन्होंने इन भवनों के मोहक शिल्प पर भी विशद् प्रकाश डाला है।

बुन्देलखण्ड में ओरछा का बड़ा महत्व है। यह राजाराम मन्दिर के कारण विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ मौर्यो से लेकर अनेक शासकों के वंशों का शासन रहा। ओरछा के राजा मधुकरशाह और उनकी रानी गणेशकुंवरी की भक्ति की कथा काफी प्रसिद्ध है। ओरछा के अनेक शासक सांस्कृतिक अभिरूचि के होने से उन्होंने कला की परम्परा को आश्रय दिया। ओरछा के लक्ष्मी मन्दिर की भित्तियों पर बने लोकचित्रों में बुन्देलखण्ड की लोककला के दर्शन निहित है। यहाँ के राजा रानी महल, जहाँगीर महल, रायप्रवीण महल, राजाराम मन्दिर में जो भित्ति चित्रांकन है उसमें विविध विषय कृष्णलीला, रामलीला, अवतार, नायक-नायिका भेद, राग रागिनी तथा नैसर्गिक सौन्दर्य के अप्रतिम अंकन है जो परम्परागत है। ये ऐसे मनभावन चित्रण है जो अनेक स्मारकों की भित्तियों पर उकेरे गये है तथा लेखक ने इनकी विशद जानकारी स्मारकवार दी है। इनमें वैष्णव अवतारों के चित्रों की सुन्दर जानकारी है। राजामहल के चित्रों में रामलीला व कृष्णलीला के चित्र बड़े नयनाभिराम है। इन चित्रों का अंकन अधिकांशत: जिन गवाक्षों में है उनका चित्रण भी अत्यन्त मनोहारी है। रायप्रवीण महल के नृत्यचित्र भी बड़े कलात्मक है। लक्ष्मी मन्दिर की भित्तियों पर नायिकाओं के चित्रण में उनकी भंगिमाएँ भी आकर्षित करती है। लेखक श्री उपाध्याय ने इन समग्र चित्रों की सूक्ष्म व्याख्या काफी जीवन्त रूप में की है तथा उनके आकल्पन पर नवीन दृष्टि डाली है।

लिधौरा, बुन्देलखण्ड की प्रसिद्ध युद्धकृति 'आल्हाखण्ड' में वर्णित 'लोहागढ़' माना जाता है। यहाँ के मन्दिरों में 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध के भित्ति चित्र है। इनमें श्री 'लक्ष्मण जू मन्दिर' की भित्तियों पर रामलीला के विविध घटनाक्रमों के चित्रों के साथ, राजपुरूष की सवारी एवं जुलूस के अंकन है। भागवत् के प्रसिद्ध प्रसंग गजेन्द्र मोक्ष एवं रामायण में वर्णित वानरों का गतिशील रूप में अंकन का चित्रण मनमोहक है। यहाँ कुछ अंकन ऐसी स्त्रियों के है जिनके परिधानों में बुन्देलखण्डी संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। गजों के अंकन काफी प्रभावोत्पादक है। अनेक कत्थई रंग के चित्र भी अपनी गाथा कहते है।

ओरछा की अष्ट गढ़ियों में चिरगाँव, बिजना, तोड़ी फतेपुर, घुरवाई, बंकापहारी, कारी (दाउदपुरा) पसारी, टहरौली प्रमुख है। इनमें चिरगाँव हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जन्मस्थली है। यहाँ की बावड़ी की दीवारों पर रामलीला के दृश्य है जिसमें वानरयूथों का दानवों से युद्ध का दृश्य अत्यन्त प्राणवान है। इन चित्रों में जल जीवों को भी उकेरा गया है। ऐसा भी माना जा सकता है कि ओरछा के प्रख्यात 'राजाराम' मन्दिर के प्रभाव के कारण विवेच्य भू-भाग की भित्तिकला पर राम व रामलीला के विविध अंकन बहुतायत से बने हो और फिर उसी 'राम भावना' से प्रभावित हो गुप्त जी ने अपना प्रसिद्ध काव्य 'साकेत' भी लिखा हो। बिजना के भित्ति चित्रों का प्रदर्शन लघुचित्रों के रूप में इंग्लैण्ड में संरक्षित है। इनमें बुन्देलखण्ड शैली की विद्यमानता है जो अपनी विशेषता के कारण प्रख्यात है। इनमें कृष्णलीला, गजेन्द्र मोक्ष प्रमुख है। यहाँ कृष्णलीला के विविध प्रसंगों के चित्र है तथा लघु चित्र बुन्देलखण्ड कलम का प्रतिनिधित्व करते है। इन चित्रों पर दतिया शैली का प्रभाव 19वीं सदी में आया। लेखक ने बिजना के व्यक्तिगत शाही चित्रों का भी महत्वपूर्ण उल्लेख किया है जो संवत् 1865 में बनाए गए। बिजना गढ़ी के द्वार पर अंकित विभिन्न देवताओं के चित्रों का बड़ा सुन्दर वर्णन है। तोड़ी फतेपुर के महल की भित्तियों पर राजशाही जुलूस व रामलीला के मनोहारी दृश्यांकन है। रामकथा के विविध प्रसंगों को बड़े मनोभावों से तूलिकाकारों ने उकेरा है। इन चित्रों में बुन्देली कलम का प्रभाव है। ऐसे ही प्रसंग उक्त वर्णित अन्य गढ़ियों की भित्तियों पर अंकित है। लेखक ने इन सभी गढ़ियों के चित्रों के वर्णन

के साथ इन स्थलों के निर्माणकर्ताओं तथा उनके राजसी वंशजो, जागीरदारो का भी इतिहास रेखांकित किया है तथा गढ़ियों के चित्र भी प्रकाशित किये हैं।

टीकमगढ़ प्राचीन भारतीय राजवंशों का अधिकृत भाग रहा परन्तु चन्देल वंश के नरेशों के समय इनका वैभव शीर्ष पर रहा। यहाँ के रामनिवास मन्दिर में आकल्पन के जो विभिन्न दृश्य अंकित है उनमें राधाकृष्ण की विभिन्न श्रृंगारिक भंगिमाओं का अंकन अत्यन्त सुन्दरता लिये है। यहाँ शिकार, योद्धा, घुड़सवार के साथ ब्रिटिशकालीन सैनिकों का भी चित्रण है। ये सभी चित्र ओरछा शैली के है जो 19वीं सदी के हैं। यहाँ का जुगल निवास अपने आकल्पन के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ की छतों एवं भित्तियों पर कई स्त्रियों के विभिन्न भंगिमाओं में दृश्य है। इन चित्रों की गतिशीलता बड़ी आकर्षक है। लेखक ने इनका वर्णन बड़ी सजीवता से किया है। यहाँ के धर्मपाल सिंह जूदेव व हमीर सिंह जूदेव के स्मारक की भित्तियों पर भी ब्रिटिश कालीन चित्रण है।

मोहनगढ़ के किले की भित्तियों पर बने चित्रण अन्य चित्रण से अधिक पुरातन है। इस बारे में लेखक की मान्यता है कि यहाँ की आकृतियों के अनुपात, रंग संयोजन बादामी पृष्ठभूमि तथा लम्बी पत्तियोंवाले आकल्पन इसके प्रमाण है जो 17वीं सदी के उत्तरार्द्ध के है। इन चित्रों में रामायण के विभिन्न दृश्यों के साथ उनके परिवेश को भी उकेरा गया है। इनके साथ ही यहाँ नृत्यांगनाओं, जुलूस, अवतारवाद के भी दृश्य है। प्रतीत होता है अपने समय के ये अत्यन्त मनोरम चित्र रहे होगें।

जतारा, बलदेवगढ़, पपौराजी के विभिन्न देव स्थानों एवं ठिकानों की भित्तियों पर भी चित्रण की परम्परा का निर्माण हुआ है। पपौराजी के संभवनाथ मन्दिर की छत पर जो चित्रण है यह विशिष्ट है। इसमें राजा-रानी का जुलूस व सैनिकों की नारंगी रंग की पौशाक सबसे अलग है जो बुन्देलखण्ड के अन्य चित्रों में इस रंग में नहीं मिलती।

छतरपुर के राजमहल की भित्तियों पर बने चित्रों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इन अंकनों में कुछ इबारत भी विद्यमान है। इन चित्रों में मानवीय गतिविधियों का अंकन है जिनमें, राजा, दरबारी, सेवक, सभासद व शाही बैठक की भव्यता है। इनके परिधानों में बुन्देली कलम का प्रभाव है। चित्रों में लाल एवं हरा रंग बहुतायत से प्रयोग हुआ है। यहाँ के किले की भित्तियों पर वैष्णव अवतारों का अंकन विशिष्ट है। यहाँ के जैन मन्दिर में तीर्थंकरों के व अन्य जैन तपस्वियों के चित्र है। बाराहद्वारी पर पुष्प आकृतियाँ बड़ी सुन्दरता लिये है।

धुबेला में रानी कमलापति की समाधि पर आकल्पन 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से 20वीं सदी तक के मिलते है। यहाँ छत्रसाल की समाधि पर कत्थई रंग से बनी पशु आकृतियाँ है। बेरछा रानी की छत्री में राधाकृष्ण की भंगिमाओं के चित्रण उल्लेखनीय है।

खजुराहों विश्व प्रसिद्ध मन्दिर धरोहर के लिए विख्यात है, लेखक ने यहाँ पर भी गम्भीरता पूर्वक लिखा है कि इन मन्दिरों की भित्तियों पर जिन शिल्पों का निर्माण हुआ, उनसे पूर्व मन्दिरों के फर्श पर कलाकारों ने जो रेखाचित्र अंकित किए उन्हें ''मैसन मार्क्स'' कहा गया और इस कलात्मक पक्ष पर अभी तक विचार नहीं किया गया।

सागर महाकाव्यकालीन क्षेत्र है जो बाद में चन्देल और कलचुरी तथा परमार नरेशों का सत्ता केन्द्र रहा। यहाँ के लक्ष्मी मन्दिर, जैन मन्दिर की भित्तियों पर जो चित्रण है वे नवीन है इनमें गज, श्रेष्ठि का अंकन है। पिठौरिया जी का मन्दिर प्राचीन है। इस मन्दिर एवं किले में कुछ चित्र जैन श्रेष्ठियों, तीर्थंकरों के है। गढ़ाकोटा में छतरपुरिया के जैन मन्दिर के बरामदे की भित्ति पर कुछ चित्रण है। इनमें दधिमंथन, कृष्णलीला प्रसंग, सुदामा सेवा का चित्रण है। विष्णु लक्ष्मी का चित्रण भी यहाँ वराह अवतार के साथ है। लेखक इन चित्रों को मराठा कालीन बताते हैं। इन चित्रों में अवतारवाद के तहत परशुराम-सहस्त्रार्जुन युद्ध, नृसिंह अवतार सहित रामदरबार, कृष्णलीला प्रमुख है। इनमें रामदरबार का चित्रण वानर यूथपतियों के साथ है जो बड़ा भावमय है। राधाकृष्ण के चित्र में मोरमुकुट व मस्तक के पृष्ठ में सुन्दर वलय का अंकन है पूतना की गोद में नीलवर्णीय शिशु कृष्ण का अंकन अत्यन्त प्राणवान है। इस प्रकार तपस्वी, पहलवान, योद्धा, नृत्यांगनाएँ, राजपुरूष, राम का लवकुश से युद्ध, मराठा सामन्त व संत आदि के चित्र वर्गाकार आकारों में अंकन किये गये है। एक अंकन में राम सहित लक्ष्मण, भरत, शत्रुधन की बारात का प्रभावशाली अंकन है। राजा मर्दन सिंह का आसन चित्र काफी सजीव है जिसमें उनका अभिजात्य प्रभाव उभर कर आया है।

पटनागंज रहली में जैन मन्दिर के भित्ति चित्रों में जैन कथानकों के आधार है। इनमें रंग संयोजन की कलम स्पष्टता के कारण उनकी सहजता, भाव प्रवणता आकर्षक है। चित्रों में लाल, पीला, हरा, बैंगनी व आसमानी रंगों का प्रयोग निहित है। सभी चित्र एकचश्म है तथा ये 18वीं सदी के है।

दमोह जिले में हटा के किले की भित्तियों पर वैष्णव

कथाओं में गजेन्द्र मोक्ष, चीरहरण तथा हनुमान के भित्ति चित्र है। चित्रकूट के बिजावर मन्दिर में कृष्णलीला के विभिन्न चित्रों में उनकी बाल अठखेलियों का लघु अंकन है तथा भित्तियों पर वराह अवतार सहित राधा के संग कृष्ण की नेत्ररंजक नृत्य भंगिमाएँ है। यहाँ 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध के राम हनुमान विषयक चित्रों के साथ ब्रिटिश सैनिकों का भी सशस्त्र अंकन है। ग्वालियर के पिछौरा की गढ़ी की भित्तियों पर शेषशायी विष्णु, लक्ष्मी, सुभद्रा, बलराम, समुद्रमंथन एवं वन्य शोभा के चित्र हैं जो पहली बार प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से प्रकाश में सचित्र जानकारी सहित आये है।

ग्रन्थ के अन्त में लेखक ने परिशिष्ट-1 के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के परिप्रेक्ष्य में वहाँ के शैलचित्र व भित्ति चित्र परम्परा पर विशद प्रकाश डाला है। लेखक ने शैलचित्रों का वैश्विक एवं भारत देश के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत जानकारी देते हुए मध्यप्रदेश एवं बुन्देलखण्ड के विभिन्न वर्गो के शैलचित्रों पर सचित्र प्रकाश डाला है। उन्होंने बुन्देलखण्ड के भित्तिचित्रों का गुजरात शैली, अजन्ता व मध्यप्रदेश के अन्य भित्ति चित्रों की शैली से बड़ा महत्वपूर्ण और समीक्षात्मक विश्लेषण किया है। खजुराहों के मन्दिरों की कला पर भी उन्होंने गहनता से विशद् प्रकाश डाला है। बुन्देलखण्ड की नृत्य साधिका रायप्रवीण पर लेखक ने ग्रन्थ के अन्त में साइतिहास जानकारी दी है तथा उसके छंद भी रेखांकित किये है जो शोध के आयाम खोलते है। उन्होंने ओरछा के महाकवि केशव पर उनके कृतित्व सहित भी पूर्ण जानकारी दी है।

'बुन्देलखण्ड के भित्ति चित्र' ग्रन्थ क्षेत्रीय इतिहास लेखन की दृष्टि में अति उपयोगी है। इसमें सुक्ष्मता से उक्त क्षेत्र विशेष का गहन कला सर्वेक्षण है। ग्रन्थ में क्षेत्र के छोटे-बड़े स्थलों पर महत्वपूर्ण इतिहास सम्मत कलामय जानकारी है। ग्रन्थ का अध्ययन करने से प्रतीत होता है लेखक श्री उपाध्याय हृदय से लीन होकर हमें ये कलात्मक स्थल प्रत्यक्ष दिखा रहे है जिनमें रंग और रेखाएँ स्वयं बोलती है। वर्तमान में इस प्रकार के लेखन करने वाले कला इतिहासकार अत्यल्प है, अत: राज्य सरकारों द्वारा अपने अपने राज्यों में ऐसे क्षेत्रीय महत्वपूर्ण कार्य देशभर में करवाये जा सकते है ताकि क्षेत्रीय कला सम्पदा अन्धकार से निकलकर जन-जन में प्रसारित हो सकें क्योंकि भित्ति चित्रों की परम्परा पर इस प्रकार के इतिहास और कला सम्मत प्रकाशन कार्य अभी अल्प ही हुए है, जबकि ऐसे प्रकाशन एवं लेखन से कला सम्पदा का बड़ा क्षेत्रीय पक्ष हमारे समक्ष उभर कर आ पाया है।

- 'अनहद' जैकी स्टूडियों, 15-मंगलपुरा, झालावाड़-326001 (राज.)
मोबा. 9829896368

Dear Narmada Prasadji,

I am delighted to see the mammoth publication "Bundelkhund ke bhitichitra." For the first time the murals in forts, palaces, temples and even chhatris of Bundelkhand have been so well documented. Your scholarly research further enhances the importance of these special art form. I find it interesting to see how an artist has devised various ways to fulfill the demand of the mural art. The significance of this publication will only increase as time goes by. I feel that an English version is required for a wider reach.

With best wishes,

-Amit Ambalal

Dear Mr Upadhyaya,

Thank you very much for sharing the pdf files with me of your two important new books, Malwa ke Bhittichitra and Bundelkhand ke Bhittichitra.

I am impressed by the wide-ranging scope of these ambitious survey works and the great wealth and variety of mural paintings, from many different centres in these regions, that you have recorded. Wall-paintings by their nature are of course notoriously susceptible to damage and decay, and so much has already been lost. Your work has done much to help preserve the historical record of the mural art of the palaces, havelis and other monuments of Central India.

I do think it would be highly desirable for these works to be translated and published in English also, for the benefit of a still wider audience, including the many foreign visitors who come to visit Datia, Orchha and other important sites of these regions.

I do hope it will be possible for English language editions of your valuable books to appear before long, and that the Department of Culture of the Government of Madha Pradesh may give its support to that project.

With kindest regards as ever,

-Dr Andrew Topsfield
Honorary Curator
Ashmolean Museum
University of Oxford, OX12PH

पुस्तक समीक्षा

भारतीय कला के अंतर्संबंध पर वैचारिक विमर्श

-श्याम सुंदर दुबे

पुस्तक विवरण -

पुस्तक का नाम : भारतीय कला के अंतर्संबंध
लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
प्रकाशन वर्ष : 2020
मूल्य : 160.00 (एक सौ साठ रूपये केवल)
प्रकाशक - निदेशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
नेहरू भवन-5, वसंत कुंज इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज -2, बंसत कुंज
नई दिल्ली 110070

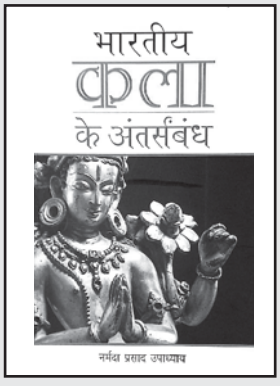

इस जिज्ञासा का जागना स्वाभाविक है कि क्या कलाओं में अंतरावलंबन की प्रक्रिया निहित रहती है या उनकी स्वतंत्र संरचनात्मक सत्ता एकदम निरपेक्ष रूप से अपने व्यक्तित्व का निर्धारण करती है ? यह एक सामान्य सी जिज्ञासा भले ही लग- रही हो, किंतु इसका सामाधान अनेक वैचारिक, सैद्धांतिक और व्यवहारिक संक्रियाओं से गुज़र कर प्राप्त किया जा सकता है। कला-परिसर के अनेक अध्येताओं ने इस पर गहन विचार-विमर्श भी किया है। यह विमर्श कला के आंतरिक सौंदर्य और उसकी बाह्य अभिव्यक्ति प्रणालियों का बेहद उत्तेजक और अनुभव-व्याप्त समीकरणों का खुलासा करने वाला है। मैं कला मर्मज्ञ और प्रसिद्ध ललित निबंध लेखक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की सद्य प्रकाशित कला-विमर्शक कृति 'भारतीय कला के अंतर्संबंध' को पढ़ रहा हूं और कला-विषयक नवीन दृष्टियों के उन्मीलन प्रसंग से प्रभावित हो रहा हूं। जिस जिज्ञासा की चर्चा मैंने आरंभ में की है, उस जिज्ञासा का समाधान इस कृति में सम्मिलित प्रत्येक आलेख में संभव हुआ है।

कृति के आलेखों का समुनलय यह स्पष्ट करता है कि प्रारंभिक आलेख सैद्धांतिक चर्चा के निमित्त है और परवर्ती आलेख व्यवहारिक पक्ष से संबंधित हैं यद्यपि इन आलेखों के अंतर्गुंथन की प्रक्रिया ऐसे स्थूल विभाजन में नहीं उलझी है। इनमें सिद्धांत और व्यवहारपरक दृष्टियों की आवाजाही सतत चलती रही है। इसके प्रथम निबंध में साहित्य और कला के अंतर्संबंध पर चर्चा की गयी है। माध्यमजात विभिन्नता को रेखांकित करते हुए लेखक एक सर्व व्याप्त भाषा की ओर संकेत करते हैं। वास्तविकता यह है कि कला और साहित्य इन दोनों की प्रकृति और प्रयोजन एक जैसे हैं, केवल माध्यम भिन्न है। जैसे हम कविता में शब्दों को उनसे बने वाक्यों को पढ़ते हैं, वैसे ही शिल्पी पत्थर की भाषा को पढ़ता है और सुनता है। यह सोचना गलत है कि शिल्पी अपनी छेनी से पत्थर में मूर्ति बनाता है - सच यह है कि पत्थर की भाषा उसे अपना रूप देती है। जिस भाषा को उपाध्यायजी यहां उल्लिखित कर रहे हैं वह 'भाषयंति जगद्भाषा' ही है। यह परा और पश्यंती भाषा ही है जो सर्वत्र ईश्वर की तरह विद्यमान है। जब वह मध्यमा और वैखरी के रूप में अवतरित होने लगती है, तब माध्यम गत उसका स्वरूप अलहदा-अलहदा अभिव्यक्त हो उठता है। लेखक ने साहित्य और चित्रकला के अंतर्संबंधों के कुछ संकेत यहां प्रस्तुत किये हैं। अपने अगले निबंध में वे लोक और कला दृष्टि पर केन्द्रित होते हैं। लोक की विभिन्न अवधारणाओं से परिचय कराते हुए वे लोक गीतों और लोक चित्रकला के अंतर्संवाद की चर्चा करते हैं। वे भारतीय कला दृष्टि को विस्तार से विवेचित करते हैं - यह विवेचन लोक के स्वभाव और लोक रुचियों के संदर्भ में ही किया गया है। वे प्राय: उन समानताओं, सादृश्यताओं और समानुभूतियों की ओर इशारा करते हैं, जो लोक और कला के अंतरावलंबन के आधार हैं। यहां तक आते-आते यह व्यक्त हो जाता है कि लोक और कला के आंतरिक प्राण संवेदनों की संघट्टना के मूल उपादानपरक सौन्दर्यकारक एक ही उत्स से शक्ति लेते हैं। इसलिए कला लोक के राग, रस और सौन्दर्य से एकमेक

होती रहती है। लोक की पारस्परिक आपूरिकता की भावना को वे कला से जोड़ते हैं, 'भारतीय कलाकार का उद्देश्य भी यही रहा है कि जहां-जहां रिक्तता दिखायी दे, खालीपन हो उसे भरता रहे। भरने की यह आकांक्षा कला दृष्टि की पर्याय है।' इसी क्रम में वे आसक्ति से अनासक्ति और साझेदारी की बात को तक्षण और स्थापत्य कलाओं के आधार पर रखते हैं। इसकी प्रासंगिकता लोक के परिप्रेक्ष्य में भी है। इस लेख में अधुनातन कला विषयक अवगाहन पाश्चात्य और पौर्वात्य कला-संदर्शन की वीथियों के बीच किया गया है। कला के पक्ष में वे उनमें अंतर्निहित गतिज ऊर्जा का भी उल्लेख करते हैं। इस ऊर्जा को लेखक ने कलाकार के गतिशील प्रतिमान की तरह माना है। कलाकार की दृष्टि और उसकी कलाविधायिनी शक्तियां जिस कला को रचती हैं उस कला में सौन्दर्य की अद्भुत शक्ति का न्यास कला की गतिमयता का अभिदर्शन है। यह अभिदर्शन ही कला को नितनूतन बनाये रखता है और उसे बहुअभिप्रायी बनाकर अपनी प्रासंगिकता को शाश्वत बनाने की पीठिका भी यही निर्मित करता है।

यहां यह जान लेना भी ज़रूरी है कि आखिर वह कौन सी शक्ति चेतना है, जो कलाओं को गतिज ऊर्जा देकर उन्हें अंतरावलंबन के लिये अवकाश देती है? लेखक ने अपने निबंध 'लोक और शास्त्र: भारतीय कला का परिप्रेक्ष्य' में इसे व्याख्यायित किया है। उन्होंने रचनाकार की संवेदना में ही इस शक्ति की तलाश की है, ''संवेदना की यह विवशता होती है कि उसे निरंतर रुपांतरित होते रहना होता है। यही संवेदना जब संगीत में ढल जाती है तो मेघ-मल्हार बन जाती है और जब अभिनय में रुपांतरित होती है तब उसका स्वरूप नाट्य का हो जाता है। संवेदना का यही रुपांतरण विभिन्न अभिव्यक्तियों को जन्म देता है।'' संवेदना केवल रुपांतरण ही नहीं करती है, वह बदलती युगाकांक्षाओं की परितृप्ति भी अपने रचनात्मक आवेश के आधार पर करती है, इसलिए रचना का सौन्दर्यपरक मूल्य कालातिक्रांत हो उठता है। लेखक इसे भारतीयता की पहचान से जोड़ते हैं। यह शक्ति ही जुड़ाव की मूलाधार है। पश्चिम में समानता का प्रत्यय उपरंगी है। जबकि भारत में अंतरावलंबन की यह प्रक्रिया चालक शक्ति है। ''भारत की सार्थक अस्मिता विभिन्न अनुशासनों के अंतर्संबंधों में रची है, संवाद ने रची है। यदि संवाद टूटता है तो कहीं यह अस्मिता भी टूटती है इसलिए सबसे महत्वपूर्ण है, संवाद और अंतरावलंबन की सोच। भारत में अंतरावलंबन ही चालक शक्ति है। कला की यह भारतीय दृष्टि आंतरिक समाहार प्रधान दृष्टि है।

इसमें एक निबंध दर्शन पर केन्द्रित है। जैन परम्परा के आचार्य कुंदकुंद का 'समय सार' ग्रंथ अकर्ताभाव की मीमांसा करता है। कलाओं के क्षेत्र में इस भाव की क्या महत्ता है ? इस ओर लेखक का ध्यान गया है। यहां प्रश्न यह है कि कलाकार अपनी कला-साधना में क्या निर्वैयक्तिक हो पाता है? यह निर्वैयक्तिक होना ही तो अकर्ताभाव का प्रस्थान बिन्दु है। भारतीय रस चिंतन में इस तथ्य की भारी पड़ताल की गयी है और अंत में इसे मान लिया गया कि रचनाकार निर्वैयक्तिक क्षणों में ही रचना को संपन्न करता है। यह आस्वादन की इकहरी यात्रा नहीं है - रचनाकार अपनी रचना का प्रथम आस्वादन करता है - यह तभी संभव है, जब वह आत्म-मुक्ति की अवस्था से गुजरे, फिर दर्शक-पाठक भी ऐसी अनुभूति से गुज़रकर रस का आस्वादन करता है। इसी आधार पर लेखक का निष्कर्ष है कि भारतीय कला का मौलिक तत्व अकर्ताभाव है।

कुछ निबंध लघुचित्र कला पर केन्द्रित हैं। इन निबंधों में लघुचित्रकला की पहचान उनके विधायक तत्वों, उनकी शैलियों और उनके वस्तुगत अभिप्रायों का विस्तार से विवेचन है। इसके साथ ही चित्रकला में लोक की उपस्थिति का प्रत्याख्यान इन निबंधों में विस्तार से किया गया है। लोक आधारित लघुचित्रों की परम्परा दसवीं सदी से प्रारंभ होती है। प्रारंभिक काल में ये चित्र ताड़पत्र और भोजपत्र पर रचे गये। जैन और बौद्ध -ग्रंथों में इन चित्रों को चित्रित किया गया। जैन धर्मग्रंथों में यह चित्र रचना प्रणाली सर्वाधिक है। न केवल ग्रंथों में बल्कि बाद के जैन मंदिरों की भित्तियों पर इस तरह की चित्र रचना अनवरत होती रही है। इन चित्रों में तत्कालीन लोक की छवियों का आकर्षक स्वरूप मिलता है। समाजशास्त्रीय और नृतत्वशास्त्रीय अध्ययन हेतु इन चित्र रचनाओं का अपना महत्व है। बाद में भागवत, महाभारत, मृगावती, चौर पंचाशिका जैसी कृतियों की विषयवस्तु को चित्रकारों ने अपना आधार बनाया। इस संदर्भ में लेखक ने महत्वपूर्ण बात यह कही है कि इस तरह की चित्र रचनाऐं यद्यपि राज्याश्रित चित्रकारों द्वारा की जा रही थीं किन्तु ये चितेरे अपने संस्कार लेकर राज्याश्रित हुए थे, इसलिये इनका अंकन ग्रंथ आधारित तो था ही किंतु इसमें लोक भी विद्यमान था। वह लोक विद्यमान था, जो चितेरों की मनोभूमियों में बसा हुआ था। यह साहित्य, चित्र और लोक का अंतरानुशासन था। मुग़ल काल इस तरह के चित्रांकन के लिए महत्वपूर्ण काल है। लोक से संबंधित अनेक प्रसंगों की उद्भावना इस काल में हुई।

इस पुस्तक में एक महत्वपूर्ण निबंध है ''दोउ भए इक रंग: फारसी तथा भारतीय लघुचित्र परंपराओं का विलय'! इस निबंध में कला मर्मज्ञ उपाध्याय ने मुग़ल क़लम की चर्चा करते हुए लिखा है,

''इस संदर्भ में यदि चित्रांकन परंपरा पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि भारत की भूमि पर फारसी और भारत की देशज शैलियां समवेत हुईं और एक नई सामासिक चित्रशैली जन्मी जिसका सानी विश्व में कोई दूसरा नहीं हुआ। यह सामासिक चित्रशैली जिस पर कालांतर में देशज प्रभाव ही प्रभावशाली हुआ, उसे मुग़ल शैली या मुग़ल क़लम के नाम से जाना जाता है।'' दरअसल यह कला शैलियों का अंतर्भुक्तिकरण था। यह दो या उससे अधिक कला शैलियों का यौगिकीकरण था जिससे एक नई कला संरचना उदित हो रही थी। ऐसा सर्वसमावेशी आचरण भारत का ही है, जो भारतीयता के रंग में आयात जीवन पद्धतियों को ढाल लेता है, न केवल अपने में ढालता है बल्कि उन्हें एक नयी प्रकाश उद्भावना से भर देता है। ईरानी चित्रशैली की शीराज़ी क्षेत्र वाली तुर्की शैली तथा चीनी चित्रशैली को भारतीय चित्रकला की विभिन्न क़लमों में आत्मसात किया गया। इसी श्रृंखला में लेखक ने भारतीय परिवेश की ऐसी चित्रशैलियों का उद्घाटन किया है, जो अभी तक अचीन्हीं सी थीं। लेखक का अवदान इस क्षेत्र में व्यापक है। इन शैलियों की पहचान इनका स्वरूप निर्धारण इनकी रचनात्मक अवधारणा पर लेखक ने खूब काम किया है। लघुचित्र शैलियों के विवेचन के साथ उपाध्यायजी ने समकालीन चित्रकारों के कृतित्व की भी विस्तार से चर्चा इस कृति में की है।

कला के अध्येताओं और इसमें रुचि रखने वालों को यह कृति संतृप्ति प्रदान करेगी। लेखक के पास समृद्ध भाषा है इसलिए यह मनोरमकार विश्लेषण प्रधान कृति नहीं है बल्कि इसमें सर्जनात्मक समीक्षा का आत्मीय पुट भी है। यह कृति पाठक को अपनी संपूर्णता में संबोधित करने वाली है। यद्यपि इस क्षेत्र की यह एक पीठिका पुस्तक है किंतु उसमें अपार संभावनाओं के चिंतन द्वार खुलते हैं। इन द्वारों में भारतीय मनीषा प्रवेश कर भारतीय कला के और मूल्यवान की तलाश कर सकेगी। पुस्तक का प्रकाशन सुरुचिपूर्ण है।

– लेखक वरिष्ठ ललित निबंधकार है।
श्री चंडी जी वार्ड, हटा, दमोह, म.प्र. 450775
मो.: 09977421629

भारतीय कला के अंतर्सम्बंध

कला के आत्मिक ही नहीं तात्विक विश्लेषण से समृद्ध कृति

– डॉ. शोभा जैन

कला वही है जिसमें आवेग हो तो धाराओं का और संयम हो तो तटों का। हमारे यहाँ कला जीवन में ओत–प्रोत है। उसके बिना जीवन अपना सहज छंद नहीं पहचान पाता। यह कला रस वृत्त पूरा करती है और रसानुभूति या रागबोध सीधे लोक से जुड़ा है। भारतीय कला न तो धार्मिक है और न ही धर्मनिरपेक्ष ,क्योकि भारतीय जीवन वसंत अपने ऐहिक व्यापार में कभी द्वैत में नहीं बंटा रहा।

भारतीय कला के अंतर्संबंधों को रेखांकित करती एक ऐसी ही महत्वपूर्ण कृति 'भारतीय कला के अंतर्संबंध' कला के मर्म और सौंदर्य का परम साक्षात् है। कृति के लेखक विश्वविख्यात कलाविद इतिहासविद नर्मदा प्रसाद उपाध्याय हैं। भारतीय कला के अंतर्मन को उकेरती कृति के अनुसार कला मनुष्य की उस तपस्या का मूर्त रूप है जो उसे विकास की ओर ले जाती है। वास्तव में कला अरूप का ऐसा मोहक स्वरुप है जो चित्र, शिल्प और स्थापत्य जैसे रूपों में दिखाई देता है। कला का स्वयं में कोई स्वरुप नहीं होता और उसका ऐसा होना उसकी विवशता नहीं स्वभाव है।

कुल आठ निबंधों में कृति भारतीय कला के साहित्य से अंतर्संबंध, उसकी लोकदृष्टि, मध्यभारत की अचीन्ही चित्र शैलियाँ निबंधों में सिमटी हैं। ये निबंध के साथ आख्यान लिए चलते हैं। कला को जीने वाले कला साधक की साधना निबंध के शीर्षकों में उसके विस्तार के संकेत देती है। भारतीय लघु चित्रों को अपनी जड़ों से पहचान कराती महज 127 पृष्ठों की कृति किसी वृहद शोध ग्रन्थ की तरह हैं जो भारतीय कला के उद्गम से लेकर उसकी वेदिक प्रमाणिकताओं पर शोधपरक मूल्यांकन दृष्टि देती है कृति में आदि मानव के अंकनों से लेकर ईसा की दूसरी सदी में हुए शुंग वंश के समय के अश्वमेध और मोहनजोदड़ों से लेकर हड़प्पा, समथर और लोथर सभ्यताओं के शिल्प प्रमाणों पर विमर्श है जो गहन शोध का विषय है। शिल्पों में भी अजंता की भित्तियों में प्रेम, उत्साह, मिलन और विरक्ति भावों के सजीव चित्रांकन के मर्म को कृति में रेखांकित कर लेखक ने साहित्य और कला के प्रति जिस गंभीर दायित्व का परिचय दिया है इस विधा के लिए महत्वपूर्ण अवदान है। ''दोउ भए इक रंग : फारसी तथा भारतीय लघुचित्र परम्पराओं का विलय'' जैसे निबंधों में जिस सूक्ष्मता से कला को परका गया है भारतीय चित्रांकन परंपरा की उज्ज्वल अस्मिता की उद्घोषक है।

कृति में अकबर की परंपरा से लेकर जहाँगीर तक, जहाँगीर से लेकर शाहजहाँ तक फारस तथा भारतीय चित्रांकन के संविलयन पर नवीन शोध का विषय रेखांकित किया है जो अपने

आप में इस विधा का नव सौंपान है। लेखक ने एक गंभीर बात जिस पर पाठक का ध्यान केंद्रित किया है ''हमने अन्तर्सम्बन्धों की पड़ताल करना बंद कर दिया है। हम जड़ता से जुड़ गए। इसका श्रेष्ठ उदाहरण भी उन्होंने वेद की ऋचाओं के माध्यम से दिया है जिनमें किसी ईश्वर की वंदना नहीं बल्कि अग्नि,उषा और नदी की वंदना है।'' कृति अपने उद्देश्य के प्रवाह में उचित निदेशन सम्पन्न संदेश अंकित करती है साहित्य और कला के अंतर्संबंध इसलिए भी होना चाहिए कि आज जो वैश्विक निकटता बढ़ी है उसके पीछे इन दोनों की अंतरंगता अग्रणी है। अंतत: अंतर्संबंधों के कारण ही हमारे चिंतन और उस चिंतन से उपजे सृजन क्षेत्रफ़ल बड़ा है। समग्रत: कला के आत्मिक ही नहीं तात्विक विश्लेषण से समृद्ध कृति साहित्य के किसी महत्वपूर्ण दस्तावेज की तरह है। इसे शोधार्थियों तक अवश्य ही पहुँचना चाहिए।

-'शुभाशीष' 201 A/369 सर्वसम्पन्न नगर,
इंदौर ,पिन-452016 मध्यप्रदेश
मो.-9424509155

कविता

इतनी सस्ती नहीं है प्यारो

डॉ. पुष्पारानी गर्ग

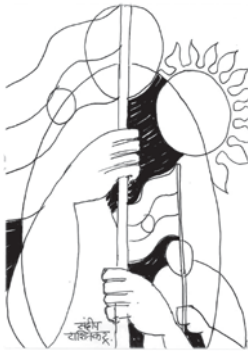

इतनी सस्ती नहीं है प्यारो भारत की यह आजादी।
कितनी सदियों, बाद मिली है भारत को यह आजादी।
कितने-कितने वीरों ने निज लहू चढ़ाया है इस पर।
हँसते-हँसते प्राणों की भी भेंट चढ़ा दी है इस पर।
इतनी सस्ती नहीं..... ।

बलिदानों की माटी में झंडा भारत का गड़ा हुआ।
बड़ी शान से आज हिमालय की चोटी पर खड़ा हुआ।
इसका मान न घटने देना ओ भारत की संतानो।
इसका गौरव बढ़ता जाए मन में बस इतना ठानो।
इतनी सस्ती नहीं है..... ।

कोई दुश्मन आँख उठाए भारत माँ की धरती पर।
उसकी आँख निकाल चढ़ा दो भारत माँ की धरती पर।
नहीं सहन कर पाएंगे हम कोई भी आतंक यहाँ।
यूँ ही नहीं खिले हैं प्यारो आजादी के फूल यहाँ।
इतनी सस्ती नहीं है..... ।

ओ सीमा पर खड़े हुए भारत माता के लाल सुनो।
ओ वीर लाडलो जाँ बाजो इस माटी के लाल सुनो।
कैसे तुम्हें दिखाऊँ मैं जो आग हृदय में जलती है।
माँ का गौरव बढ़े विश्व में यही कामना पलती है।
इतनी सस्ती नहीं..... ।

आजादी के वीर सैनिकों याद तुम्हें मैं करती हूँ।
अपने श्रद्धा सुमन भाव से तुमको अर्पित करती हूँ।
मैं आँसू में कलम डुबो गुणगान तुम्हारा करती हूँ।
मैं शब्दों के सूर्य चंद्र राहों में तुम्हारी धरती हूँ।
इतनी सस्ती नहीं..... ।

हर भारतवासी को इस माटी का कर्ज चुकाना है।
फौलादी सीना लेकर अब वंदे मातरम गाना है।
किसी शत्रु के इस धरती पर कदम न पड़ने देना है।
फिर आया 15 अगस्त अब हमको ये प्रण लेना है।
इतनी सस्ती नहीं..... ।

- 45, रो हाउस, संजना पार्क, बिचौली मरदाना, इंदौर (म.प्र.)
मो. 9826502109

कला समय के ग्यारह अंक : एक अवलोकन

-धनंजय वर्मा

'कला-समय' न केवल भोपाल, मध्यप्रदेश बल्कि अखिल भारतीय परिदृश्य में अकेली ऐसी पत्रिका है जो इतनी सारी कलाओं और कला के इतने विविध रूपों और उपलब्धियों पर केन्द्रित है। किसी शासकीय, अशासकीय संरक्षण, अनुदान तथा विज्ञापन के बिना अकेले दम पर इतनी सुचारु, सुचित्रित और सौष्ठव सम्पन्न पत्रिका के निरन्तर, अनवरत प्रकाशन के लिए इसके सम्पादक भँवरलाल श्रीवास न केवल बधाई बल्कि हमारी सामाजिक कृतज्ञता के भी पात्र हैं।

पिछले दिनों 'कला समय' के सम्पादक श्री भंवरलाल श्रीवास ने अपनी पत्रिका के दस अंक और एक स्मारिका भेंट करते हुए आग्रह किया कि इन्हें पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया लिखूँ। पढ़ने में जितना समय नहीं लगा, उससे ज़्यादा लिखने में लग गया।...

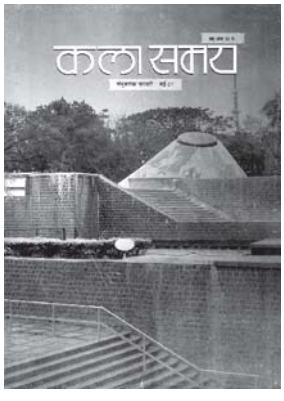

'कला समय' का संयुक्तांक-फरवरी-मई-2007, 'भारत भवन-रजत-जयंती' विशेषांक है। इसे पढ़ना मेरे लिए अतीत की स्मृतियाँ में वापिसी के मानिन्द था। मैं 20 दिसम्बर 1980 से 19 दिसम्बर 1982 तक प्रतिनियुक्ति पर मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग में ओ.एस.डी. (विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी) रहा हूँ। मुझे पहली ही जिम्मेदारी मिली थी- भारत भवन समिति के सदस्य सचिव की; चुनाँचे इसके आरम्भिक निर्माण से लेकर इसके औपचारिक उद्घाटन तक के सारे क्रियाकलापों का साक्षी ही नहीं किसी हद तक सहकर्मी-सहयात्री- सहयोगी भी रहा हूँ। इसकी रजत जयंती के अवसर पर प्रकाशित 'कला समय' का जायजा लिया तो तत्कालीन संस्कृति राज्यमंत्री, संस्कृति, सचिव, पूर्व न्यासी के अलावा मुख्यमंत्री की भूमिका, प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के भाषण और संवाद-पच्चीसी तक खासी दिलचस्प सामग्री इसमें संजोयी गयी है। दय प्रकाश सिन्हा का लेख : 'प्रश्रय बनाम हस्तक्षेप' खासा मानीख़ेज है। इसे पढ़ते हुए मुझे अपने वो पाँच लेख याद आ गए जो मैंने गिरिजाशंकर द्वारा सम्पादित 'जनमत स्वर' में लिखे थे और जो फिर पड़ाव प्रकाशन भेपाल से राजुरकर राज ने 'हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन' नामक पुस्तिका में संकलित-प्रकाशित (2000) में किए थे। उनकी बुनियादी थीम ही है- 'संस्कृति का सरकारीकरण' जो अन्ततः 'संस्कृति के राजनीतिकरण' में तब्दील हो गया। सिन्हा के लेख : 'प्रश्रय बनाम हस्तक्षेप' में भी प्रश्रय की शक़्ल में यह सरकारी हस्तक्षेप अधिक सही लगता है। तत्कालीन प्रथम संस्कृति सचिव श्री अशोक वाजपेयी का लेख- 'मेरे जीवन का सबसे बड़ा सुख-दुख' बहुत कुछ बयाँ कर जाता है। भारत भवन उनके जीवन का सबसे बड़ा सुख रहा होगा लेकिन जैसी कि कहावत है- सुख के साथ दुख तो लगा ही रहता है। उनके बाद भारत भवन और संस्कृति विभाग का जो हश्र हुआ, वह सब हम-आप देख ही रहे हैं। साहित्य-कला और संस्कृति को लेकर जो आपा-धापी, ले-लपक, उठा-पटक और 'अहो रूपम्, अहो ध्वनि' का मंत्र गान चल रहा है और 'सत्ता' के बदलते ही जो भाग-दौड़ और चिल्ल-पों हो जाती है- उससे हम सब वाकिफ हैं। मुझे बेसाख्ता ग़ालिब का एक शेर याद आता है :

मिटी तामीर में मुज़्मर, है इक सूरत खरानी की
हमूला बर्क़-ए-खरमन का, है ख़ून-ए-गर्म देहकाँ का

(मेरी रचना में ही इसकी बरबादी के हालात भी छिपे हुए हैं। जैसे खलिहान पर गिरने वाली बिजली की मूल धातु (तत्व) आखिर किसान का ख़ून-पसीना ही तो है)

प्रोफेसर राजाराम ने इसे उचित ही 'आर्ट इंस्ट्रालेशन' कहा है और कलाकार के.जी. सुब्रह्मण्यम ने ऐसे संग्रहालयों को 'कलाओं

की कब्रगाह' यों ही नहीं कहा था!!!

'कला समय' का अप्रैल-मई 2018 अंक 'विलुप्त होती लोक कलाएँ' पर केन्द्रित है। यह एक सचेत और जागरूक अनुष्ठान की तरह प्रस्तुत है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेख-लोक का कलात्मक पक्ष-महत्वपूर्ण है। मैं उपाध्याय जी को ललित निबन्धकार के रूप में ही जानता था, वे लोक कला मर्मज्ञ हैं, यह जानना सुखद आश्चर्य है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने राजस्थान की लोक कलाओं से परिचय करवाया। डॉ. कपिल तिवारी और लक्ष्मीकान्त जवणे दोनों की बातचीत से क्रमश: लोक कला और आदिवासी कला जीवन के बारे में बहुत कुछ नई जानकारियाँ मिलती है। प्रोफेसर राजाराम का लेख- 'लोक आदिवासी कलाओं की नई लहर' उनकी कलात्मक रुचि और कलाकारिता को एक नये सन्दर्भ में उद्घाटित करता है। लक्ष्मीकांत जवणे के लेख- 'लोक कला : कितनी कुलीन, कितनी मलीन' से मुझे अपना एक अवलोकन यदि आ गया। और 'लोक' दोनों-से रू-ब-रू होने के मौके मिले। किसी उपयुक्त विशेषज्ञ के अभाव में मुझे नव स्थापित 'मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद्' के सचिव का अतिरिक्त प्रभार भी सौंप दिया गया। मुझमें आदिवासी या लोक कला की कोई विशेषज्ञता नहीं थी, न आज है, सिवाय इसके कि अपने जीवन के आरम्भिक बीस वर्ष मैंने छत्तीसगढ़, बस्तर के धुर आदिवासी अंचल में बिताये थे। बहरहाल..... संस्कृति विभाग में शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य, शास्त्रीय रंगमंच आदि और आदिवासी लोक कला परिषद् में लोक-संगीत, लोक नृत्य और लोक नाट्य-नाचा-माच आदि के प्रदर्शन, मंचन, अभिलेखन आदि कामों के दौरान 'शास्त्रीय' और 'लोक' के बीच का 'वास्तविक' अन्तर समझ में आया। मसलन देश की राजधानी से राजकीय अतिथि के रूप में हवाई जहाज से भोपाल (या रायपुर) आकर सितारा होटलों में रुककर 20-30 हज़ार का पारिश्रमिक लेकर रवीन्द्र भवन के मंच पर नृत्य प्रस्तुत करने वाली नृत्यांगना तो 'शास्त्रीय', लेकिन सागर-पथरिया या बंडा से पाँच-सात सौ के पारिश्रमिक पर सरकारी खटारा बसों या ट्रकों में ठँस-ठुंस कर मध्यप्रदेश कला परिषद् और रवीन्द्र भवन के बीच-नाले-के नशेबों में तने तंबुओं में रतजगा कर, खुले मंच पर नाचने वाली नर्तकी 'लोक'। हालाँकि कहा ज़रूर जाता है कि 'शास्त्र' बनता 'लोक' से ही है या कि 'प्रकृति' से ही 'संस्कृति' बनती है लेकिन सच तो यह है कि 'शास्त्रीय' न केवल सम्मान और प्रतिष्ठा का द्योतक है वरन् अभिजन संस्कृति है का संवाहक है जबकि 'लोक' जन-संस्कृति हैं, जिसे हमारा शासक-अभिजन 'तरस' खाकर 'सुरक्षित' और 'संरक्षित' कर रहा है। संस्कृति विभाग में ही मैंने एक नोट 'डिक्टेट' करवाया। स्टेनोग्राफर ने उसमें संशोधन कर दिया- उसने टाइप किया- शासकीय संगीत, शासकीय नृत्य, शासकीय रंगमंच! 'लोक' के प्रति हमारे प्रशासकों से लेकर बुद्धिजीवियों-लेखकों-कलाकारों-कवियों तक के दिलोदिमाग़ में इसी 'तरस' और 'रहमोकरम' का भाव है।

कला-समय का अप्रैल-मई 2019 अंक फिर एक विशेषांक है- श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर जन्मशती विशेषांक। श्री वाकणकर का यह वाक्य- ''मेरे कारण भीम बैठका को प्रसिद्धि नहीं मिली वरन् भीम बैठका के कारण मुझे पद्मश्री और भारत को विश्व में स्थान मिला''- उनकी विनम्रता के साथ उनकी महानता को भी रेखांकित करता है। यह सहज ही अजन्ता और एलोरा के उन महान कलाकारों की याद दिलाता है जिन्होंने स्थापत्य और वास्तुकला ही नहीं मूर्ति और चित्रकला की विश्व में अद्वितीय कृतियाँ रचीं लेकिन कहीं अपना नाम तक उत्कीर्ण या चित्रित नहीं किया। संदीप राशिनकर का आलेख और वाकणकर जी पर उनकी कविता दोनों सुखद आश्चर्य, मुझे इसलिए लगे कि मैं उन्हें अभी तक चित्रकार और पत्रिकाओं में रेखांकन कर्ता ही समझता था। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने फिर चौंकाया- अपने लेख- 'इतिहास पथ के महायात्री' से। पं. विजयशंकर मिश्र के ठुमरी, कथक और तबले के अन्तर्सम्बन्ध और डॉ. जया शर्मा के 'भारतीय और नृत्य: परम्परा और प्रयोग की कसौटी' लेख इस अंक की अतिरिक्त उपलब्धियाँ हैं।

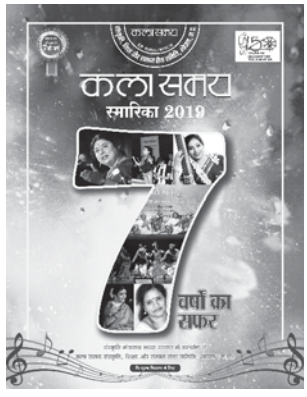

स्मारिका- 2019' **कला समय संस्था के सात वर्षों के सफ़र का लेखा-जोखा है**। इस सफ़रनामे में बहुत कुछ है, जो सहेजने-संजोने के लायक है।

कला-समय का अक्टूबर-नवम्बर 2019 अंक

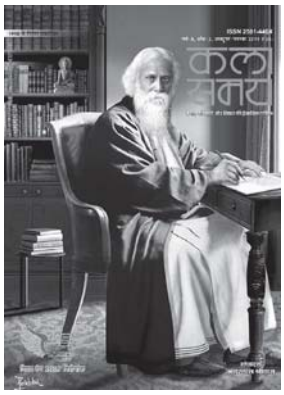

विश्वरंग पर केन्द्रित है, चुनांचे यह भी विशेषांक ही है। 2019 का 'विश्वरंग', भोपाल, मध्यप्रदेश ही नहीं सम्पूर्ण भारत की एक ऐसी सांस्कृतिक परिघटना है जिसने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया था। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'विश्वमानवता' की अवधारणा को मूर्त करता यह विश्वरंग एक अविस्मरणीय साहित्य-कला-और सांस्कृतिक अनुष्ठान साबित हुआ। 'कला-समय' ने इसके महत्व को समझा और उस पर एकाग्र विशेषांक प्रकाशित किया। यह श्लाघनीय है। इसके मुख्य पृष्ठ पर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जो चित्र है, वह कथाकार-चित्रकार प्रभु जोशी की पेन्टिंग है लेकिन यह पोट्रेट इतना जीवन्त और आकर्षक है कि सजीव फोटोग्राफ लगता है। प्रभु जोशी जितने अच्छे कवि-कहानीकार थे उतनी ही, बल्कि उससे कहीं ज़्यादा प्रभावशाली और प्रख्यात चित्रकार थे, जिन्हें 'कोरोना' ने हमसे छीन लिया। विश्वरंग के सूत्रधार पाँच विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति संतोष चौबे के पिता कहानीकार श्री जगन्नाथ चौबे 'वनमाली' का प्रभु जोशी द्वारा चित्रित पोट्रेट भी प्रभु जोशी की चित्रकला का नायाब नमूना है। विश्व रंग की भव्य और बहुआयामी परिकल्पना को उतने ही विशाल वितान और विविध आयामों में साकार और मूर्त करने वाले संतोष चौबे का साक्षात्कार, उनके प्रधान सम्पादकत्व में प्रस्तुत वृहत्रम 'कथादेश' जिसका विस्तृत परिचय मुकेश वर्मा ने दिया है, इस अंक के विशेष आकर्षण हैं। राजेन्द्र नागदेव का लेख 'कला संसार' और नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की समीक्षा इस अंक के अधि-लाभ हैं।

'कला-समय' का दिसम्बर 19- जनवरी 2020 अंक गुरु नानकदेव जी के 550 वें प्रकाश पर्व पर केन्द्रित है। इसमें

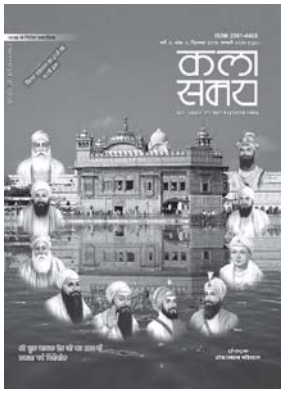

डॉ. अमर सिंह वधान द्वारा गुरु नानक देव जी का जीवन-वृत्त और विचार, निर्मल वालिया की बातचीत तो उल्लेखनीय है ही नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेख 'गुरु ग्रंथ साहब की रागमाला' इस अंक की विशेष उपलब्धि है। डॉ. महेन्द्र भानावत का गुरु नानक देव जी का देवदर्शन भी महत्वपूर्ण है। संतोष चौबे की कविताएँ और बिनय राजाराम का अमृता प्रीतम पर लेख भी आकर्षक है। पं. विजय शंकर मिश्र द्वारा ठुमरी गायिका विदुषी गिरिजा देवी को श्रद्धांजली समीचीन है।

अप्रैल-मई और जून-जुलाई 2020 की संयुक्तांक डॉ. अरविंदजोशी की यादों पर एकाग्र है। श्रीमती अर्चना जोशी से सम्पादक श्रीवास की बातचीत के अलावा नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेख महत्वपूर्ण है। अरविन्द जोशी का 'बस्तर के विभिन्न वाद्य: एक अनुशीलन' और 'बस्तर के आदिवासी संगीत वाद्य' के साथ 'महाराष्ट्र के कीर्तन-लोक गीतों का संगीत पक्ष' और 'काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध' आदिवासी लोक कला पर धरोहर धर्मी सामग्री है। प्रोफेसर गुणवन्त व्यास का लेख 'अभिव्यक्ति के आयाम और रवीन्द्रनाथ ठाकुर' इस अंक का विशेष बोनस है।

अगस्त-सितम्बर 2020 अंक पुरातत्वविद् डॉ. नारायण व्यास पर केन्द्रित है। सम्पादक श्रीवास और ललित शर्मा की बातचीत के अलावा डॉ. व्यास के तीन लेख- 'वीणा का पुरातत्व', 'रानी बाव की प्रतिमाएँ' और भोपाल के शैल चित्र कला केन्द्र, आर्काइवल महत्व के हैं। अखिलेश गुमास्ता का 'एलोरा का विशाल कैलाश मन्दिर' और कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय का लेख- 'पुरातत्व क्या है'। हमारी जानकारी में इज़ाफ़ा तो करते ही हैं, उकनी अहमियत भी निर्विवाद है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेख 'गढ़वाल क़लम के चितेरे मोलाराम' खोज-परक और महत्वपूर्ण है।

अक्टूबर-नवम्बर 2020 का अंक लघुचित्रों और साहित्य के अन्तर्सम्बन्धों पर केन्द्रित है। इसमें नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के दो लेख हैं जो अत्यन्त सारगर्भित और महत्वपूर्ण है। राधावल्लभ त्रिपाठी, विजय बहादुर सिंह, डॉ. महेन्द्र

भानावत और रमेश दवे के लेख भी उल्लेखनीय हैं। तीस-बत्तीस पृष्ठों की रंगीन 'लघुचित्रों की चित्रावली' तो वाकई संग्रहणीय हैं।

दिसम्बर 2020-जनवरी 2021 अंक **अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य और कला महोत्सव-विश्वरंग-2020** पर केन्द्रित है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख : 'अखण्डित भारतीय अस्मिता का मर्म :- इतहास और साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध' इस अंक की उपलब्धि है। मुकेश वर्मा का हिन्दी कथा की जय यात्रा, अखिलेश निगम का आकस्मिक रूपाकारों में जीवन की तलाश, चेतन औदीच्य का चित्रकार वॉन गॉग-लेख अपने-अपने विजय को मुमकिन समग्रता में प्रस्तुत करते हैं। सांस्कृतिक पर्व-विश्वरंग-2020 की बलराम गुमास्ता की रिपोर्ट और विनय उपाध्याय तथा संजय सिंह राठौर के विवरण विश्वरंग की विविध वर्णी झलक पेश करते हैं। जयप्रभा भट्टाचार्य का लक्ष्मीनारायण पयोधि पर लेख और संतोष चौबे के प्रसिद्ध और बहुचर्चित उपन्यास 'जल तरंग' का अंश 'द्रुत' विशेष रूप से रेखांकित करने योग्य हैं।

फरवरी-मार्च-2021-अंक 'धरोहर के संग्राहक और शिल्पकार' पर केन्द्रित है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय का लेख 'साहित्य और कला के अंतर्सम्बन्ध' उनकी कलात्मक और सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि को उजागर करता है। काष्ठशिल्पकार ओ.पी. कुशवाहा पर पूरी सामग्री अद्‌भुत और धरोहरधर्मी है। 'माचिस मैन ऑफ भोपाल' पर प्रकाश तिवारी का लेख, अरुण सक्सेना और रुचि सक्सेना तथा उषा सक्सेना के 'सिक्कों के संग्रह' पर लेख, रामगोपाल ठाकुर का डाक टिकिट और माचिस, अजय मेहता का नोटों का संग्रह के साथ सुधीर कुमार पंड्या, अमरजीत सिंह, इन्द्रेश्वरी वल्लभ पंत, रंजीत कुमार झा के लेख जानकारीपरक और धरोहर के विविध संग्रहों पर प्रकाश डालते हैं। अठारह पृष्ठों की विशेष रंगीन चित्रावली संग्रहणीय तो है ही, नयनाभिराम भी है। रामप्रकाश त्रिपाठी का बंसी कौल स्मरण भी उल्लेखनीय है।

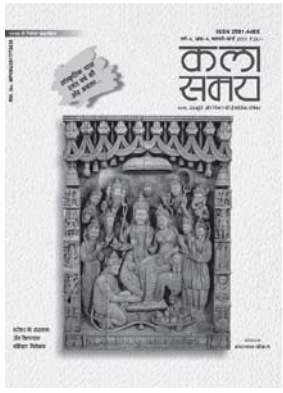

'कला-समय' का हर अंक विशेषांक और महत्वपूर्ण है। हिन्दी में कला केन्द्रित पत्रिकाओं का ओजण अकाल है। शासकीय उपक्रमों से प्रकाशित पत्रिका 'संगना'- संगीत और नाटक पर ही केन्द्रित है। मध्यप्रदेश कला परिषद् की 'कला वार्ता' भी शायद बन्द हो गयी है।

'कला-समय' न केवल भोपाल, मध्यप्रदेश बल्कि अखिल भारतीय परिदृश्य में अकेली ऐसी पत्रिका है जो इतनी सारी कलाओं और कला के इतने विविध रूपों और उपलब्धियों पर केन्द्रित है। किसी शासकीय, अशासकीय संरक्षण, अनुदान तथा विज्ञापन के बिना अकेले दम पर इतनी सुचारु, सुचित्रित और सौष्ठव सम्पन्न पत्रिका के निरन्तर, अनवरत प्रकाशन के लिए इसके सम्पादक भँवरलाल श्रीवास न केवल बधाई बल्कि हमारी सामाजिक कृतज्ञता के भी पात्र हैं।

-द्वारा डॉ. निवेदिता वर्मा, एफ 2/31, आवासीय परिसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन-456010
मो.9 9425019863

श्रद्धाजंलि

डॉ. एस.एन. सुब्बाराव
पद्मश्री से सम्मानित गांधीवादी विचारक
जन्म - 7 फरवरी 1929
निधन - 27 अक्टूबर 2021

मन्नू भंडारी
सुप्रसिद्ध कहानीकार
जन्म - 3 अप्रैल 1931
निधन - 15 नवम्बर 2021

ओम भारती
सुप्रसिद्ध कवि, लेखक
जन्म - 01 जुलाई 1948
निधन - 11 दिसम्बर 2021

कला समय परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

भूमि, भाषा और जीवन ये तीनों साहित्य की भूमि है-डॉ. महेन्द्र मिश्र

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल में पंचम जनजातीय सहित्य महोत्सव का उद्घाटन संग्रहालय के शैलकला भवन में विख्यात लोकगीतकार डॉ. महेन्द्र मिश्र ने किया। जनजातीय साहित्य : अवधारणा एवं प्रासंगिकता विषय के अपने कीनोट एड्रस में कहा जानजातीय मौखिक साहित्य अपने उद्देश्य और अर्थ के साथ अपने सांस्कृतिक संदर्भ में सामग्री और रूप को व्यवस्थित रूप से समाहित करता है। जनजातीय संस्कृति में एक विश्वदृष्टि और ज्ञानमीमांसा शामिल है जो लिखित से अलग है। जब लिखित साहित्य व्यक्तिगत लेखकों द्वारा बनाया जाता है, तो मौखिक परंपरा समुदाय के सामूहिक ज्ञान, रचनात्मकता और समुदाय के सामूहिक जीवन की स्मृति के लिए उपयुक्त होती है। आधुनिकता के बावजूद, मौखिक समाज अपनी मौलिकता बनाए रखता है क्योंकि सामूहिक जीवन का विश्वदृष्टि व्यक्तिगत निर्माण से अलग है। पूर्वजों की घटनाओं की एक श्रृंखला के माध्यम से आदिवासी का इतिहास मौखिक और सामाजिक रूप से याद किया जाता है। अंतरिक्ष और घटनाएं इतिहास की प्रकृति को निर्धारित करती हैं, न कि समय को। घटना समय को परिभाषित करती है। उद्घाटन सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन दंतोपंत ठेगड़ी, शोध संस्थान, भोपाल के निदेशक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा ने कहा कि आदिवासी साहित्य का रोड मैप देने के लिए डॉ. महेंद्र मिश्रा की प्रशंसा की। उन्होंने कहाकि मौखिक साहित्य पर और शोध किया जाना चाहिए क्योंकि यह आदिवासी जीवन के बारे में गहन ज्ञान देता है। जनजातीय साहित्य अनुशिलन से उनके वाचिक परंपराओं में जो ज्ञान है उसे लिखना जरूरी है इससे त्रिस्तरीय सामाजिक संरचना में रह रहे लोग भारतीय संस्कृति की विविधता को समझ कर ठीक से परिभाषित कर सकेंगे। इतिहास को जानने के लिए घटना, स्थान एवं समय को जानना जरूरी है, पर हमारे ऋषिमुनियों ने महाभारत, रामायण जैसे ग्रंथ को लिखकर जीवन के सार को समझाना चाह रहे होंगे इसलिए उन्होंने समय बोध की ओर ध्यान नहीं दिया। कार्यक्रम का संचालन करते हुए श्री सुधीर श्रीवास्तव ने द्वितीय सत्र भारतीय जीवन पद्धति और जनजाति परम्पराऐं विषय पर श्री राजकिशोर हांसदा, दुमका एवं प्रो. श्रीमती हेतल चौधरी, सूरत ने अपने विचार व्यक्त किये साथ ही तृतीय सत्र में जनजातीय दार्शनिकता : मध्यवर्ती भारत के सन्दर्भ विषय पर श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, इंदौर, डॉ. धर्मेन्द्र पारे, भोपाल, श्री राजीव रंजन प्रसाद, दिल्ली, डॉ. रेखानागर, इंदौर ने शोधपरक जानकारी प्रदान की कार्यक्रम के अंत में कार्यक्रम समन्वयक श्री राकेश भट्ट, सहायक क्यूरेटर ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

आदिवासियों ने हमेशा अपनी जमीन के लिए संघर्ष किया है -पद्मश्री से सम्मानित हलधर नाग

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल में पंचम जनजातीय साहित्य महोत्सव सम्पन्न हुआ। जनजातीय वाचिक परम्परा-गीत एवं कथाओं की प्रस्तुति के संदर्भ में पद्मश्री से सम्मानित श्री हलधर नाग ने अपनी संबलपुरी भाषा में अपने क्षेत्र की आदिवासी संस्कृति का वर्णन करते हुए नुआखाई उत्सव का एक गीत सुनाया। नुआखाई, पश्चिमी ओडिशा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक त्योहार है। जिसे नई फसल के स्वागत के लिए मनाया जाता है। फसल की पहली उपज उनकी देवी की भूमि पर अर्पित कर संबलपुरी

दालखाई नृत्य करते हैं। गीत का पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि उनके गीतों, नृत्यों, संगीत वाद्ययंत्रों, अनुष्ठानों आदि से उनके समाज, संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली के बारे में एक स्पष्ट तस्वीर दिखती है। समापन समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा, निदेशक दंतोपंत ठेगड़ी, शोध संस्थान, भोपाल ने कहा कि जनजाति उत्पत्ति कथाओं में गूढ़ साहित्य का खजाना है। इसमें अनुसंधान की महती आवश्यकता है। हलधर नाग जैसे रत्नों को सामने लाकर जनजाति साहित्य को समृद्ध किया जा सकता है। आज देश में विद्यमान चुनौतियों के सामने जनजाति युवा साहित्यकारों तथा रचनाकारों की जिम्मेदारी बढ़ गई है। वे ऐसा साहित्य रचने के लिए आगे आएं जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिल सके।

प्रथम सत्र में जनजातीय भाषा एवं साहित्य चिंतन युवा जनजाति लेखकों का अवदान विषय पर जबलपुर के श्री लक्ष्मण सिंह मरकाम ने कहा कि जनजातीय तथा क्षेत्रीय भाषा में निहित ज्ञान-परम्परा से अन्य भाषा-साहित्य के बीच संवाद आवश्यक है, तभी हम एक दूसरे की संस्कृति और संवेदना को समझ सकेंगे। जनजातीय भाषा संस्कृति व पारम्परिक ज्ञान के साहित्य को हिन्दी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवादित करके सामने लाने की जरूरत है।

श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि, भोपाल ने युवा जनजाति लेखकों के अवदान पर कहा कि साहित्य वाचिक हो या लिखित वो भाषा में ही निहित होता है। व्यवहार में आने वाली भाषा कभी लुप्त नहीं होती, घोटुल एक शब्द नहीं यह सांस्कृतिक धारा है। गोंडी भाषा की मौखिक भाषा काफी समृद्ध है।

डॉ. नवीन नंदवाना, उदयपुर ने सभी युवा रचनाकारों एवं उनकी कृतियों का उल्लेख करते हुए कहा कि गुरु परम्परा जनजाति समाज में विद्यमान है और नये लेखकों की लम्बी कतार है उन्हें प्रोत्साहन की जरूरत है।

श्री मन्नालाल रावत, उदयपुर ने डाल कलामन की कहानी बताई एवं गुरु एवं भील जनजाति पर आधारित गीत 'जय गुरु' अपना मान है, 'जय गुरु है विरासत। जय गुरु जय गुरु बोलना, 'जय गुरु' शिव सियासत। मैं पूंजा भील हूँ, मैं इतिहास बदलता हूँ, मैं बीर हूँ, धीर हूँ। अपने धर्म पर गंभीर हूँ।। मैं मेवाड़ राज काज भागीदार हूँ, मैं हिन्द का दिलदार हूँ। प्रस्तुत किया।

द्वितीय सत्र में जनजातीय वाचिक परम्परा - गीत एवं कथाओं की प्रस्तुति एवं (गोंड, कोरकू, बैगा) जनजातीय की उत्पत्ति पर डॉ. श्याम सुंदर दुबे, हटा दमोह ने कहा कि प्रकृति के उपासक और प्रकृति से घनिष्ठ आदिवासियों में प्रेम की अनुभूतियों का विस्तार व्यक्ति प्रेम से लेकर प्रकृति प्रेम के असीमित क्षेत्र तक है। जनजातीय लोक में वाचिक परंपरा स्मृति आधारित जातीय चेतना है। उनके सभी रिचुअल्स वाचिक परंपरा में ही जीवित हैं।

प्रो. जगदीश भाई भोया, बासंदा, गुजरात ने कोंकणा जनजाति में वर्णित लोक कथाओं में जन्म के अवसर : सतीमाता की कथा, शादी के अवसर में : खंडेराव के गाने, मृत्यु के समय : सलवां मानसिंह की कथा, जब धान घर में लाया जाता है : कनकरी की कथा का वाचन किया। इसके साथ ही श्री कृष्ण जुगनू, उदयपुर ने कहा आदिवासी संस्कृति सामूहिकता की संस्कृति है। यहाँ नृत्य भी करते हैं तो सब मिलकर त्यौहार से लेकर संस्कार रीति-रिवाज सबमें सामूहिकता है एवं श्री जयन्ती भाई, गुजरात ने कहा जनजातीय समुदाय प्रकृति को उसके विभिन्न रूपों में पूजा करता है। पूजा की पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती है, पर प्रकृति के प्रति उनकी आस्था एक है, विविधता में एकता का यह सबसे बड़ा उदाहरण है।

कार्यक्रम का संचालन श्री सुधीर श्रीवास्तव ने किया एवं कार्यक्रम के अंत में कार्यक्रम समन्वयक श्री राकेश भट्ट, सहायक क्यूरेटर ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

रपट - डॉ. अशोक कुमार शर्मा
प्रभारी अधिकारी (जनसंपर्क), मो. 9425019303

■

आयोजन

भारत का स्वाधीनता आंदोलन स्वत्व का संघर्ष था : जे. नन्दकुमार

श्रद्धेय दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के जन्म दिवस के अवसर पर दत्तोपंत ठेंगड़ी शोध संस्थान भोपाल, द्वारा दत्तोपंत ठेंगड़ी स्मृति राष्ट्रीय व्याख्यानमाला जो विगत 5 वर्षों से अनवरत् श्रृंखला में 10 नवम्बर, 2021 को प्रख्यात राष्ट्रवादी चिंतक, विचारक जे.नन्दकुमार जी ने ''स्वराज के विस्मृत अध्याय'' विषय पर स्वाधीनता के 75वें अमृत महोत्सव पर व्याख्यान राज्य पशुपालन प्रशिक्षण संस्थान, कुक्कुट भवन सभागार में संपन्न हुआ।श्री जे.नंदकुमार जी मलयालम के प्रसिद्ध कवि विचारक, चिंतक, लेखक तथा केसरी पत्रिका के संपादक रहे है। आपकी ''बदलते दौर पर हिदुत्व'', ''वीर सावरकर'', ''विजय पथ'' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जे.नंदकुमार जी ने अपने उद्बोधन में 'स्वराज के विस्मृत अध्याय' विषय केन्द्रित व्याख्यान में स्वाधीनता के कई महत्वपूर्ण प्रसंगों की चर्चा करते हुए अपने लगभग एक घंटे के व्याख्यान में उन्होंने कहा भारत के भक्ति आन्दोलन में लोगों ने स्वयं प्रेरणा अर्थात भारत का स्वाधीनता आंदोलन स्वत्व का संघर्ष था। क्योंकि अंग्रेज भारतीयत्व पर अपने विचार थोपने की कोशिश कर रहे थें। लेकिन भारत में स्वाधीनता आंदोलन को एक राजनैतिक बैतल मात्र बताया गया। इसके कारण कई ऐसे अनाम लोग जिन्होंने भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए योगदान किया उनका उल्लेख इतिहास के पन्नों में नहीं किया गया है। उन्होंने कहा कि पश्चिमी उपनिवेश की शुरुआत के साथ देश में परधर्मियों का विरोध शुरू हो गया था। भारत के लोगों ने पुर्तगाल और डच के खिलाफ भी युद्ध किया। इतिहास की पुस्तकों में कई ऐसे संघर्षों का उल्लेख विस्मृत है। वास्तव में हमारी लड़ाई परधर्मी के विरुद्ध थी। इसलिए एक मजबूत स्वतंत्रता का संघर्ष हम कर सके। श्री जे. नंदकुमार जी ने कहा कि कई विषयों में अभी भी अपने उपनिवेशवाद का प्रभाव मौजूद है। हालांकि पिछले सात वर्षों में भारत की आत्मनिर्भता के लिए कार्य हुआ है। ऐसा प्रचारित किया जाता है कि अंग्रेज व्यापार करने के लिए आये थे। लेकिन इस बात का प्रमाण मौजूद हैं कि पोप ने स्पेन और पुर्तगाल राज्यों को पूर्व और पश्चिम की तरफ भेजा था और धार्मिक ताकत बढ़ाना उपनिवेश के विस्तार का एक प्रमुख कारण था। श्रद्धेय दत्तो पंत ठेंगड़ी जी ने भारत के स्वत्व को फिर से केन्द्र बिन्दु बनाकर सभी प्रकार के आयामों पर कार्य प्रारंभ किया था। उन्होंने कहा था कि आज़ादी के 75वें वर्ष में देश के इस मनोभाव को बदलने की आवश्यकता है। स्वाधीनता आंदोलन के जो नायक व नयिकाएँ विस्मृत कर दिये गये हैं उनके बारे में अध्ययन करके समाज को बताने की आवश्यकता है। यही हमारे स्वानधीनता के महान नेताओं की आकांक्षा थी। उन्होंने यह भी कहा की स्वाधीनता के 75 वर्ष में सिर्फ कार्यक्रम ही ना करें बल्कि पूरे वर्ष ऐसी कहानियों और स्वाधीनता के आंदोलन से जुड़े विमर्शों और उन व्यक्तियों के योगदान को भी खोजना चाहिए तथा उसे सामने लाना होगा।प्रतिष्ठापूर्ण कार्यक्रम की अध्यक्षता दत्तोपंत ठेंगड़ी शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री अशोक पाण्डेय जी ने कहा की इस वर्ष हम स्वाधीनता के अनाम हीरो को ढूढें और उनके त्याग को भी रेखांकित करें। संस्थान के निदेशक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा ने कार्यक्रम की प्रस्तावना में कहा कि संगठन शिल्पी राष्ट्र ऋषि श्रद्धेय दत्तोपंत ठेंगड़ी ने स्वत्व के भाव को लेकर आजीवन कार्य किया। उन्होंने लोगों की आँखों पर जमी घूल को हटाने का भरपूर सफल प्रयास किया। डॉ. मिश्रा ने अपने उद्बोधन में दैनिक ''स्वदेश'' समाचार पत्र का भी उल्लेख करते हुऐ कहा कि आज के विशेष अंक में ठेंगड़ी जी पर विशेष आलेखों के साथ कई उपयोगी सामग्री समाचार पत्र में प्रकाशित की गई है इस दृष्टि से आज का अंक संग्रहणीय है। इस अवसर पर सभागार में आसीन लोक संस्कृति मर्मज्ञ डॉ. कपिल तिवारी जी जिन्हें एक दिन पूर्व ही राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया है। डॉ. तिवारी जी को मंचासीन श्री जे.नंदकुमार, श्री अशोक पाडेण्य तथा डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा ने संयुक्त रूप से संस्थान की ओर से स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया तथा प्रदेश के लोक संस्कृति गौरव पुरूष के रूप में पद्मश्री सम्मान की सभी ने बधाई दी। आयोजन के अंत में संस्थान के निदेशक डॉ. मिश्रा ने अपने आभार वक्तव्य में सभी का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का सफल संचालन शिक्षाविद् और जनजातीय संस्कृति की अध्येता डॉ. कल्पना त्रिवेदी ने किया। कार्यक्रम में उपस्थित सूचना आयुक्त और भारत भवन के न्यासी विजय मनोहर तिवारी, पाठ्य पुस्तक समिति के सदस्य प्रकाश बरतूनिया, संस्थान के सचिव दीपक शर्मा, कोषाध्यक्ष मोहन लाल गुप्ता, पुरातत्वविद् डॉ. नारायण व्यास, अटल बिहारी हिन्दी विश्विद्यालय के कुलाधिपति खेमसिंह डहेरिया, जनजातीय संग्रहालय के निदेशक धर्मेन्द्र पारे सहित अनेक गणमान्य नागरिक मौजूद थे। अयोजन में कोविड संबंधी निर्देशों का अनुपालन विशेष रूप से किया गया।

■

आयोजन

भारत भवन में 'संस्कृति और प्रकृति'

प्रकृति और संस्कृति के अन्तर्सम्बन्ध का बहुकला समारोह

भारत भवन में 11 से 18 नवम्बर 2021 तक 'संस्कृति और प्रकृति' समारोह आयोजित किया गया। इस समारोह की विशेषता यह रही है कि प्रख्यात गायिका सुश्री कौशिकी चक्रवर्ती ने इस समारोह का शुभारम्भ किया और शुभारम्भ तिथि में इनका गायन भोपाल के संगीत प्रेमियों के लिए अनूठी और विशिष्ट उपलब्धि की तरह रहा। सुश्री कौशिकी ने अपने गायन से पहली संध्या में ही जिस ऊँचाई पर इस आठ दिवसीय समारोह को पहुँचाया, वह किसी भी कला संस्थान के लिए गौरवपूर्ण है। समारोह की रूपरेखा पर भारत भवन के न्यासी सचिव श्री शिवशेखर शुक्ला ने सार-संक्षेप में प्रकाश डाला और दुनिया के लिए इस तरह के आयोजनों को ज़रूरी बताया।

'संस्कृति और प्रकृति' समारोह भारत भवन में पहली बार आयोजित किया गया। गहराई से देखा जाए तो संस्कृति और प्रकृति जैसे बेहद महत्त्वपूर्ण विषय को भारत भवन पहली बार एक साथ चर्चा और विचार के केन्द्र में लाया। भारत के सन्दर्भ में यह बात बेहद महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हमारा भारत छः ऋतुओं का देश है। ऋतुओं के आधार पर ही यहाँ का खानपान, पहनावा, तीज-त्यौहार आदि समृद्ध संस्कृति के रूप में हम सबके भीतर स्पन्दित हैं। भारतीय चित्रकला, संगीत, कविता, नाटक आदि में प्रकृति के अनेक आयामों को उद्घाटित किया गया है। हमारी संस्कृति में कृषि, अर्थात् नये अन्न को बहुत आदर प्राप्त है। नवान्न को लेकर उत्सव-पर्व-त्यौहार भी हैं। पूरे देश में नवान्न आधारित अनेक उत्सव हैं, जैसे कि असम में बिहू नृत्य, पंजाब में लोहड़ी, केरल का ओणम, उत्तर भारत में संक्रान्ति महोत्सव, देवउठनी ग्यारस आदि अनेक ऐसे पर्व-त्यौहार हैं जिनसे कृषि आधारित हमारी संस्कृति सुपुष्ट होती है। खेती-किसानी हमारी संस्कृति को लगातार हरीतिमा और अन्न-गंध से पूरित करती रहती है।

हमारे देश में संस्कृति के भीतर प्रकृति की जीवंतता और प्रकृति में संस्कृति की उत्सवता लगातार हम देखते हैं। कब प्रकृति संस्कृति के आँगन में अपनी खूबसूरती बिखेर देती है और कब प्रकृति के परिवेश में संस्कृति अपने उत्सव रच देती है, यह किसी भी सभ्यता और संस्कृति के अनुरागी के लिए मोहाविष्ट कर लेने जैसा है। संस्कृति और प्रकृति का रिश्ता अटूट है। इनमें सामंजस्य बेहतर रहने से ही मनुष्य के या धरती के जीव-जगत् के भीतर हम उदात्तता या उत्कृष्ट स्वरूप देख सकते हैं। प्रकृति की भी अपनी संस्कृति होती है और संस्कृति की अपनी प्रकृति। उनकी परस्परता में ही चराचर जगत का जीवन सुन्दर और सम्पूर्ण बनता है।

इस समारोह में सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के साथ ही विचार-विमर्श के सत्र भी रखे गये थे। इसके पीछे दृष्टि यह रही है कि उत्सवधर्मिता के साथ बौद्धिकता को भी मान देते हुए संस्कृति और प्रकृति पर केन्द्रित आज के सवालों पर विचार-विमर्ष किया जाए। वैचारिक सत्रों में- संस्कृति और प्रकृति के अन्तर्सम्बन्ध, हमारी रचनाशीलता में प्रकृति और संस्कृति, हमारी संस्कृति का आरण्यक अध्याय, नवान्न और हमारी कलाएँ विषय विचार-विमर्श के लिए रखे गये थे। इन

वैचारिक सत्रों में यह बात उभरकर आयी कि दुनिया के सामने संस्कृति और प्रकृति के बीच सही सन्तुलन की बहुत ज़रूरत है और ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति और संस्कृति के सामने उपस्थित हो रहे संकटों के प्रति भी विद्वान वक्ताओं ने सचेत किया। वैचारिक सत्रों में श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, श्री मनोज श्रीवास्तव, श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, श्री संतोष चौबे, श्री भज्जू श्याम, श्री रमेशचन्द्र शाह, सुश्री भूरीबाई, सुश्री शम्पा शाह, सुश्री संगीता गुन्देचा, श्री कपिल तिवारी, श्री ओम निश्चल, श्री विनय उपाध्याय, श्री शशिकुमार पाण्डे, श्री श्रीराम परिहार जैसे ख्यातिलब्ध रचनाकारों ने विभिन्न सत्रों में अपने विचार प्रकट किये जिनमें संस्कृति और प्रकृति के रिश्ते को गहराई से समझने की बातें तो हैं ही, परम्परा के पुनर्नवा स्वरूप को भी देखने की ज़रूरत है।

आठ दिवसीय इस समारोह में परम्परागत चित्रांकन शिविर और जनजातीय चित्रकृतियों की प्रदर्शनी भी आयोजित की गयी। समारोह में जो संगीत-नृत्य की प्रस्तुतियाँ हुईं उनमें श्री प्रवीण शेवलीकरण के संयोजन में वायलिन सप्तक की प्रस्तुति, श्री गौरव हजारिका के संयोजन में बिहू लोकनृत्य की प्रस्तुति और सुश्री सुजाता महापात्रा और सहयोगी कलाकारों द्वारा ओडिसी समूह नृत्य की प्रस्तुति, सुश्री अल्पना वाजपेयी के निर्देशन में उनकी शिष्याओं द्वारा कथक की समूह प्रस्तुति, सुश्री लता सिंह मुंशी के निर्देशन में उनके शिष्याओं द्वारा भरतनाट्यम की समूह प्रस्तुति, उस्ताद वासिफुद्दीन डागर का ध्रुपद गायन, सुश्री ज्योति हेगड़े का रुद्रवीणा वादन और सुश्री मालिनी अवस्थी का गायन आदि विशिष्ट उल्लेखनीय प्रस्तुतियाँ रही हैं। सुश्री मालिनी जी ने गायन में लोक परम्परा और प्रकृति से मनुष्य के रिश्ते को बहुत खूबसूरती से समाहित किया और अत्यन्त मनोहारी गीतों को अपनी कण्ठ-सिद्ध गायिकी से प्रस्तुत कर श्रोताओं को भाव-विभोर कर दिया।

समारोह में ऋतु आधारित गीतों के गायन को भी शामिल किया गया था जिनमें सुश्री उर्मिला पाण्डे और उनके साथी कलाकारों द्वारा बुन्देली ऋतुगीतों का गायन, श्री सुन्दरलाल मालवीय और उनके साथी कलाकारों द्वारा मालवी ऋतुगीतों का गायन, सुश्री कविता पटेल और उनके साथी कलाकारों द्वारा निमाड़ी ऋतुगीतों का गायन, श्री अर्चना पाण्डेय और उनके साथी कलाकारों द्वारा बघेली ऋतुगीतों का गायन शामिल है। लोक के गायन और नृत्य में ऋतुओं की बहुत व्यापक और कलात्मक उपस्थिति है। नवान्न और ऋतुओं पर आधारित अनेक लोकनृत्य, गायन आदि की परम्पराएँ हमारे लोक में बड़े पैमाने पर दिखाई देती हैं। ऋतु आधारित इस गायन से लोक के आध्यात्मिक, संघर्षशील और उत्सवी मन-मस्तिष्क का जायजा मिलता है। रंग संगीत के अन्तर्गत श्री सौरभ अनन्त के निर्देशन में विहान ग्रुप के कलाकारों द्वारा चुनी हुई कविताओं की बेहद मनमोहक प्रस्तुति सम्पन्न हुई। रचना पाठ के सत्र में विविधता से रची-पगी रचनाएँ साहित्यकारों ने प्रस्तुत कीं जिसे बड़ी संख्या में उपस्थित श्रोताओं ने सुना, समझा और सराहा भी।

समारोह में गायन, वादन, कला प्रदर्शनी, परम्परागत चित्रांकन शिविर, नृत्य, कविता पाठ, कहानी पाठ, वैचारिक सत्र, रंग संगीत आदि सम्पन्न हुए। कविता और कहानी पाठ के सत्रों में श्री लीलाधर जगूड़ी, श्री प्रयाग शुक्ल, श्री आनन्द कुमार सिंह ने अपनी कविताओं का पाठ किया और सुश्री उर्मिला शिरीष और श्री कैलाश वानखेड़े ने साहित्य प्रेमियों को अपनी कहानियाँ सुनायीं। विभिन्न कलानुशासनों को शामिल करते हुए यह बहुकला समारोह कलाप्रेमियों के दिल-दिमाग पर अपनी गहरी छाप छोड़ गया है। अनेक कलाकारों और रसिकों ने इस तरह के आयोजन भविष्य में और आयोजित करने के लिए अपनी आकांक्षा भी प्रकट की है।

प्रकृति और संस्कृति के अन्तर्सम्बन्ध का यह बहुकला समारोह बेहद गरिमा और कलाप्रेमियों की व्यापक उपस्थिति के साथ सम्पन्न हुआ।

■

राजाराम की जय हो -डॉ. धनंजय वर्मा

भोपाल। मेरी जब भी राजाराम से बात होती मेरा पहला अभिवादन होता-- 'राजाराम की जय हो।' राजाराम ने एक बार पूछा- 'आप हमेशा ऐसी जय क्यों बोलते हैं।' हम लोग 'एक पन्थ दो काज'? में भरोसा रखते हैं, सो इस बहाने उस 'राम' को भी याद कर लेते हैं, यह सोचकर कि मुमकिन है, इस नामोच्चार से मुझे भी मुक्ति मिल जाये। राजाराम यह सुनकर न केवल मुक्त भाव से हँसे बल्कि कहने लगे- फिर तो मुझे भी जवाब में धनन्जय की जय हो कहना चाहिए।' मैंने कहा- 'उसकी जरूरत इसलिए भी नहीं है कि मेरे नाना ने मेरा नाम ऐसा रखा है कि उसमें जय निहित है आप क्यों पुनरुक्ति दोष के भागी बनते हैं।' अफसोस! अब कभी न उनकी आवाज सुन पाऊंगा, और न 'राजाराम की जय' कहने का मौका ही आ पायेगा''। चुनांचे हार्दिक श्रद्धांजलि-स्वरूप एक बार फिर- 'राजाराम की जय हो।' ऐसे अनेक आत्मीय उदगार थे वरिष्ठ साहित्यकार और सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ. धनंजय वर्मा के जो ''राजाराम रूप ध्वनि कला दीर्घा'' के उद्घाटन अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में बोल रहे थे। वातावरण एक आत्मीयता का करुण भाव में डूब गया कीर्तिशेष प्रोफेसर राजाराम के प्रशंसकों, शिष्यों की आंखें उनका स्मरण कर नम हो रही थी। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश शासन के चिकित्सा शिक्षा मंत्री ने भी आत्मय भाव से राजाराम जी को याद किया उन्होंने बताया कि- 'हमारी दादी का घर में कोई चित्र नहीं था और पिता जी और परिवार के सदस्य दादी अम्मा का चित्र चाहते थे और पिता श्री कैलाश जी सारंग की चर्चा राजाराम जी से हुई, राजाराम जी को पिता जी ने दादी के चेहरे के बारे में विस्तार से बताया तथा हमारी एक बहिन की तरफ इशारा करके कहा कि दादी का चेहरा कुछ इससे मिलता था, फिर क्या है राजाराम जी ने हमारी दादी का हुबहू बहुत ही शानदार चित्र बनाकर हमारे परिवार को भेंट किया यह दादी जी का चित्र हमारे परिवार की अमूल्य निधि है धरोहर है 'राजाराम जी को मैं नमन करता हूँ, वे भले आज भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं परन्तु अपनी कलाकृतियों और सृजन के रूप में सदैव हमारे साथ रहेंगे, उनकी स्मृतियों को शत शत नमन। कार्यक्रम में सारस्वत अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवेंद्र दीपक ने अपने पारिवारिक और घनिष्ठ मित्र राजाराम जी को याद करते हुए कहा कि- 'राजाराम जी का जाना मेरी व्यक्तिगत क्षति है और उनके जाने से जो रिक्तता जो शून्य पैदा हुआ है उसे कभी नहीं भरा जा सकता। दीपक जी ने राजाराम को शिक्षार्थी, कला आचार्य, चित्रकार कला समीक्षक, सांस्कृतिक योद्धा, कला गुरु, कला पत्रिका का सम्पादक बताते हुए कहा कि वे जहाँ भी रहे उन्होंने जो भी किया हर समय भारतीयता के आच्छादन में उनकी क्रियाशीलता विस्तार पाती रही। उन्होंने राजाराम जी के इमरती और मुंगौड़े प्रेम का इज़हार भी इस अवसर पर किया और कहा कि वे सिर्फ खाने के ही नहीं खिलाने के भी शौकीन थे, आखिर मालवा भूमि के जो ठहरे। संस्कृति और कला के मोर्चे पर अविराम : राजाराम। इस आयोजन की संयोजक वरिष्ठ साहित्यकार और प्रोफेसर राजाराम की

सहधर्मिणी डॉ. बिनय राजाराम ने भी शिद्दत से राजाराम जी के जीवन और उनके कला कर्म से जुड़े कई अनुछुए पहलुओं पर प्रकाश डाला कई बार उनकी आंखें अपनी बात रखते हुए नम हो गईं। उन्होंने राजाराम जी की दृढ़ता, निर्भीकता तथा अपने सिद्धांतों से कभी समझौता न करने की बात बताते हुए कहा कि वे बहुरंग को एक रंग में बदलने वाले एक प्रयोगधर्मी जुझारू कलाकार थे, उनके सम्मान में उनके प्रिय विद्यार्थियों के आग्रह पर हमारे आवास 'सप्तवर्णी' में हमने इस कला दीर्घा को विकसित किया है। इस कला दीर्घा में प्रोफेसर साहब के स्थायी चित्रों के साथ-साथ उनके विद्यार्थियों की सामूहिक अथवा एकल प्रदर्शनी चलती रहेंगी। इस अवसर पर वरिष्ठ पत्रकार स्वदेश समूह के संस्थापक श्री राजेन्द्र शर्मा ने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रो. राजाराम को कलम और कूँची का जादूगर बताया। उन्होंने कहा कि राजाराम जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे उनकी तूलिका ने केनवास पर साक्षात प्रकृति की रचना की है उनके चित्रांकन रेखाचित्रों द्वारा किया गया मूर्त-अमूर्त स्वरूप में उनकी गूँथी गई अभिव्यक्ति में ऐसी लय के दर्शन होते हैं जो सीधे हमारे हृदय में उतरती है। वे एकदम शांत सहज सरल और मर्यादित रहते थे एकदम श्रीराम की तरह परन्तु अपनी विचारधारा से कोई समझौता नहीं और असहमति होने पर वे उग्र होकर पूरी शक्ति से प्रतिरोध भी करते थे। लक्ष्मण जी की तरह यानी वे एक साथ 'राम-लक्ष्मण' दोनों के रूप थे।

इस अवसर पर कला, साहित्य, संस्कृति की महत्वपूर्ण पत्रिका 'कला समय' के सम्पादक- श्री भँवरलाल श्रीवास द्वारा लोकार्पण भी कराया गया इस महत्वपूर्ण अंक में राजाराम जी के साथ समय बिताने वाले, उन्हें नज़दीक से जानने वाले अनेक साहित्यकारों कलाकारों उनके शिष्यों ने अपनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति अपने लेखों के माध्यम से अभिव्यक्त की है, 144 पृष्ठों की इस

पत्रिका को शोध एवं सन्दर्भ की दृष्टि से महत्वपूर्ण संग्रहनीय पत्रिका कहा जायेगा, जिससे हम राजाराम जी के विविध आयामी जीवन उनके कलाकर्म को निकट से समझ सकते हैं, मेरा भी एक आलेख 'पत्रों के आईने में राजाराम' इसमें प्रकाशित हुआ है, जिसमें उनके तीन महत्वपूर्ण पत्र मैंने प्रदर्शित किए हैं, जिनसे तात्कालिक ज्वलन्त विषय पर राजाराम जी के विचारों को समझा जा सकता है।

इस अवसर पर जहाँ राजाराम जी के मित्रों, प्रशंसकों, साहित्यकारों कलाकारों की आंखें इस कला दीर्घा के उद्‌घाटन होने से प्रसन्नता से खुशी के आंसुओं से भरी हुई थीं वहीं उनकी कमी उनकी अनुपस्थिति उनकी यादों के कारण दु:ख से भी डबडबायी हुई भी थी।

इस महत्वपूर्ण अवसर आयोजन का संचालन करने का दायित्व मुझे मिला, मैं अपने अग्रज वरिष्ठ चित्रकार को इस बहाने स्मरण कर सका उनके श्रीचरणों में पुन: शत-शत नमन सादर श्रद्धासुमन...प्रणाम।।

रपट - घनश्याम मैथिल 'अमृत' भोपाल

कला समय का बैंक खाता विवरण

1.	खाता का नाम	:	कला समय
2.	खाता संख्या	:	09321011000775 (चालू खाता)
3.	बैंक शाखा	:	पंजाब नैशनल बैंक की शाखा अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)
4.	आईएफएस कोड	:	PUNB0093210

प्रबंध सम्पादक- कला समय

आयोजन

भारत की आज़ादी का अमृत महोत्सव एवं ध्रुवपद की अमृत वाणी

इंटर्नेशनल ध्रुवपद धाम ट्रस्ट ,जयपुर द्वारा जवाहर कला केन्द्र की सहभागिता में आयोजित **'भारत की आज़ादी का अमृत महोत्सव एवं ध्रुवपद की अमृत वाणी'** नाम से 6 दिवसीय आयोजन दिनांक 20-23 दिसंबर जवाहर कला केन्द्र में सम्पन्न हुआ। जिसमें ध्रुवपदाचार्य लक्ष्मणभट्ट तैलंग के सानिध्य में ध्रुवपद गायिका डॉ.प्रोफ़ेसर मधु भट्ट तैलंग के संयोजन एवं ध्रुवपद गायक डॉ. श्यामसुंदर शर्मा के संयोजन में दो दर्जन विद्यार्थियों ने ध्रुवपद का प्रशिक्षण लेकर ध्रुवपद की घरानेदार आलापचारी एवं कार्यशाला में ध्रुवपद शैली में विशेष रूप से तैयार राष्ट्रगीत वन्दे मातरम् का राग देस एवं ताल सूलताल में पं. प्रवीण आर्य की पखावज संगति के साथ बेहतरीन प्रदर्शन किया। जवाहरकला केंद्र की अतिरिक्त महानिदेशक श्रीमती अनुराधा गोगिया ने कार्यशाला के प्रतिभागी विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र द्वारा सम्मानित कर सम्बोधित किया । चार दिवसीय कार्यशाला के उपरांत दिनांक 25-26 दिसम्बर 2021 को आयोजित अंतर्राष्ट्रीय ध्रुवपद नाद निनाद विरासत समारोह हुआ। जिस में भाग लेने वाले कलाकार जापान के टेटसूया केनाको ने एकल पखावज वादन, ग्वालियर के अभिजीत सुखदाणे ने ध्रुवपद गायन, ग्वालियर के जयवंत गायकवाड़ ने एकल पखावज वादन, पं. रबिंद्र गोस्वामी ने सुरबहार वादन, दरभंगा घराना के समित मलिक ने ध्रूवपद गायन की उम्दा व एक से एक बढ़कर प्रस्तुतियाँ दीं। इन कलाकारों के साथ पखावज पर पंडित जयपुर के प्रवीण आर्य , इंदौर के पंडित संजय आगले, वाराणसी के श्री आदित्य दिप एवं दिल्ली के श्री ऋषि शंकर उपाध्याय ने संगत की एवं सारंगी पर श्री अब्दुल हमीद ने संगत की।

समारोह का शुभारम्भ

समारोह में अन्य क्षेत्रों को जोड़ते हुए समारोह के विशिष्ट अतिथियों में उपस्थित रहे जिनके द्वारा दीप प्रज्ज्वलन हुआ जिनमें सर्व श्री चित्रकार पद्मश्री शाकिर अली, आकाशवाणी हिसार के कार्यक्रम प्रमुख पंडित श्री राजकुमार नाहर, शिक्षाविद डॉक्टर केशव बड़ाया, अधिवक्ता डॉक्टर अखिल शुक्ला, डॉक्टर ममता शुक्ला, चित्रकार गोपाल भारती, रंगकर्मी श्री राजेंद्र राजू एवं आयकर अधिकारी श्री जी डी शर्मा थे। गोपाल भारती ने इस समारोह में ट्रस्ट की सचिव संगीतज्ञा प्रो. मधु भट्ट तैलंग का पोर्ट्रेट ट्रस्ट को भेंट की । समारोह में सुरबहार वादक श्री रवीन्द्र गोस्वामी , आकाशवाणी दिल्ली की सहायक निदेशक कार्यक्रम श्रीमती वीणा पहाड़ी व भोपाल की राष्ट्रीय पत्रिका 'कला समय' के सम्पादक श्री भँवरलाल श्रीवास एवं उद्योगपति डॉक्टर के.एल.जैन को लाइफ़ टाइम अचीवमेंट अवार्ड, टेटसूया कनेको को विशिष्ट उपलब्धि

ध्रुवपद गायन कार्यशाला के विद्यार्थियों का सम्मान

सम्मान, अभिजीत सुखदाने, जयवंत गायकवाड़ एवं समित मल्लिक को ध्रुवपद सौरभ अवार्ड दिया गया। अंत में समारोह की संयोजिका प्रोफ़ेसर मधु भट्ट तैलंग ने सभी का आभार व्यक्त किया।

■

27 वें अखिल भारतीय ध्रुवपद नाद-निनाद विरासत समारोह जयपुर

कला समय के संपादक भँवरलाल श्रीवास को लाइफ टाइम अचीवमेंट सम्मान

राष्ट्रीय पत्रिका कला समय के सम्पादक भँवरलाल श्रीवास के सम्पादन, लेखन, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विशेष अवदान हेतु लाइफटाइम अचीवमेन्ट सम्मान से सम्मानित कर प्रशस्ति पत्र का वाचन डॉ.बिनय षड़ंगी राजाराम वरिष्ठ साहित्यकार तथा मूर्धन्य शास्त्रीय गायक एवं कला समय संस्था के अध्यक्ष पंडित सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' के सयुक्त प्रतिनिधित्व में ध्रूवपद-धाम न्यास, जयपुर की ओर से यह सम्मान भोपाल में प्रो. राजाराम कला दीर्धा में श्रीवास को देकर सम्मानित किया गया ।

ध्रुवपदाचार्य पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग एवं पुत्री/शिष्या डॉ. प्रो. मधु भट्ट तैलंग

डॉ. बिनय राजाराम, पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' द्वारा भँवरलाल श्रीवास को सम्मानित किया गया

श्री गोपाल भारती द्वारा बनाया डॉ. प्रो. मधु भट्ट तैलंग को पोट्रेट भेंट।

श्री टेटसूमा कनेको, जापान द्वारा प्रस्तुति

समारोह के समूह छायाचित्र

पं. रविन्द्र गोस्वामी का सरोद वादन

भाव, स्वर और लय की त्रिवेणी-पंडित विजय शंकर मिश्र

गुरु रक्षा सिंह

कोरोना के कहर से जूझते लोगों तक पिछले दिनों कुछ युवा संगीतकारों ने बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक आनन्द पहुंचाने का सार्थक प्रयास किया। 21 और 22 दिसंबर को दिल्ली में युवा संगीतकारों की दो हृदयस्पर्शी प्रस्तुतियां हुईं... ऐसी प्रस्तुतियां जिन्हें देखकर पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत को कोई खतरा नहीं है। 21दिसम्बर को नृत्यम कला संगम और कथक केंद्र के संयुक्त तत्वावधान में विवेकानंद सभागार में सुविख्यात कथक नृत्यांगना रक्षा सिंह और उनकी शिष्याओं ने अपनी नृत्यांजलि में 2 घंटे से अधिक समय तक दर्शकों को रस विभोर किया। शुभारम्भ रक्षा और उनकी शिष्याओं द्वारा प्रस्तुत गणेश वंदना से हुआ। रक्षा ने बिंदादीन महाराज रचित अष्टपदी निरतत ढंग पर सम्मोहक अभिनय किया। आड़ा चौताल जैसे कठिन ताल में इन्होने नृत्य के तकनीकी पक्षों की भी आकर्षक प्रस्तुति की। पैरों से बारीक कटते बोल, लय के कठिन प्रयोग और आकर्षक अंग संचालन रक्षा सिंह के नृत्य की प्रमुख विशेषता है। बन्दिशी ठुमरी कोयलिया कुहुक सुनावे पर अभिनय करते हुए उन्होने श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग श्रृंगार का बहुत ही सुन्दर प्रदर्शन किया। इस कार्यक्रम में उनकी प्रमुख शिष्याओं नन्दिनी शर्मा, अस्मिता मिश्रा,उत्कर्ष शंकर मिश्र, युकता गोस्वामी, हर्षिता शर्मा, स्मिता कुमारी, शिफा डेविड, नयोनिका कौशल, यानवी मेहता, जिशा राठौर और प्रणाली सिंह ने भी अपनी अपनी प्रतिभा का बहुत ही अच्छा परिचय दिया। उदय शंकर मिश्र (तबला), संजीव शुक्ला (गायन), अनिल मिश्रा (सारंगी), उमा शंकर (सितार) और सतीश पाठक (बांसुरी) ने भी अपनी सफल संगति द्वारा कार्यक्रम में चार ही नहीं पांच चांद लगा दिया। पढन्त नन्दिनी शर्मा ने किया और कार्यक्रम का सफल संचालन अस्मिता मिश्रा ने। कलाकारों का स्वागत सम्मान कथक केंद्र के निदेशक श्री सुमन कुमार, कथक गुरु पंडित राजेन्द्र गन्गानी और डैनी डेविड ने किया।

श्री यशवंत वैष्णव

यंग म्युजिशियन यूनियन द्वारा 22 दिसम्बर को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित संगीत सन्ध्या की शुरुआत दिव्यांश हर्षित श्रीवास्तव के प्रभावशाली संतूर वादन से हुई। उजित उदय कुमार (तबला), और अंकित पारीक (पखावज) के सूझ बूझ युक्त संगति में दिव्यांश ने राग कौशिक रंजनी में बसंत ताल, एकताल और द्रुत त्रिताल में सूफियाना शैली की तीन सुन्दर गतें प्रस्तुत कीं। संतूर जैसे साज पर मीन्ड , गमक और सपाट की प्रभावशाली प्रस्तुति कर सबका दिल जीत लिया। इस आयोजन के मुख्य आकर्षण मुम्बई से पधारे युवा और प्रखर ताबलिक यशवंत वैष्णव ने अपना स्वतंत्र तबला वादन त्रिताल में प्रस्तुत किया। दाहिने बायें का सुन्दर सन्तुलन, बोलों का स्पष्ट और सुन्दर निकास और चमत्कृत करती तैयारी ने लोगों को रोमांचित कर दिया। उस्ताद नत्थू खाँ, उस्ताद मीरा बख्श घिलवालिये, उस्ताद अल्ला रखा, पंडित सुशील कुमार जैन, पंडित योगेश समसी और पंडित मुकुन्द भाले की विशिष्ट रचनाओं का वादन करके यशवंत ने लोगों को भाव विभोर कर दिया। हारमोनियम पर ललित सिसोदिया की संगति सोने में सुगंध की तरह थी।

सन्तूर पर दिव्यांश हर्षित श्रीवास्तव, तबले पर उजित उदय कुमार।

■

आगर मालवा इतिहास पुस्तक का विमोचन सम्पन्न

झालावाड़ के इतिहासकार ललित शर्मा द्वारा लिखित एवं शुजालपुर मालवा की डॉ. वर्षा नालमे द्वारा सम्पादित सचित्र पुस्तक ''आगर मालवा जिला-इतिहास और पर्यटन'' का विमोचन रविवार शाम उज्जैन के मनोविकास विशेष शिक्षा महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ।

मुख्य अतिथि कला इतिहासकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने कहा कि यह कृति मालवा और राजस्थान के अनेक इतिहास पक्ष को उद्घाटित करने वाली है क्योंकि यह जिला उक्त दोनो प्रदेशों के मिलन पर स्थित है। ऐसे ही क्षेत्रीय कार्यो से प्रदेश का समग्र सांस्कृतिक और पर्यटन महत्व उद्घाटित होता है। अध्यक्ष फादर टॉम जार्ज ने कहा कि क्षेत्रीय इतिहास की ऐसी पुस्तक हर जिले के लिये लिखा जाना आवश्यक है, जिससे प्रत्येक जिले की सम्पूर्ण पर्यटन जानकारी का ज्ञान हो सके।

विशिष्ट अतिथि डॉ. प्रेम छाबड़ा ने कहा कि आज के दौर में ऐसी पुस्तक से नवीन पीढ़ी को जोड़ना आवश्यक है ताकि वे अपनी सांस्कृतिक धरोहर के महत्व को जान सके। विशिष्ट अतिथि सेठ अमित कासलीवाल ने कहा कि इस पुस्तक की सरसता उत्तम स्तर की है क्योंकि इसमें अनेक स्थलों का वर्णन जीवन्त भाव से संचित किया गया है। विशिष्ट अतिथि पत्रकार दिशा अविनाश शर्मा ने कहा कि प्रस्तुत कृति मालवा के सांस्कृतिक इतिहास का महत्वपूर्ण सौपान है जिसे आधार बना कर भविष्य में राजस्थान और मालवा के मध्यकालीन इतिहास पर शोध की जा सकती है।

विशिष्ट अतिथि डॉ. भावना व्यास ने कहा कि आगर जिले की कृति पुरातत्व के साथ इस क्षेत्र के प्रत्येक सांस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करती है जो शोध के लिये अति महत्वपूर्ण है। इस अवसर पर लेखक ललित शर्मा ने पुस्तक की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। समारोह में अतिथियों ने पुरातत्व योगदान हेतु डॉ. शशि अहिरवार एवं डॉ. अरविन्द कुमार जैन को शॉल, श्रीफल, प्रतीक चिन्ह प्रदत्त कर एव ं ओपरना पहनाकर सम्मानित किया। अतिथियों का स्वागत डॉ. अंजना सिंह गौर, डॉ. प्रीति पाण्डे, बंशीधर बन्धु, डॉ. मंजू यादव, अंशु गर्ग, श्वेता पाठक ने किया। समारोह का संचालन डॉ. वर्षा नालमे ने किया एवं आभार गायत्री शर्मा ने दिया।

– ललित शर्मा 'इतिहासकार' झालावाड़ , मोबा. 9829896368

राशिनकर स्मृति अ. भा. समारोह में हुआ रचनात्मकता का सम्मान
आपले वाचनालय का रचनात्मक अवदान अतुलनीय – डॉ. रारावीकर

इंदौर. शहर की प्रतिष्ठित संस्था आपले वाचनालय के संस्थापक संस्कृति पुरुष वसंत राशिनकर की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले अ.भा. सम्मान समारोह का गरिमापूर्ण आयोजन आपले वाचनालय सभागृह में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मुंबई के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, लेखक तथा वर्तमान में भारतीय रिज़र्व बैंक के डायरेक्टर डॉ. आशुतोष रारावीकर ने अपने उद्बोधन में आपले वाचनालय के वृहद कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा कि संस्था का रचनात्मक अवदान अतुलनीय ही नहीं वरन प्रेरणास्पद है। अध्यक्ष डॉ.अनिल गजभिये, अतिथिद्वय सर्वश्री मधुसुदन तपस्वी व अरविन्द जवलेकर ने संस्था द्वारा साहित्य, कला संस्कृति के क्षेत्र में किये कार्यों को आदरपूर्वक याद किया. इसके पूर्व प्रसंग वक्ता के रूप में उपस्थित वरिष्ठ संस्कृतिकर्मी श्री अरुण डिके ने अपने प्रभावी

संबोधन में न सिर्फ वसंतजी के कार्यों को शिद्दत से याद किया वरन उन्हें शहर की सांस्कृतिक धरोहर निरुपित किया। आपले वाचनालय व श्री सर्वोत्तम के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित इस सम्मान समारोह में लोणार के प्रतिभाशाली कवी डॉ. विशाल इंगोले को समारोह के सर्वोच्च सम्मान कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय कृतियों को दिए जाने वाले वसंत राशिनकर काव्य साधना अ.भा. सम्मान से मुंबई से आये डॉ. विजयकुमार देशमुख, येवतमाल से विनय मिरासे 'अशांत', अकोला से सुरेश पाचकवड़े, धुलिया से प्रभाकर शेलके व इंदौर की मेधा खीरे को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर अच्युत पोतदार प्रदत्त रामू भैय्या दाते स्मृति पुरस्कार शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट उपलब्धि के लिए राधिका धर्माधिकारी को दिया गया। इस प्रसंग पर सीए जयंत गुप्ता की विशिष्ट कृति 'आस्था की अनुगूँज' का श्रीति राशिनकर द्वारा किये गए मराठी अनुवाद 'दिव्यतेची प्रचिती' का अतिथियों द्वारा विमोचन किया गया। उत्तरार्ध में 'वसंत काव्य संध्या' शीर्षक से एक प्रभावी मराठी कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस बहुरंगी काव्य यात्रा में मदन बोबडे, डॉ. विजयकुमार देशमुख, अनंत काईतवाडे, मनीष खरगोणकर, सुषमा अवधूत, मेधा खीरे, उमेश थोरात, ज्ञानेश्वर तीखे, विश्वनाथ शिरढ़ोंणकर, वैशाली पिंगले, अरुणा खरगोणकर, दीपक देशपांडे, मधुरा देशमुख और वैजयन्ती दाते ने अपनी रचनाओं से श्रोताओं को अभिभूत किया। सुचारू संचालन श्रीति राशिनकर और डॉ. वसुधा गाडगिळ ने किया। मनोहर शहाने द्वारा गाईं सुमधुर सरस्वती वंदना के बाद अतिथियों का स्वागत किया सर्वश्री सुभाष रानडे, प्रफुल्ल कस्तुरे, जयंत गुप्ता, देशपांडे ने। आभार प्रदर्शन संदीप राशिनकर ने किया।

रपट- संदीप राशिनकर

पयोधि 'कमलेश्वर स्मृति सम्मान' से अलंकृत

भोपाल के दुष्यन्त स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय द्वारा मूलत: बीजापुर जिले के भोपालपटनम् निवासी प्रख्यात साहित्यकार लक्ष्मीनारायण पयोधि को उनकी महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धियों के लिये कालजयी कथाकार कमलेश्वर की स्मृति में स्थापित राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित 'कमलेश्वर स्मृति सम्मान से अलंकृत किया गया। संस्था के निदेशक राजुरकर राज ने बताया कि यह सम्मान प्रतिवर्ष किसी ऐसे सर्जक को प्रदान किया जाता है, जिसके कथा-साहित्य ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बनायी हो। दुष्यन्त कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय, भोपाल के अंजय तिवारी स्मृति सभागार में आयोजित इस गरिमामय कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मध्यप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष माननीय श्री गिरीश गौतम और विशिष्ट अतिथि हिन्दी और बघेली के प्रसिद्ध कवि श्री रामनरेश तिवारी 'निष्ठुर' थे। अध्यक्षता साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् के निदेशक डॉ. विकास दवे ने इस भव्य अलंकरण समारोह की अध्यक्षता की। संचालन सुपरिचित रचनाकार घनश्याम मैथिल 'अमृत' ने किया। श्री पयोधि के अलावा विभिन्न क्षेत्रों के 11 अन्य साधकों को भी पुरस्कृत किया गया।

राष्ट्रीय सम्मेलन में अटल जी की प्रतिकृति भेंट

प्रो.राजाराम द्वारा सृजित मान.अटल बिहारी वाजपेयी के चित्र की प्रतिकृति को अटलजी के जन्मदिन पर आयोजित 'रा.शि.संचेतना संस्था' के राष्ट्रीय सम्मेलन मैं सादर भेंट करते हुए।

-डॉ.बिनय राजाराम।

वरिष्ठ छायाकार श्री कौशल का सम्मान

जनसम्पर्क विभाग के पूर्व अपर संचालक और ''कला समय'' पत्रिका के ''समय की धरोहर'' स्तंभ के यशस्वी सुविख्यात वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल को सप्रे संग्रहालय भोपाल में आयोजित अलंकरण समारोह में मध्यप्रदेश के गृह मंत्री श्री नरोत्तम मिश्र द्वारा शाल और प्रशस्ति पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया। श्री कौशल को छायाचित्रों में इतिहास संजोने में उत्कृष्ट योगदान देने के लिए वेटेरन जर्नलिस्ट फेडरेशन द्वारा प्रवर्तित हुक्म चंद नारद पुरूस्कार प्रदान किया गया है। इस अवसर पर पूर्व सांसद श्री रघुनन्दन शर्मा, माखन लाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर कुमार गोविन्द सुरेश, सप्रे संग्रहालय के संस्थापक संयोजक श्री विजयदत्त श्रीधर, अध्यक्ष डॉ. शिव कुमार अवस्थी, उपाध्यक्ष श्री चन्द्रकान्त नायडू के अलावा पत्रकार, साहित्यकार एवं गणमान्य नागरिक उपस्थित थे। श्री जगदीश कौशल ने उनकी 75 वर्षों

की फोटोग्राफी कला साधना को रेखांकित और सम्मानित करने के लिए श्री विजयदत्त श्रीधर जी और ''कला समय'' पत्रिका के सम्पादक श्री भँवरलाल श्रीवास के प्रति हृदय से आभार व्यक्त किया है।

स्पंदन सम्मान समारोह का आयोजन

ललित कलाओं और साहित्य के लिए समर्पित संस्था स्पंदन प्रतिवर्ष साहित्यकारों और कलाकारों को सम्मानित करती आयी है। इसी कड़ी में स्पंदन सम्मान समारोह 2019 और 2020 का संयुक्त आयोजन दुष्यंत कुमार संग्रहालय भोपाल में सम्पन्न हुआ। इन दोनों वर्षों में सम्मानित रचनाकारों को स्पंदन संस्था ने सम्मानित करने का सराहनीय काम किया। कोविड 19 के कारण भोपाल के बाहर के रचनाकारों का आना संभव नहीं हो सका। प्रसिद्ध कथाकार श्री गोविंद मिश्र ने अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए कहा कि साहित्य अपने आप में एक ऐसी गहरी और जादुई चीज है जो सबको जोड़ देती है। कोई भी समाज इसके बिना जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि हमारे समाज में साहित्य के पाठकों का दायरा घटा है फिर भी समाप्त नहीं हुआ है। अभी भी साहित्य पढ़ा जा रहा है। जीवन के इससे शक्ति मिलती है। लेखकीय वक्तव्य देते हुए डॉ आनंद कुमार सिंह ने कहा कि मनुष्य की मूल शक्ति उसका अदम्य साहस है जो सृजन के रूप में बाहर आता है । वैश्विक महामारी के समय अपनी रचनाधर्मिता की ज्योति जलाने वाले रचनाकार बधाई के पात्र हैं। जीवन में पारस्परिक सौहार्द और प्रेम ही सबसे बड़ा मूल्य होता है। इस बात को साहित्यकार ही रेखांकित करता है। साहित्यकारों का सम्मान जीवन की संवेदनशीलता का सम्मान है।

सम्मानित रचनाकारों में कविता संग्रह 'न्यूनतम मैं' के लिए श्री गीत चतुर्वेदी को, आलोचना पुस्तक 'सन्नाटे का छंद' के लिए डॉ आनंद कुमार सिंह को, ग़ज़ल संग्रह के लिए श्री ज़हीर कुरैशी को, रंग कर्म के लिए अविजित सोलंकी को सम्मानित किया गया। श्री शशांक और सुशोभित कार्यक्रम में उपस्थित नहीं हो सके। इस अवसर पर अतिथियों का स्वागत प्रसिद्ध कवि और कथाकार डॉ वीणा सिन्हा ने किया और सम्मानित रचनाकारों का परिचय भी दिया। कार्यक्रम में रचनाकारों को प्रशस्ति पत्र शाल श्रीफल और पुरस्कार राशि भी प्रदान की गयी। कार्यक्रम का सफल संचालन स्पंदन की सचिव डॉ उर्मिला शिरीष जी ने किया। कार्यक्रम में भारत भवन के प्रशासनिक अधिकारी एवं कवि श्री प्रेम शंकर शुक्ल, साहित्य अकादमी म प्र के पूर्व सचिव श्री आनंद सिन्हा, मप्र हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पलाश सुरजन, स्पंदन संस्था के अध्यक्ष डॉ शिरीष शर्मा, प्रो ललिता त्रिपाठी, श्री वीरेंद्र व्यास, श्री महेश सक्सेना, राग भोपाली के संपादक श्री शैलेंद्र शैली, हिंदी भवन के श्री जवाहर कर्णावत, कथाकार श्रीमती सुमन सिंह, अनीता चौहान, डॉ स्नेहा कामरा, डॉ हेमंत सिन्हा और श्री राजुरकर राज, श्री अशोक बुलानी एवं श्रीमती भावना पंत उपस्थित रहे। इस अवसर पर अनेक साहित्य प्रेमी विद्यार्थी भी उपस्थित थे।

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

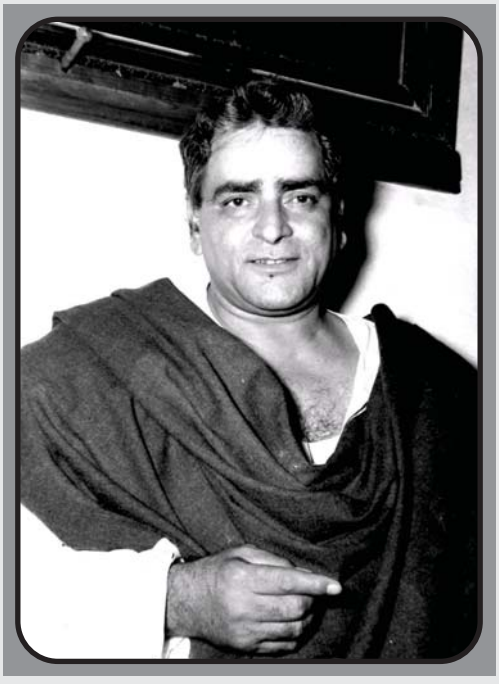

सुविख्यात फिल्म अभिनेता पृथ्वीराज कपूर

जन्म : 3 नवम्बर 1906 **निधन : 29 मई 1972**

भारतीय रंगमंच और रजतपट के युगपुरुष श्री पृथ्वीराज कपूर का नाम एक ऐसे अभिनेता के रूप में याद किया जाता है जिन्होंने अपनी कड़क आवाज़, रोबदार भाव भंगिमा और दमदार अभिनय के बल पर लगभग चार दशकों तक सिनेमा और रंगमंच के दर्शकों के दिलों पर राज किया। अंग्रेजी नाटक कम्पनी और मूल फिल्मों से अभिनय कला का सफर शुरु करने वाले पृथ्वीराज कपूर को सन् 1931 में बम्बई में बनी पहली बोलती फिल्म – 'आलम आरा'' में सहायक भूमिका निभाने का गौरव भी प्राप्त हुआ है। वैसे तो उन्होंने अनेक फिल्मों और नाटकों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई हैं लेकिन ''सिकन्दर'' और ''मुग़ल ए आजम'' उनकी यादगार फिल्में हैं। जिनमें सिकन्दर और बादशाह अक़बर के किरदारों को उन्होंने अपने दमदार डायलॉग, रोबदार भाव भंगिमा और अभिनय कुशलता से अमर कर दिया। पृथ्वी थेएटर की स्थापना कर मात्र 16 साल की अल्प अवधि में देश के कोने–कोने में 2662 नाटक प्रदर्शन करने का रिकार्ड भी उनके नाम है।

फिल्मों तथा रंगमंच के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सन् 1952 में उन्हें राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया था। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिलाने में भी उन्होंने सदन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। इस महान अभिनेता को वर्ष 1969 में भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण और वर्ष 1972 में फिल्म जगत का सर्वोच्च सम्मान ''दादा साहब फाल्के पुरस्कार'' मरणोंपरांत प्रदान कर सम्मानित किया गया था। अभिनय सम्राट श्री पृथ्वीराज कपूर का यह फोटो सुविख्यात वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल ने वर्ष 1957 में क्लिक किया था जब वह पृथ्वी थिएटर के नाटकों के प्रदर्शन के लिए रीवा आए थे।

संस्मरण

अभिनय सम्राट पृथ्वीराज कपूर की स्मृतियों का सचित्र-शाब्दिक विवरण

गत 3 नवम्बर को हिन्दी फिल्म जगत और रंगमंच के सुविख्यात अभिनेता श्री पृथ्वीराज कपूर जी का जन्मदिन था। उनका नाम स्मरण करते ही मेरी आज से 65 वर्ष पूर्व की पुरानी यादें ताज़ा हो गई। जो परम आदरणीय पापा पृथ्वीराज कपूर जी के साथ बिताए हुए स्वर्णिम पलों से जुड़ी हुई हैं। वर्ष 1956 में मैं दरबार कालेज रीवा में एम.ए. (अर्थशास्त्र) का छात्र था उन्हीं दिनों पापा जी पृथ्वी थिएटर की अपनी मण्डली के साथ रीवा आए थे- वैंकट टाकीज के मंच पर उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'पठान', 'दीवार', 'गद्दार' आदि नाटकों का प्रदर्शन हुआ था। लगभग दस दिन के रीवा प्रवास के दौरान उन्होंने नाटकों के अलावा अनेक सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों में भी भाग लिया था। जहाँ एक ओर उन्होंने रीवा के निकट स्थित सुप्रसिद्ध पर्यटन स्थल चचाई प्रपात की प्राकृतिक सौंदर्य का भरपूर आनंद लिया वहीं दूसरी ओर रीवा के महाराजा मार्तण्ड सिंह जी का विशेष आतिथ्य स्वीकार कर खकरी कोठी गोविन्दगढ़ में स्वल्पाहार कर वहाँ के किले में विश्वविख्यात सफेद शेरों को भी देखा था। मैं स्वयं को बहुत भाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे उनके विभिन्न कार्यक्रमों में छायांकन करते समय उनका सांनिध्य और आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

रीवा नगर से कपूर परिवार का वर्षों पुराना अटूट रिश्ता

यह फोटो रीवा नगर के हृदय स्थल में स्थित वैंकट भवन में उनके नागरिक अभिनंदन समारोह के अवसर का है जिसमें वह नगरवासियों का आभार व्यक्त कर रहे हैं। फोटो में तत्कालीन लगभग सभी प्रमुख नागरिक दिखाई दे रहे हैं। जिसमें रीवा संभाग के आयुक्त श्री जे.के. चौधरी, समाजवादी पार्टी के वरिष्ठ नेता एवं विधायक जगदीश जोशी, कांग्रेस पार्टी के नेता श्री शत्रुघन सिंह तिवारी, दैनिक जागरण रीवा के सम्पादक श्री जुगुल बिहारी अग्निहोत्री, साप्ताहिक पंचायत के सम्पादक श्री भारतभूषण, सांध्य दैनिक भास्कर के सम्पादक श्री चन्द्रकान्त शुक्ला, इलाहाबाद से प्रकाशित दैनिक भारत और लीडर के संवाददाता श्री बालकृष्ण पाण्डेय, वरिष्ठ पत्रकार श्री रामधनी मिश्र, अर्थशास्त्र के प्रोफेसर मेरे गुरुदेव आदरणीय ज्योति प्रकाश सक्सेना के अलावा अन्य प्रमुख नागरिकगण दिखाई दे रहे हैं।

इस अवसर पर रीवा नगर से अपने वर्षों पुराने रिश्ते को याद करते हुए अत्यन्त भावविभोर होकर पापा पृथ्वीराज कपूर जी ने कहा था कि इस शहर का तो मैं वर्षों से अहसानमन्द हूँ आपके शहर से कपूर परिवार का अटूट रिश्ता है उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ। इस शहर ने हमें कृष्णा जैसे सुसंस्कार वाली पुत्रवधू दी है। मुझे आज भी वह दिन अच्छे से याद है जब 12 मई 1946 को कपूर खानदान के लोग धूमधाम के साथ हमारे बड़े बेटे राजकपूर की बारात लेकर यहाँ आए थे। हमारे समधी राय करतारनाथ मल्होत्रा के परिवार के साथ आप सब लोगों ने बारात का भव्य आत्मीय स्वागत किया था। भाई करतारनाथ मल्होत्रा जी उन दिनों रीवा राज्य में आई.जी. के पद पर थे। बारातियों को रायलमेंशन (वर्तमान स्वागत भवन) में ठहराया गया था और करतार नाथ जी के सरकारी बंगले में राज और कृष्णा के सात फेरे हुए थे।

अपनी बहू कृष्णा राजकपूर की तारीफ करते हुए उन्होंने कहा था कि संयुक्त परिवार के संस्कार उसे इसी नगर की पावन धरती से मिले हैं। जिसके कारण वर्षों से कपूर परिवार बम्बई जैसी महानगरी में सांझें चूल्हे की अनूठी मिसाल बना हुआ है। यहाँ की माटी की सुगंध बहूरानी कृष्णा के माध्यम से कपूर परिवार के सभी सदस्यों तक पहुँची है। सही मायने में हमारा पूरा परिवार ''रिमही'' किस्सागोई वैसी ही चौपाल और वैसी ही तीज-त्योहार के साथ रीवा की संस्कृति को ही जी रहा है।

- स्तंभकार वरिष्ठ छायाकार हैं
सम्पर्क-ई 3/320 अरेरा कालोनी, भोपाल, मोबा.: 9425393429

■

प्रतिक्रिया

पत्रिका के बहाने

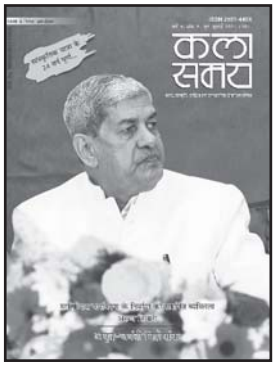

आदरणीय श्रीवासजी,
सादर वन्दे

कोरोना काल में देश की अनेक साहित्यिक कला-संस्कृतिपरक पत्रिकाएं अपनी गडर से फिसलती गुड़ती रहीं लेकिन आपने बड़े मनोयोग से 'कला समय' की सांस्कृतिक यात्रा का सुमेरु सुदृढ़ता के साथ शिखरबंध किये रखा। साक्षी के तौर पर 2021 में प्रकाशित जून-जुलाई का अरुण तिवारी अमृत जयंती तथा अगस्त-सितम्बर का प्रो. राजाराम स्मरण विशेषांक मेरे सम्मुख नजरबंध हैं।

तिवारीजी के व्यकित्व एवं कृतित्व को लेकर अनेक कोणों से अनेक मनीषी महारथियों तथा हमदर्दों ने बहुत रूपा सच सार्थक करता समन्वयकारी सम्प्रेषण दिया है। कमलकिशोर गोयनका ने सचमुच ही उन्हें प्रेरणा के पर्याय कहते लिखा, वे अपने से अधिक अपनी पत्रिका प्रेरणा को ज्यादा प्रचलित लोकप्रिय बनाना चाहते हैं। अपने से अधिक दूसरों के रचे साहित्य को प्रकाश में लाकर पाठकों तक पहुंचाना चाहते हैं। उनका यह लक्ष्य, मनोभाव और समर्पण क्या उन्हें महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, अज्ञेय तथा धर्मवीर भारती जैसे सम्पादकों की श्रेणी में स्थापित नहीं कर देता ?

स्वयं गोयनकाजी बड़े लेखक होते हुए भी अपने समानधर्मी बड़े लेखकों के बारे में तटस्थ टिप्पणी करने में जरा भी झिझके नहीं हैं। वे लिखते हैं, कमलेश्वर ने कभी पुरस्कार नहीं लिया क्योंकि उनका मत था कि इससे उनके लेखन की गरिमा कम होती है। नरेश मेहता कहते हैं, नामवरसिंह से बड़ा घटिया आलोचक शायद ही कोई हुआ हो और निर्मल वर्मा कोई बड़े कहानीकार है ? दो कौड़ी के हैं। वे साहित्य और राजनीति में अन्तर करते हैं और कहते हैं कि राजनीति सत्यता को बदलने की बात कहती है और साहित्य दुनिया को बदलना चाहता है। (पृष्ठ 17 व 19)

प्रो. धनंजय वर्मा ने तिवारीजी की बेमिसाल साहित्यिक पत्रकारिता के विलोवण के साथ अपना भी काफी कुछ कहकर बेहतरीन धुनक दे दी है जिससे मेरे जैसे लोग सहज संभाव्य ही उनसे परिचित हो गये हैं।

अपनी यात्रा में विशेषांक नायक अरुण तिवारी जी ने साहित्य की डगर पर डगमग करते जो पापड़ बेले उसकी संक्षिप्ती मनभावन मोहनी लगी। उतार-चढ़ाव मनुष्य मात्र का रक्त-रिश्ता है। उसे व्यक्त करने की खूबी ही किसी साहित्यिक की वह चौपाल है जिस पर बैठ कर चुलबुली शतरंज के मोहरों से मनभावन खेला करता है।

प्रख्यात चित्रकार प्रो. राजाराम केन्द्रित 'कला समय' अपने 25वें वर्ष में प्रवेश का सुरंगा दस्तातावेज है। राजाराम का जीवनवृत्त एक फक्कड़ाना अन्दाज का देशज रंगों से सराबोर रहा। सम्पादकीय में आपने सटीक विश्लेषण देते लिखा, प्रो. राजाराम धुन के धनी चित्रकार सम्पादक साहित्यकार आलोचक शब्दसाधक अपनी जीवनशैली, कला के प्रति उद्दाम जिद, संघर्ष चर्चित अहंकार रहित मिलनसार व्यक्तित्व छात्रों के प्रति अटूट प्रेम करने वाला व्यक्तित्व वाला समकालीन कला में अमूमन नदारद ही दिखता है।

मुझे ठीक से तो याद नहीं पर जब प्रो. नरोत्तमदास स्वामी वनस्थली विद्यापीठ में हिन्दी अध्यक्ष थे तब मैंने राजारामजी से भेंट की थी। उनकी सहधर्मिणी डॉ. बिनय षडंगी भी वहीं पढ़कर पढ़ाने वाली बनीं। उनका लिखा पुण्य स्मरणीय आलेख राजारामजी के जमीनी धरातल की छुवन से लेकर बहुरंग को एकरंग में बदलने वाले प्रयोगधर्मी जुझारू कलाकार तक की जीवनधर्मिता का सुखद चितराम है।

प्रो. धनंजय वर्मा ने बड़े ही भावुक संवेदन मन से राजारामजी पर याराना अन्दाज में बखूबी बखूब लिखा, जिस व्यक्ति की मुस्कान और हंसने के तौर तरीके आपको दिलकश लगे तो तय मानिये कि उससे नब्बे फीसदी आपकी दोस्ती पक्की हो जाती है।

वर्माजी राजारामजी की कही एक बात का स्मरण करते लिखते हैं, आमतौर पर हम चित्रों के मतलब तलाशते हैं या उनमें निहित किसी संदेश की अपेक्षा करते हैं या किसी कहानी या चरित्र की खोज करते हैं। इसमें चित्र की अपनी वास्तविक सत्ता, उसकी रचनात्मक सार्थकता ही हमारे सामने उद्घाटित नहीं हो पाती।

कदाचित इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार था कि चित्रों को ''समझने'' की बजाय 'महसूस' किया जाना चाहिए वैसे भी किसी भी माध्यम की कोई भी कलाकृति मूलत: अभिव्यक्ति होती है, व्याख्या या विश्लेषण नहीं। (पृष्ठ 17)

यहाँ मुझे एक प्रसंग याद आ रहा है। एक दिन मैं यहां के प्रसिद्ध चित्रकार प्रो. सुरेश शर्मा के निवास पर उनसे मिलने गया। उनकी बैठक में घुसते ही सहसा मुझे उनके द्वारा निर्मित एक चित्र देख मैंने उनसे पूछा, इस चित्र को आपने यहां क्यों लगा रखा है। इसमें तो केवल रंगबिरंगी रेखाएं खींच रखी हैं। मेरे इस कथन पर वे मुस्काये और बोले, भानावतजी, विश्व की दस प्रसिद्ध चुनिंदा पेंटिंग्स में इसका चयन हुआ है। यह सुन मैं चुप मौन ही रहा। न उनसे कुछ जानना चाहा और न उन्होंने ही उसका विश्लेषण विवेचन किया।

डॉ. देवेन्द्र दीपक ने लिखा, राजारामजी प्रयोगधर्मी थे लेकिन घालमेल और एडलट्रेशन उन्हें स्वीकार नहीं थे। वे नाराजगी का खतरा मोल लेकर भी अपनी असहमति व्यक्त करते थे। इसके लिए कई बार उनके नाम के साथ 'झगड़ालू' शब्द भी जोड़ा गया। (पृष्ठ 30)

इसके अलावा उनके सम्पर्क में आये अनेक व्यक्तियों, स्नेहियों, शिष्यों ने उन पर विभिन्न रूपों में अपने रसभीने संस्मरणों से अच्छा ओपता प्रकाश डाला है।

इसी अंक में डॉ. कपिल तिवारी से डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा एवं भँवरलाल श्रीवास का लिया साक्षात्कार लोकपक्ष से जुड़े अनेक सवालों पर बड़ी उम्दा, अनुभवजनित धाकड़ जानकारी लिये है। डॉ. कपिलजी आवश्यकता के अनुरूप ही सध-संभलकर बोलते और लिखते हैं। वे हमारे बीच आंखिन देखी, भांपिन लेखी साहित्य तथा रूपंकर कलाओं के गहरे मनीषी अध्येता हैं। संक्षेप में उनकी ये बातें विचारणीय हैं-

1. आधुनिक जीवन में जो कला रचता है उसका कोई उपयोग नहीं है। जिनके जीवन में कला का कोई उपयोग नहीं था उन्होंने संग्रहालय बनाये।
2. संरक्षित वे लोग करते हैं जिनकी परम्परा मर रही हो या मर चुकी है।
3. हम ऐसी संस्कृति को जीते हैं जो निरंतर प्रवाहमयी और जीवन के साथ चलती है। हमें यह भय नहीं रहा कि इसे बचालो, यह नष्ट हो जायगी लेकिन अब हम बहुत बड़े पैमाने पर संग्रहालय भी बना रहे हैं।
4. भाषा की निरन्तरता बिना लिपि के हजारों साल से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सहज रूप से हस्तांतरित होती रही लेकिन आधुनिकता के नाम पर एक जनरेशन को शहरों में ले जायेंगे तो गांव का बुजुर्ग अपना ज्ञान, अपनी भाषा, अपना कौशल किसके लिए हस्तांतरित करेगा?
5. हम एक ऐसे भारतीय में बदल दिये गये हैं जो न तो ठीक अर्थों में आधुनिक है न पारंपरिक। जो चलते-फिरते संग्रहालय मनुष्यों के रूप में हमारे पास थे उनका ज्ञान तो कोई लेने के लिए तैयार नहीं है। (पृष्ठ 118)
6. खेती का हजार साल का अनुभव कोई मूल्य नहीं रखता। मूल्य होता है कि उत्पादकता बढ़ रही है कि नहीं। हम नकली बीज भी लायेंगे, जहरीली दवाइयां भी लायेंगे। विभिन्न तरह की खादें भी लायेंगे तब माना जायेगा कि आधुनिक किसान हैं।
7. लोकचेतना बची रहेगी तो लोक बचेगा। भूमि का सम्मान करो। नदी का सम्मान करो। स्त्री का सम्मान करो। प्रकृति का सम्मान करो। भाषा का सम्मान करो। ये है लोक। (पृष्ठ 119)
8. अगर शास्त्र के किसी मुद्दे पर विभ्रम हो जाए, मतभेद हो जाए, निर्णय न कर पाओ तो निर्णय लोक से होगा क्योंकि वह निरन्तर प्रवाहमान है। नदी की तरह वह रोज बदल रहा है। वह जीवन के अनुभव से ज्ञान में है इसलिए वह ज्ञान ज्यादा प्राभाविक है। शास्त्र एक जगह पर ठहरी हुई चीज है इसलिए उसका विभ्रम है। उसका जो निवारण है वह केवल लोक से हो सकता है, शास्त्र से नहीं हो सकता। यह परस्परता है।
9. दुनिया का कोई भी ऐसा धर्म हो जिसका उन्मेष कहीं हुआ हो, भारत में वह न हो? यहाँ इस्लाम भी है। इसाइयत भी है। बौद्ध भी हैं जैन भी हैं यहूदी भी है। पारसी भी है। इनकी धार्मिक विविधताओं का स्वागत करने की उदारता, लचीलापन और सम्मान भी भावना पैदा करने के लिए बड़ा दिल चाहिए और वह हृदय एक या दो दिन में नहीं बन जाता। हजारों साल में परम्परा इस उदारता की रचना करती है। (पृष्ठ 120)
10. हर प्राणी को मार कर खाने की चीज तो भारत ने नहीं बनाई ना? अगर उसने अपने परिश्रम से अन्न भी पैदा किया है तो उस अन्न को खाने से पहले उसने देवार्पित किया। उसने कहा कि अन्न को उस समष्टि के लिए अर्पित करो जिसके सहयोग से ये अन्न बना है। इसमें जल, मिट्टी, वायु की भूमिका है, जिसमें सूरज के ताप की भूमिका है, जिसमें चन्द्रमा की शीतलता और वायु के प्रवाह की भूमिका है। यह सारी समष्टि का उपहार है, जो

हमारे उद्यम से और प्रकृति कृपा से हम तक आया है। हम सबसे पहले उनको अर्पित करेंगे फिर बाद में स्वयं ग्रहण करेंगे, यह एकात्मीयता का भाव है, ये अद्वैज है। यह जातीय जीवन परम्परा की मूलभूत भारतीय जीवन दृष्टि है, फिलॉसफी नहीं है। बौद्धिक प्रत्यवाद नहीं। (पृष्ठ 121)

11. सदियों-सदियों तक हमारे देश में जीवन और कला का लोक आधार जो है, वह बिना राज्य-आश्रय के रहा है। मैं तो कम से कम उस लंबे समय में ठीक से यह समझ पाया कि उनको जीवन में न राज्य की जरूरत थी और ना अपनी रचना के राज्य की जरूरत थी। आप मुझे बताइये कि जनजातीय क्षेत्रों में आपने कोई पुलिस देखी है ? कोई थाना देखा है ? कोई जेल देखी है ? कोई संहिता देखी है ? क्या देखा है आपने ? वहां इन सबके बिना उनका जीवन ज्यादा सुचारू है, ज्यादा अनुशासित है, ज्यादा मर्यादित है। तो हम राज्य ले गये हैं न वहाँ जिस चीज को राज्य की ओर से किया जाने वाला विकास या राज्य का ध्यान करते हैं, उसके पहले जो कुछ जीवन था उसमें जो बदलाव हुआ उसके लिए क्या उन्होंने अपनी तरफ से कभी मांग की थी या आप ले गये हैं ?
12. लोक-समाज वह है जो अक्षर जाने बिना जीवन के ज्ञान में था। अब यह निर्णय हमें करना है कि सच्ची और बड़ी चीज कौनसी है। जीवन का ज्ञान बड़ा होता है या अक्षर बड़ा होता है। जो अक्षर की परंपरा में है उन्होंने महाभारत नहीं पढ़ा लेकिन तीजनबाई बिना पढ़ी-लिखी है और महाभारत के 18 पर्व उन्हें कंठस्थ हैं। अब हमें तय करना है कि निरक्षर कौन है ?
13. हमने भारत को भारत की तरह देखना ही बन्द कर दिया है। भारत इससे पहले भी अपनी पाठशालाएं चलाता था। धर्मपालजी ने तो उसको प्रमाण सहित 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी का अध्ययन करके बताया कि कैसे स्ववित्तपोषित पाठशालाएं हर गांव में चलती थीं। (पृष्ठ 122)

अपने साक्षात्कार के माध्यम से उन्होंने आधुनिक और परम्पराशील लोक, लोकाचार और लोकालोक को ही खोलकर रख दिया है। लोक के किसी विषय पर शोध करने वाले के लिए उनकी कहिन से अनेक आयाम उद्घाटित हुए मिलते हैं। दोनों अंक इस दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान तथा संग्रहणीय हैं।

-डॉ. महेन्द्र भानावत

352, श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर-313001

मो. 9351609040

--//--

प्रिय महोदय,

कला समय का अगस्त सितंबर-2021 जो कि प्रसिद्ध चित्रकार प्रो. राजाराम पर केन्द्रित है, पढ़ा ! राजाराम रंगों की दुनिया के श्रेष्ठ चित्रकार तथा समीक्षक थे। इनके चित्र समूचे भारतीय चित्र कला जगत की अमूल्य निधि हैं। इनके चित्रों में शैलीगत विविधता और सौंदर्य बोध की बड़ी रेंज है। इनके व्यक्तित्व एवं चित्रकारिता पर केन्द्रित आपका संपादकीय आलेख महत्वपूर्ण है।

बहुरंग को एक रंग में बदलने वाले एक प्रयोगधर्मी जुझारु कलाकार- प्रो. राजाराम पर केन्द्रित- डॉ. बिनय षड़ंगी राजाराम का आलेख, राजाराम के संपूर्ण कलात्मक जीवन को प्रस्तुत किया है। कला के प्रति प्रो. राजाराम का रुझान बचपन से रहा है। इन्होंने कड़ी मेहनत एवं अनेकों समस्याओं से जूझकर भी चित्रकारिता में अपना नाम कला जगत में हुसैन एवं बेन्द्रे की तरह कला जगत में स्थापित किया है। विद्यार्थियों में इनकी लोकप्रियता शिक्षा के प्रति इनकी गहन निष्ठा आत्मीय व्यवहार की ही वजह रही है।

धनंजय वर्मा का आलेख ''राजाराम की जय हो'' लेख में यह लिखा है कि ये स्नेही और पारिवारिक संबन्धों का उचित निर्वहन करने वाले थे। वे एक बार जिस व्यक्ति से मिलते थे, उनके गहरे मित्र बन जाते थे। ये अमूर्त चित्रकार थे। ये कला के सात्विक सिद्धांतों पर गहरे से विमर्श करते थे।

डॉ. कौस्तुक शर्मा तथा सौमित्र शर्मा ने अपने पिता राजाराम के स्नेह और यथोचित मार्गदर्शक के रूप में गहरे से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। राजेन्द्र शर्मा ने अपने आलेख - कूची और कलम के जादूगर, प्रो. राजाराम के विविध गुणों, योग्यताओं और बहुधर्मी कला प्रतिभा के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। श्रीधर पराडकर ने अपने आलेख- आत्म विश्वास से भरा व्यक्तित्व प्रो. राजाराम के यशस्वी विद्वतापूर्ण व्यक्तित्व तथा आत्म विलोपी व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है।

डॉ. रजनी पांडेय ने राजाराम की कला उड़ान तथा उनकी कला उत्कृष्टता को प्रस्तुत किया है।

अभिलाष खांडेकर ने राजाराम को बेहतर कलामर्मज्ञ माना है। जबकि डॉ. देवेन्द्र दीपक ने- राजाराम के संस्कृति और कला के मोर्चे पर अविराम रूप से सक्रिय जुझारू कलाकार माना है। जबकि जगदीश तोमर ने प्रो. राजाराम के सुविख्यात कलासिद्ध और कला चिन्तक अविस्मरणीय व्यक्तित्व माना है।

डॉ. स्मृति उपाध्याय तथा घनश्याम मैथिल प्रो. राजाराम की चित्रकला को साहित्य में स्थापित व्यक्तित्व से, निरूपित किया है। अवधेश अमन, विनय त्रिपाठी, राजाराम को एक मूल्यवान

चित्रकार के रूप में मानते हैं। लक्ष्मीनारायण पयोधि, नरेन्द्र दीपक, डॉ. संजीव पांडेय, मानते हैं कि प्रो. राजाराम को अच्छे भारत भवन के रूपंकर निदेशक के रूप में माना है। इनकी कला कालखंड की सीमाओं में बंधी नहीं थी। डॉ. सुषमा श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र उपाध्याय, अखिलेश निगम, गायत्री गोस्वामी, अनिता सक्सेना ने भी एक कला विशेषज्ञ के रूप में जाना है। धनंजय सिंह उन्हें अविश्वसनीय मुलाकात का स्मृति बिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

प्रो. राजाराम के आलेख, यूरोपीय विज़ान्तिनी कला की द्योतक बौद्ध कला, आधुनिक कला और भारतीय समकालीन संदर्भ, राष्ट्रवादी प्रेरणा के स्त्रोत श्रद्धेय श्री कैलाश नारायण सारंग कला आलोचना और कला प्रसंग, सर्जना और असिर्जना कला की अभिव्यंजनात्मक कृतियों पर गहन विमर्श है।

कला समय का अगस्त सितम्बर 2021 अंक प्रो. राजाराम के चित्रकला एवं आलोचना व्यक्तित्व पर केन्द्रित होने से कला नगरी का ऐतिहासिक अंक है जो प्रो. राजाराम के कलात्मक योगदान की पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करता है। जो आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणा और मार्गदर्शक होगा इसके लिए संपादक भँवरलाल श्रीवास, बधाई के पात्र हैं।

- राधेलाल बिजघावने

ई-8/73, भरत नगर (शाहपुरा), अरेरा कालोनी,
भोपाल-462016, मो. 9826559989

--//--

प्रिय भाई,

'कला समय' का अरुण तिवारी अमृत-जयन्ती विशेषांक पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न लेखकों, पाठकों, मित्र वर्ग, परिवारी जन और प्रेरणा परिवार के लोगों द्वारा व्यक्त विचार 'प्रेरणा' के यशस्वी सम्पादक, विचारक और लेखक अरुण तिवारी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध रूपों को प्रकट करते हैं। स्वयं अरुण तिवारी के आलेख और कहानियाँ तथा कुछ अन्य विद्वानों के विविध विषयक आलेख विशेषांक की श्रीवृद्धि करते हैं। छायाचित्र लिखित सामग्री को परिपुष्ट करते हैं। वृहदाकार विशेषांक अरुण तिवारी के व्यक्तित्व का, उनके अवदान का, उनकी बहुमुखी प्रतिभा का विस्तार से, गहराई में उतरकर विश्लेषण करता है। विशेषांक महत्वपूर्ण है जिसके लिए सम्पादक श्री भँवरलाल श्रीवास और उनके समस्त सहयोगी साधुवाद के पात्र हैं।

हार्दिक मंगलकामनाओं के साथ,

-दामोदर दत्त दीक्षित

1/35, विश्वास खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उ.प्र.)
मो. 9415516721

--//--

सम्माननीय श्रीवास जी,

सादर नमस्कार!

'कला-समय' का साहित्यिक पर्यावरण के निर्माण को समर्पित व्यक्तित्व-अरुण तिवारी पर केन्द्रित अमृत जयंती विशेषांक मिला। आपका हृदय से आभारी हूँ।

मेरा आदरणीय अरुण जी से प्रत्यक्ष परिचय नहीं है, लेकिन उन्हें 'प्रेरणा' के माध्यम से ही जानता हूँ। इसी के जरिये मुझे उनके प्रतिबद्ध बहुआयामी व्यक्तित्व का पता चला और उनके प्रति मेरा सम्मान भाव और बढ़ गया। इसे मैंने एक फेसबुक पोस्ट के जरिये सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त भी किया।

आपकी पत्रिका द्वारा मुझे उनके बहिरंग के साथ अंतरंग को जानने का अवसर मिला और उनसे व आपसे एक बार में ही सही, आत्मीय रिश्ता महसूस करने लगा हूँ।

''कला-समय'' बहुत महत्वपूर्ण पत्रिका है। हिन्दी में कला-संस्कृति पर केन्द्रित पत्रिकाएँ बहुत कम हैं, ऐसे में आपका अवदान महत्वपूर्ण है। मैं कला-संस्कृति पर लिखता रहा हूँ, आप चाहें तो मैं 'कला समय' के लिए भी लिखूंगा।

-राजाराम भादू

समान्तर, 86, मानसागर कॉलोनी, श्योपुर रोड, प्रतापनगर,
जयपुर-33, मो. 9828169277

--//--

महोदयजी, सस्नेह नमस्कार।

'कला समय' का 'अरुण तिवारी' पर केन्द्रित- माह जून जुलाई का अमृत जयंती विशेषांक प्राप्त हुआ। आभार।

'कला-समय' का अरुण तिवारी पर केन्द्रित यह अंक ऐतिहासिक महत्व का है। क्योंकि अरुण तिवारी की संपूर्ण रचनात्मकता को पूरी निष्ठा, ईमानदारी एवं पारदर्शिता के साथ पूर्वाग्रहों से पूरी तरह मुक्त होकर प्रस्तुत किया गया है। मुक्ति बोध, तथा धूमिल की मृत्यु के बाद इन पर ऐसे अंक प्रकाशित हुए हैं। लेकिन अरुण तिवारी के जीवन काल में ही ऐसा समृद्ध एवं साहित्य की सभी विधाओं को समेटने वाला अंक अपनी अनुभवशीलता और वैचारिकता को विस्तारित कर संवेदना की गहराई को छूता है। ऐसा समृद्ध, स्तरीय अंक जो तिवारी जी की संपूर्ण संरचनात्मक छवि को

हर एंगल से प्रस्तुत करता है, किसी अन्य साहित्यकार एवं संपादक पर पूरी तरह केंद्रित होकर प्रकाशित नहीं हुआ है।

अरुण तिवारी निश्चित ही चिन्तनशील, गंभीर, अध्ययनशील, प्रतिभा संपन्न अनुभवशील कवि, कथाकार, आलोचक एवं संपादक हैं। इनकी रनाओं में पारदर्शिता है। ये किसी वैचारिक सोच की विचारधारा से प्रतिबद्ध नहीं हैं। बल्कि सभी विचारधाराओं के प्रति इनके मन में सम्मान और आदरभाव है। ये सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

अरुण तिवारी का जीवन अनेक दिक्कतों, अभावों से भरा है। पिता की मृत्यु के बाद माँ ने जेवर बेचकर एवं कृषि की आमदनी से इन्हें पढ़ाया और इन्जीनियरिंग की शिक्षा का प्रबंध किया। जबकि इनके मामा ने इनकी कृषि भूमि पर अनाधिकृत रूप से कब्जा कर, बेदखल कर दिया।

अरुण तिवारी एक ऐसे पुत्र हैं जो मातृ छाया में पढ़ लिखकर इन्जीनियर बन गये। जबकि पिता विहीन बेटों का बिगड़ने का ज्यादा चांस रहता है।

अरुण तिवारी की कहानी ''मुखौशे'' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी बहुत ही सामाजिक, सामयिक विषय पर केन्द्रित होने से आज भी भाषा शिल्प कथ्य के स्तर पर ताजगी लिए है। इसलिए प्रासंगिक है तथा किसी भी स्तर पर बासापन नहीं है।

''दूसरी कहानी'' अंतहीन शुरुआत' कामकाजी महिलाओं को आर्थिक कठिनाई से जूझती हुई, दुखद समय गुजारकर भी पति एवं परिवार के लिए निष्ठावान होती है। कामकाजी महिलाएं सब कुछ पारिवारिक तकलीफें सह लेती हैं परंतु उसके चरित्र पर झूठे लांछनों से खिन्न होकर जर्रा-जर्रा टूट जाती है वह मानसिक डिप्रेशन आने से नर्वस ब्रेक डाउन हो जाता है। आज की कामकाजी महिलाओं के साथ इस तरह की दुखद घटनाएं होती ही रहती हैं। कहानी कामकाजी महिलाओं के नैतिक मूल्यों, तकलीफें एवं घुटन को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती हैं।

अरुण तिवारी का लेख ''साहित्यिक पत्रकारिता का परिदृश्य'' वर्तमान साहित्यिक पत्रकारिता एवं सामान्य पत्रकारिता की व्यसियों को साफ रूप में उजागर करना है। मुक्ति बोध पर केन्द्रित आलेख भी मुक्ति बोध की रचनात्मकता को अलग ऐंगल से प्रस्तुत किया है।

''वरिष्ठ नागरिक हमारी धरोहर'' लेख में अरुण तिवारी ने वरिष्ठ नागरिकों की तकलीफों, उनकी उपेक्षा, अपमान की मानसिकता को प्रस्तुत किया है और नई दृष्टि सृष्टि की ओर वरिष्ठ नागरिकों के सोच को समृद्ध किया है।

'लता अग्रवाल' की अरुण तिवारी से हुई बातचीत बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए भी है कि हिन्दी साहित्य की वास्तविक स्थिति को खुलासा किया गया है इसके लाभ ही साहित्य के गिरते स्तर पर गहन चिन्ता व्यक्त की गई है। यह बातचीत वर्तमान साहित्यकारों के लिए सोचने और अपने स्तर में गहरे अध्ययन में सुधार करने का संदेश देती है।

अंक में अरुण तिवारी के विभिन्न पक्षों पर केन्द्रित सभी लेखकों के लेख बहुत सार्थक और स्तरीय हैं। और अरुण तिवारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सभी पक्षों, अनुभवशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इनमें उनका संपूर्ण रचनात्मक जीवन समेटकर, एकाग्र हो जाता है।

डॉ. धनंजय वर्मा ने बेमिसाल साहित्यिक पत्रकार अरुण तिवारी को माना है। इनका यह कथन तिवारी जी के लिए आशीर्वाद है। माताचरण मिश्र का अरुण तिवारी पर केन्द्रित आलेख- 'फौलादी इरादों वाला आदमी' अंक का श्रेष्ठ आलेख है। इसमें उन्होंने अरुण तिवारी की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक तकलीफों को प्रस्तुत कर उनके साहस और फौलादी इरादों को बेबाक ढंग से प्रस्तुत किया है।

सूर्यकान्त नागर ने अपने लेख में अरुण तिवारी की साहित्यिक पत्रकारिता की खूबी खासियतों को प्रस्तुत कर नये पत्रकारों के लिए प्रेरणा पुरुष के रूप में प्रस्तुत कर उनके उत्साह को समृद्ध किया है।

डॉ. गंगा प्रसाद बरसैया ने अरुण तिवारी के शोर शराबे से दूर रहकर ठोस सृजनात्मक कार्य पर गहनता से विचार किया है।

अमिताभ मिश्र, नवल शुक्ल ने अरुण तिवारी की रचनात्मक चरित्र की खूबी खासियतों को रेखांकित किया है। किरण अग्रवाल ने अरुण को दृष्टि संपन्न शख़्सियत माना है। जबकि महेश श्रीवास्तव ने अरुण तिवारी के 75 वर्ष पूर्ण करने और उनके लेखन, संपादन के सकारात्मक दृष्टिबोध को प्रस्तुत किया है। जबकि प्रमोद भार्गव ने अरुण तिवारी को सिरमोर साहित्यिक पत्रकार माना हैं।

महेश दर्पण ने अरुण तिवारी को पाजिटव थिंकर माना है। क्योंकि पत्रकारिता में नकारात्मकता को कोई स्थान नहीं देने। लीलाधर मंडलोई शहर का ऐसा इंसान मानते हैं जो सब की आस्था विश्वास और मन के भीतर चुपचाप बैठा और आत्मीयता व्यक्तित्व है। शशांक का कथन है कि कोशिश करने वाले परिश्रमी अरुण तिवारी हैं। और कोशिश करने वाले ऐसे इंसान की कभी हार नहीं होती। जबकि करूणा पांडे अरुण तिवारी को व्यवहार कुशल,

मृदुभाषी, आत्म अनुशासित व्यक्ति मानती हैं।

दामोदर दास दीक्षित, अरुण तिवारी को दृष्टि सम्पन्न संपादक मानते हैं क्योंकि इन्होंने प्रेरणा को नया रूप दिया है।

गिरीश पंकज, हीरालाल नागर, अनिरुद्ध सिन्हा, संदीप राशिनकर, प्रमोद वैद्य, भीमसिंह मोहनिया, नरेश कुमार उदास, लक्ष्मी नारायण पयोधि, मोहन सगोरिया, दिनेश प्रभात, राजेन्द्र परदेशी, भँवरलाल श्रीवास ने अपने अपने आलेखों में अरुण तिवारी की रचनाशीलता के अवदान को रेखांकित किया है। 'कला समय' पत्रिका में प्रेरणा पत्रिका के सहयोगी- सुरेंद्र डांगे, मनोज माकोड़े, सुशील दीक्षित, नीरज राय, मनोज पालीवाल, सोहन मालवीय, सीताराम मालवीय के साथ अरुण तिवारी की आत्मीयता एवं प्रेरणात्मक विचारों को प्रस्तुत किया है। जिसमें उनके साथ सहयोगी भावना स्वत: प्रस्तुत होती है।

विशेषांक के संपादक भँवरलाल श्रीवास तथा बलराम गुमास्ता ने अंक को स्तरीय विशिष्ट रूप दिया है इसके लिए इन्हें बधाई।

-राधेलाल बिजघावने

ई-8/73, भरत नगर (शाहपुरा), अरेरा कालोनी

भोपाल-462016, मो. 9826559989

--//--

प्रिय तिवारी जी,

'कला समय' का आप पर 'अमृत जयंती विशेषांक' मिला। इतना सुंदर, इतना कलात्मक तथा इतना महत्वपूर्ण अंक देख-पढ़कर मन प्रसन्न हो गया। इसके संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास साधुवाद के उचित पात्र हैं कि उन्होंने आपके जीवन तथा साहित्य-कर्म पर इतनी निष्ठा के साथ यह अंक निकाला है और उन्होंने मेरे लेख को इतना महत्व दिया है। यह अंक एक साहित्य साधक के राष्ट्रीय सम्मान का प्रतीक है। यह अंक ऐसे साहित्यकार की दशकों की नि:स्वार्थ साधना का प्रशस्ति पत्र है, अभिनंदन है और यह बताता है कि समाज ऐसे साधकों का सम्मान करने में कभी पीछे नहीं रहता। मुझे भी आपके बारे में काफी नई जानकारियां मिलीं, आपके परिवार तथा आपके जीवन के बारे में, और आपके संपूर्ण व्यक्तित्व के बारे में। यह अंक एक धरोहर है, यह याद रखा जायेगा और नये साधकों को प्रेरणा देता रहेगा।

आपके अमृत समारोह में न आ सका, पर अब आप मेरा अभिनंदन स्वीकार करें।

ईश्वर आपको इसी प्रकार साहित्य की सेवा करने के लिए शक्ति प्रदान करें।

परिवार के सदस्यों को मेरा आशीर्वाद और शुभकामनाएं।

-कमल किशोर गोयनका

दिल्ली, मो. 9811052469

--//--

प्रिय बंधु,

सरसरी तौर पर अंक देखा। मन प्रसन्न हो गया। 'कला समय' ने एक कला साधक की तपस्या को साधुत्व के साथ प्रतिबिंबित किया है। अरुण तिवारी का तरल व्यक्तित्व इस प्रकार के सरल प्रवाह का अधिकारी है।

यह अंक आपके संपादकीय सामर्थ्य का भी प्रमाण है।

मोबाइल पर पूरा पढ़ पाना तो कठिन हो रहा है। अंक प्राप्त होने पर अरुण तिवारी के समर्पित जीवन और आपकी लगन का मनन कर सकूंगा।

भंवर लाल जी श्रीवास हर अंक को विलक्षणता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। यह प्रयत्न भी सफल रहा है।

आप सभी को बहुत-बहुत बधाई।

-महेश श्रीवास्तव, वरिष्ठ पत्रकार

7, पत्रकार नगर, लिंक रोड नं. 3, भोपाल-462003

मो. 9425006180

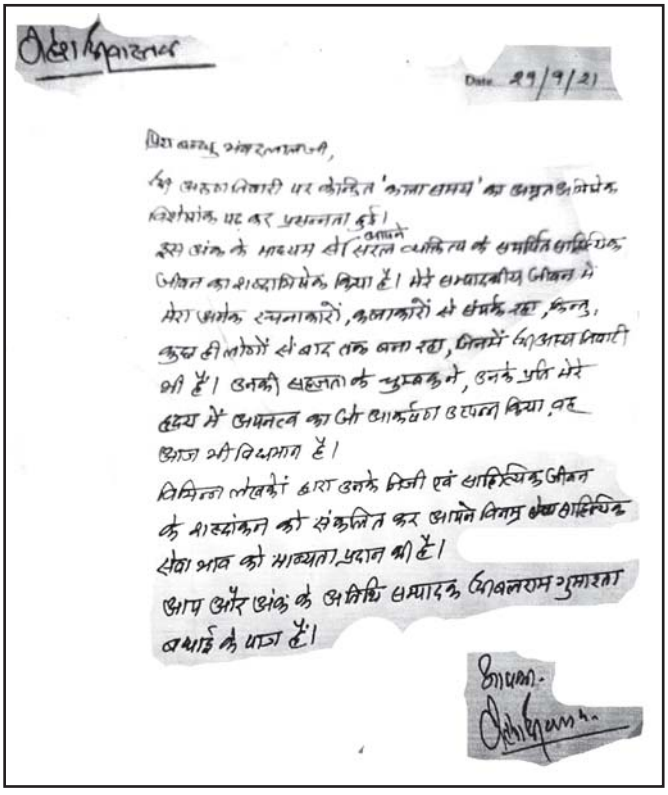

उमेश श्रीवास्तव

Date 29/9/21

प्रिय बन्धु भंवरलालजी,

श्री अरुण तिवारी पर केन्द्रित 'कला समय' का अमृत अभिषेक विशेषांक पढ़ कर प्रसन्नता हुई।

इस अंक के माध्यम से आपने सरल व्यक्तित्व के समर्पित साहित्यिक जीवन का शब्दाभिषेक किया है। मेरे सम्पादकीय जीवन में मेरा अनेक रचनाकारों, कलाकारों से संपर्क रहा, किन्तु, कुछ ही लोगों से बाद तक बना रहा, जिनमें श्री अरुण तिवारी भी हैं। उनकी सहजता के चुम्बक ने, उनके प्रति मेरे हृदय में अपनत्व का जो आकर्षण उत्पन्न किया, वह आज भी विद्यमान है।

विभिन्न लेखकों द्वारा उनके निजी एवं साहित्यिक जीवन के शब्दांकन को संकलित कर आपने विनम्र साहित्यिक सेवा भाव को मान्यता प्रदान की है।

आप और अंक के अतिथि सम्पादक श्री बलराम गुमास्ता बधाई के पात्र हैं।

शुभकामनाओं सहित
[signature]

स्वच्छता को हमने 'आदत' बनाया
मध्यप्रदेश का परचम फिर लहराया

प्रदेश के सभी सफाई-मित्रों और जागरूक नागरिकों के प्रति आभार

स्वच्छ सर्वेक्षण 2021 अवॉर्ड में मध्यप्रदेश ने हर बार की तरह एक बार फिर शानदार प्रदर्शन करते हुए कई पुरस्कार और सम्मान किये अपने नाम।

21 नेशनल अवॉर्ड | 17 वन स्टार रेटिंग | 70 प्रेरक दौर सम्मान

- इंदौर शहर ने 5 स्टार के साथ सफाई मित्र सुरक्षा चैलेंज के लिये भी पुरस्कार जीता।
- भोपाल को मिला स्व-संवहनीय राजधानी का खिताब और सफाई मित्र सुरक्षा चैलेंज में देश भर में तीसरा स्थान।
- मध्यप्रदेश राज्य को तीसरे सबसे स्वच्छ राज्य का पुरस्कार।
- मध्यप्रदेश के 27 शहरों को मिली स्टार रेटिंग।
- विभिन्न श्रेणियों में प्रदेश के 07 शहरों को राष्ट्रीय पुरस्कार - इंदौर, भोपाल, उज्जैन, देवास, होशंगाबाद, बड़वाह और पचमढ़ी केंट को उत्कृष्ट अवॉर्ड श्रेणी के लिए सम्मान।
  - 1 से 3 लाख जनसंख्या के शहरों में होशंगाबाद शहर को तेजी से बढ़ते शहर और देवास को नवाचार का सम्मान।
  - उज्जैन शहर को 1-10 लाख जनसंख्या के शहरों में नागरिक प्रतिक्रिया में सर्वश्रेष्ठ सम्मान।
  - छोटे शहरों की श्रेणी में खरगौन जिले के बड़वाह को जोनल रैंकिंग में सबसे तेजी से बढ़ते शहर का सम्मान।
- सफाई मित्र सुरक्षा चैलेंज के अंतर्गत इंदौर शहर को 12 करोड़, देवास को 6 करोड़ और भोपाल को 03 करोड़ रुपये का पुरस्कार।
- स्वच्छ सर्वेक्षण में पहली बार प्रेरक दौर का घटक शामिल किया गया। इसमें प्लेटिनम-दिव्य श्रेणी में - 1 शहर, गोल्ड-अनुपम श्रेणी में - 35 शहर, सिल्वर-उज्ज्वल श्रेणी में - 3 शहर, ब्रांज-उदित श्रेणी में - 27 शहर और कॉपर-आरोही श्रेणी में - 4 शहर सहित कुल 70 शहरों को इस घटक में रैंकिंग प्राप्त हुई।

इंदौर को लगातार 5वीं बार मिला भारत के स्वच्छतम् शहर का गौरव

मुझे गर्व और प्रसन्नता है कि स्वच्छ सर्वेक्षण 2021 में भी मध्यप्रदेश ने माननीय प्रधानमंत्री जी के सपनों और संकल्प को साकार किया है। इस सफलता के लिये मैं सभी मध्यप्रदेशवासियों और विशेष तौर पर सभी स्वच्छताकर्मियों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

- शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

सफाई मित्र सुरक्षा चैलेंज

- इंदौर, देवास और भोपाल ने राष्ट्रीय स्तर पर बनाया अपना स्थान। (चैलेंज में सीवर लाइनों और सेप्टिक टैंक की सफाई में मानव हस्तक्षेप को खत्म कर मशीनों द्वारा सफाई मित्रों की सुरक्षा को प्रोत्साहित किया जाता है।)

हम हुए पहले से अधिक बेहतर

- 295 शहर ओडीएफ डबल प्लस (ODF++) और 78 शहर ओडीएफ प्लस (ODF+) प्रमाणित। इंदौर को वॉटर प्लस प्रमाणन।

- देश के 10 लाख से अधिक आबादी वाले टॉप 20 शहरों में मध्यप्रदेश के सभी 4 प्रमुख शहर इंदौर, भोपाल, ग्वालियर और जबलपुर हुए शामिल।
- 1 से 10 लाख आबादी की श्रेणी में देश के 100 शहरों में प्रदेश के 25 शहर।

पश्चिमी क्षेत्र श्रेणी

- 50 हजार से 1 लाख आबादी की श्रेणी में देश के 100 शहरों में प्रदेश के 26 शहर शामिल।
- 25 हजार से 50 हजार आबादी की श्रेणी में देश के 100 शहरों में प्रदेश के 26 शहर शामिल।
- 25 हजार से कम आबादी की श्रेणी में देश के 100 शहरों में प्रदेश के 35 शहर शामिल।

स्वच्छ, स्वस्थ, समर्थ - मध्यप्रदेश

D-19362/21

''इस पॉलिसी में निवेश पोर्टफोलियो में निवेश का जोखिम पॉलिसीधारक द्वारा वहन किया जायेगा''

सबसे पहले लाइफ इंश्योरेंस

ऑनलाइन भी उपलब्ध

एक सीप - दो फायदे

बचत भी : सुरक्षा भी

एलआईसी की

सीप

योजना सं.: 852 UIN 512L334V01

यूनिट लिंक्ड, असहभागी, व्यक्तिगत जीवन बीमा योजना

चुनने की आजादी:

बचत धनराशि:
आपकी बचत रु. 4000/– प्रति माह या रु. 40000/– प्रति वर्ष से शुरू हो कर जीवन के बड़े लक्ष्यों के लिए उससे अधिक हो सकती है।

4 फंड विकल्प:
आप बांड, सुरक्षित, संतुलित एवं वृद्धि में से कोई भी विकल्प चुन सकते हैं।

नि:शुल्क फंड परिवर्तन:
आप अपना धन वर्ष में चार बार नि:शुल्क एक फंड से दूसरे फंड में परिवर्तित कर सकते हैं।

आवश्यकता पर निकासी :
5 वर्ष उपरांत आप आंशिक निकासी कर सकते हैं।*

पॉलिसी के लाभ:

- जोखिम सुरक्षा उपलब्ध
- गारंटीकृत लाभ: यूनिट फंड वैल्यू के साथ गारंटीकृत लाभ*
- पॉलिसी परिपक्वता: यूनिट फंड वैल्यू

पात्रता :

प्रवेश की आयु:
न्यूनतम आयु: 90 दिन
अधिकतम आयु: 65 वर्ष

परिपक्वता आयु:
न्यूनतम आयु: 18 वर्ष
अधिकतम आयु: 85 वर्ष

पॉलिसी अवधि: 10 – 25 वर्ष

एसएमएस करें अपने शहर का नाम 56767474 पर

कॉल सेंटर सेवा (022) 6827 6827

डाउनलोड करें एलआईसी मोबाइल एप "MyLIC"

विजिट करें www.licindia.in पर; हमें फॉलो करें LIC India Forever

*शर्तें लागू: अधिक विवरण के लिए अपने अभिकर्ता/एलआईसी की नजदीकी शाखा से संपर्क करें

भ्रामक/धोखाधड़ी वाले फोन कॉल्स से सावधान
आईआरडीएआई बीमा पॉलिसी विक्रय, बोनस की घोषणा अथवा प्रीमियम निवेश संबंधी गतिविधियों से संबंध नहीं रखता है। ऐसे फोन कॉल्स के प्राप्त होने पर आपसे निवेदन किया जाता है कि तुरन्त पुलिस से शिकायत दर्ज करवायें।

करार के प्रथम पाँच वर्ष में यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियां समाप्त नहीं की जा सकती। पाँचवे वर्ष के अंत तक यूनिट से संबद्ध बीमा पॉलिसियों को पॉलिसीधारक न समर्पण कर सकता है और न ही उनमें निवेश किये गए धन को आंशिक या पूर्ण रूप से निकाल सकता है।

LIC
भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

हर पल आपके साथ

LIC/AR/19-20/40/HN

नियम व शर्तों की विस्तृत जानकारी के लिए बिक्री समापन से पूर्व बिक्री-पुस्तिका ध्यानपूर्वक पढ़ लें।

'मध्य क्षेत्र, भोपाल'

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा गणेश ग्राफिक्स, 26 बी, देशबन्धु भवन, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल, म.प्र. से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016 से प्रकाशित। संपादक - भँवरलाल श्रीवास